महर्षि मेँहीँ-पदावली सटीक

(शब्दार्थ, पद्यार्थ और टिप्पणी सहित)

महर्षि संतसेवी परमहंस

अखिल भारतीय संतमत-सत्संग प्रकाशन

प्रकाशक :
अखिल भारतीय संतमत-सत्संग महासभा
महर्षि मेँहीँ आश्रम कुप्पाघाट, भागलपुर-३

प्रथम संस्करण : ५१०० प्रतियाँ, वि०सं० २०५९ (२००३ ई०)
द्वितीय संस्करण : ३१०० प्रतियाँ, वि०सं० २०६० (२००४ ई०)
तृतीय संस्करण : ३१०० प्रतियाँ, वि०सं० २०६४ (२००८ ई०)
चतुर्थ संस्करण : ३१०० प्रतियाँ, वि०सं० २०६५ (२००९ ई०)
पंचम संस्करण : ३१०० प्रतियाँ, वि०सं० २०६८ (२०११ ई०)
षष्ठ संस्करण : ३१०० प्रतियाँ, वि०सं० २०७० (२०१३ ई०)
सप्तम संस्करण : ५१०० प्रतियाँ, वि०सं० २०७१ (२०१५ ई०)
अष्टम संस्करण : ३१०० प्रतियाँ, वि०सं० २०७६ (२०२२ ई०)

सहयोग राशि : ६० (साठ) रुपये मात्र

मुद्रक :
'शान्ति-सन्देश' प्रेस,
महर्षि मेँहीँ आश्रम कुप्पाघाट, भागलपुर-३

प्राक्कथन

'महर्षि मेँहीँ पदावली' की कई सज्जनों द्वारा कई टीकाएँ पूर्व में निकल चुकी हैं। फिर भी सत्संगप्रेमी महानुभावों का आग्रह था कि मेरे द्वारा उसकी टीका हो। पर समय और सानुकूल सहयोगी के अभाव में सक्षम नहीं हो पाया था। अब जैसा भी हुआ है, आपके कर-कमलों में अक्ष के समक्ष है।

कोई भी व्यक्ति अपनी अनुभूति की यथावत् अभिव्यक्ति नहीं कर सकता। तो फिर दूसरे की अनुभूति की अभिव्यक्ति कोई दूसरा कैसे कर सकता है? उसपर भी एक महान संत, जिन्होंने अपनी कठोरतम तपस्साधना-द्वारा सत्य का साक्षात्कार कर जग-उपकार के लिए हृदयोद्गार को पद्यरूप में प्रकट किया है, उनकी अनुभूत पूत वाणियों को कौन समझ-समझा सकता है ? यह तो–'खग ही जानै खग की भाषा' वाली बात है। तथापि एक विज्ञ की बात को एक अज्ञ जितना समझ और समझा सकता है, 'महर्षि मेँहीँ पदावली' के शब्दार्थ, पद्यार्थ और टिप्पणी के संदर्भ में वैसा ही समझना चाहिए। सुधी पाठकगण पुस्तक की उत्तमता को गुरु-ज्ञानामृत जानकर पान करेंगे और अनुत्तमता को मेरी अज्ञानता जानकर क्षमा करेंगे।

१४.०१.२००३ ई० (मकर संक्रांति) 'संतसेवी'
महर्षि मेँहीँ आश्रम, कुप्पाघाट
भागलपुर-३ (बिहार)

शब्द–सूची

क्रमांक		पृष्ठांक
	अ	
१.	अव्यक्त अनादि अनन्त अजय	९
२.	अपनी भगतिया सत्गुरु साहब	५३
३.	अधर डगर को सद्गुरु भेद	१०१
४.	अध: ऊर्ध्व अरु दायें बायें	११६
५.	अति पावन गुरु मन्त्र	१६४
६.	अन्तर के अन्तिम तह में गुरु हैं	१९६
७.	अद्भुत अन्तर की डगरिया	२१५
८.	अज अद्वैत पूरन ब्रह्म पर की	२३०
	आ	
९.	आहो भाई होऊ गुरु आश्रित हो	१०२
१०.	आगे माई सतगुरु खोज करहु	१८८
११.	आहो भक्त सार भगति करु हो	२०७
१२.	आहो प्रेमी करु प्रेम प्रभु सए हो	२०९
१३.	आहो ज्ञानी ज्ञान गुनी प्रभु भजु हो	२१०
१४.	आरति तन मन्दिर में कीजै	२२६
१५.	आरति परम पुरुष की कीजै	२२७
१६.	आरति अगम अपार पुरुष की	२२८
१७.	आरति संग सतगुरु के कीजै	२३७
१८.	आओ वीरो मर्द बनो अब	१३०
	ए+ऐ	
१९.	एकबिन्दुता दुर्बीन हो दुर्बीन क्या करे	१९३
२०.	ऐन महल पट बन्द कै	१२९
	क	
२१.	क्या सोवत गफलत के मारे	१९९
२२.	करिये भाई सतगुरु गुरु पद	१८५

क्रमांक		पृष्ठांक
	ख	
२३.	खोजो पन्थी पन्थ तेरे घट	१०५
२४.	खोजो पन्थी पन्थ तेरे घट	१०७
२५.	खोज करो अंतर उजियारी	११७
२६.	खोजत खोजत सतगुरु भेटि गेला	१७२
	ग	
२७.	गंग जमुन जुग धार मधहि	१२२
२८.	गंग जमुन सरस्वती संगम पर	१२३
२९.	गुरू गुरू मैं करौं पुकारा	३५
३०.	गुरुदेव दानि तारण	३७
३१.	गुरु मम सुरत को गगन पर चढ़ाना	३९
३२.	गुरु खोलिये वज्र कपाट	४०
३३.	गुरु कीजै भव-निधि पार	४१
३४.	गुरु के शरण गहु, धन धन गुरु कहु	१०३
३५.	गुरु गुरु त्राहि गुरु	१५७
३६.	गुरु नाम गुरु नाम गुरु नाम	१६०
३७.	गुरु धन्य हैं गुरु धन्य हैं	१६२
३८.	गुरु दीन दयाला नजर निहाला	१६३
३९.	गुरु सतगुरु सम हित नहिं कोऊ	१७८
४०.	गुरु को सुमिरो मीत क्यों अवसर	१८०
४१.	गुरु हरि चरण में प्रीति हो	२१७
४२.	गुरु जुगती लय घट पट टारौं	२३५
	घ	
४३.	घट बिच अजब तमाशा	११२
४४.	घट बीच अजब तमाशा	११३
४५.	घट-पट तिहू के पार में	११०
४६.	घटवा घोर रे अंधारी	१९८

क्रमांक		पृष्ठांक
	च	
४७.	चलु चलु चलू भाई	१७९
	छ	
४८.	छन छन पल पल समय सिरावे	२०६
	ज	
४९.	जय जय परम प्रचण्ड तेज तम	७
५०.	जय जयति सद्गुरु जयति जय	३२
५१.	जय जय राम जय जय राम	१३९
५२.	जय जय रामा जय जय राम कहु राम	१४१
५३.	जनि लिपटो रे प्यारे जग परदेसवा	२००
५४.	जौं निज घट-रस चाहो	२१४
५५.	जीवो! परम पिता निज चीन्हो	२१६
५६.	जेठ मन को हेठ करिये	२२५
५७.	जहाँ सूक्ष्म नाद ध्वनि आज्ञा	१३४
५८.	जीव उद्धार का द्वार पुकार कहा	१७४
	त	
५९.	तुम साहब रहमान हो	२१
	द	
६०.	दया प्रेम सरूप सतगुरु	४४
६१.	दिन बीतत जावे, आयु खुटावे	२०४
	ध	
६२.	ध्यान भजन हीन, लहिहौ न प्रभु धन	२१२
६३.	ध्यानाभ्यास करो सद सदही	६३
	न	
६४.	नैनों के तारे चश्म रोशन	६५

क्रमांक		पृष्ठांक
६५.	निज तन में खोज सज्जन	१०९
६६.	नोकते सफेद सन्मुख	१२४
६७.	नैन सों नैनहिं देखिय जैसे	७४
६८.	नाहिंन करिये जगत सों प्रीती	२०१
६९.	नित प्रति सत्संग कर ले प्यारा	२१५
७०.	नमामी अमित ज्ञान रूपं कृपालं	२७
७१.	नहीं थल नहीं जल	७६
	प	
७२.	प्रभु अटल अकाम अनाम	२३
७३.	प्रभु तोहि कैसे देखन पाऊँ	७३
७४.	प्रभु अकथ अनामी सब पर स्वामी	६६
७५.	प्रभु वरणन में आवैं नाहीं	६७
७६.	प्रभु अकथ अनाम अनामय	६८
७७.	पाँच नौबत बिरतन्त कहौं	९१
७८.	प्रथमहिं धारो गुरु को ध्यान	११३
७९	प्रभु मिलने जो पथ धरि जाते	२१३
८०.	प्रेम-भक्ति गुरु दीजिये	१७
८१.	प्रेम-प्रीति चित चौक लगाये	२३४
	ब	
८२.	बार-बार करुँ वीनती	५०
८३.	बिना गुरु की कृपा पाये	१८४
	भ	
८४.	भजु मन सतगुरु सतगुरु	५८
८५.	भजो सत्तनाम, सत्तनाम	१३६
८६.	भजो हो गुरु चरण कमल	१४५
८७.	भाई योग हृदय वृत केन्द्र बिन्दु	१२८
८८.	भजु मन सतगुरु दयाल	१४६

क्रमांक		पृष्ठांक
८९.	भजु मन सतगुरु दयाल गुरु दयाल	१४७
९०.	भजो हो मन गुरु उदार	१४८
९१.	भजो भजो गुरु नाम हो	१५०
९२.	भजु गुरु नामा, लहु विश्रामा	१५१
९३.	भजो साध गुरु साध गुरु	१५४
९४.	भजो सत्यगुरु सत्यगुरु	१५५
९५.	भजो भजो गुरुदेव हो भाई	१५८
	म	
९६.	मास आसिन जगत बासिन	२२०
९७.	मंगल मूरति सतगुरु	५
९८.	मोहि दे दो भगती दान	४३
९९.	मेधा मन संग जेते	७४
१००.	मन तुम बसो तीसरो नैना	१३३
	य	
१०१.	योग हृदय केन्द्र बिन्दु में	१०८
१०२.	यहि विधि जैबै भव पार	१२६
१०३.	योग हृदय वृत्त केन्द्र बिन्दु सुख	१३५
१०४.	योग हृदय में वास ना	१९२
१०५.	यहि मानुष देह समैया में	२०३
	र	
१०६.	राम नाम अमर नाम भजो भाई सोई	१४२
	श	
१०७.	श्री सद्‌गुरु की सार शिक्षा	१३
	स	
१०८.	सब क्षेत्र क्षर अपरा परा पर	१
१०९.	सब सन्तन्ह की बड़ि बलिहारी	३

क्रमांक		पृष्ठांक
११०.	सत्यपुरुष की आरति कीजै	१९
१११.	सर्वेश्वरं सत्य शान्ति स्वरूपं	२५
११२.	सद्गुरु नमो सत्य ज्ञान स्वरूपं	३०
११३.	सतगुरु सुख के सागर	३४
११४.	सतगुरु दाता सतगुरु दाता	५५
११५.	सतगुरु दरस देन हित आए	५७
११६.	सतगुरु जी से अरज हमारी	६०
११७.	सतगुरु साहब की बलिहारी	६२
११८.	सन्तमते की बात, कहूँ साधक हित लागी	८३
११९.	सृष्टि के पाँच हैं केन्द्रन	९३
१२०.	सुनिये सकल जगत के वासी	९४
१२१.	सुखमन झलझल बिन्दु	११५
१२२.	सुषमनियाँ में मोरी नजर लागी	११८
१२३.	सुष्मनियाँ में नजरिया थिर	११९
१२४.	सुखमन के झीना नाल से	१२०
१२५.	सूरति दरस करन को जाती	१२७
१२६.	सांझ भये गुरु सुमिरो भाई	१३१
१२७.	सतनाम सतनाम सतनाम भज	१३७
१२८.	सब भव भय भंजन	१४४
१२९.	सतगुरु गुरुदेव गुरु	१६५
१३०.	सत्य ज्ञान दायक गुरु पूरा	१६९
१३१.	सतगुरु सत परमारथ रूपा	१७०
१३२.	सन्तन मत भेद प्रचार किया	१७३
१३३.	सतगुरु सतगुरु नितहिं पुकारत	१७६
१३४.	सतगुरु चरण टहल नित करिये	१७७
१३५.	सतगुरु सेवत गुरु को सेवत	१८२
१३६.	सतगुरु पद बिनु गुरु भेटत नाहीं	१८३
१३७.	सम दम और नियम यम	१९०

क्रमांक		पृष्ठांक
१३८.	सुरत सम्हारो अधर चढ़ाओ	१९७
१३९.	समय गया फिरता नहीं	२०२
१४०.	सन्तमत-सिद्धान्त	११
१४१.	सन्तमत की परिभाषा	१६
	ह	
१४२.	हे प्रेमरुपी सतगुरु	४८
१४३.	है जिसका नहीं रंग नहिं रुप	६९
	क्ष	
१४४.	क्षेत्र क्षर अक्षर के पार में	८२
	त्र	
१४५.	त्राहि गुरु त्राहि गुरु	१५९

महर्षि मेँहीँ-पदावली सटीक

(१)

ईश-स्तुति

सब क्षेत्र[१] क्षर[२] अपरा[३] परा[४] पर, औरु अक्षर[५] पार में।
निर्गुण[६] सगुण[७] के पार में, सत्[८] असत्[९] हू के पार में॥ १ ॥
सब नाम रूप के पार में, मन बुद्धि वच[१०] के पार में।
गो गुण[११] विषय[१२] पँच पार में, गति[१३] भाँति[१४] के हू पार में॥ २ ॥
सूरत[१५] निरत[१६] के पार में, सब द्वन्द्व[१७] द्वैतन्ह[१८] पार में।
आहत[१९] अनाहत[२०] पार में, सारे प्रपंचन्ह[२१] पार में॥ ३ ॥
सापेक्षता[२२] के पार में, त्रिपुटी[२३] कुटी[२४] के पार में।
सब कर्म काल[२५] के पार में, सारे जंजालन्ह[२६] पार में॥ ४ ॥
अद्वय[२७] अनामय[२८] अमल[२९] अति, आधेयता[३०] गुण पार में।
सत्तास्वरूप[३१] अपार[३२] सर्वाधार,[३३] मैं-तू पार में॥ ५ ॥
पुनि ओ३म्[३४] सोऽहम्[३५] पार में, अरु सच्चिदानन्द[३६] पार में।
हैं अनन्त[३७] व्यापक[३८] व्याप्य[३९] जो, पुनि व्याप्य व्यापक पार में॥ ६ ॥
हैं हिरण्यगर्भहु[४०] खर्व[४१] जासों, जो हैं सान्तन्ह[४२] पार में।
सर्वेश[४३] हैं अखिलेश[४४] हैं, विश्वेश[४५] हैं सब पार में॥ ७ ॥
सत्शब्द[४६] धर कर चल मिलन, आवरण[४७] सारे पार में।
सद्गुरु[४८] करुण[४९] कर तर[५०] ठहर धर,[५१] 'मेँहीँ' जावे पार में॥ ८ ॥

शब्दार्थ :

१. शरीर, २. नाशवान, ३. जड़ प्रकृति, ४. चेतन प्रकृति, ५. अविनाशी, ६. त्रयगुण (सत्त्व, रज और तम) से रहित, ७. त्रयगुण सहित, ८. अपरिवर्त्तनशील, ९. परिवर्त्तनशील, १०. वचन, ११. इन्द्रियों के स्वभाव, १२. रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द, १३. चाल, १४. प्रकार, १५. सुरत, जीवात्मा, १६. संलग्न, १७. दो पारस्परिक विरुद्ध भावों का जोड़ा, जैसे सुख-दुःख, दिन-रात आदि, १८. दो भाव, भिन्नता, १९. ठोकर से उत्पन्न शब्द, २०. बिना ठोकर से प्रगट शब्द, २१. सृष्टि, विस्तार, माया, २२. विपरीत

अर्थ रखनेवाले दो संबंधित शब्द, यथा—दिन-रात, अच्छा-बुरा आदि, २३. अत्यंत संबंधित तीन-तीन शब्द यथा—ज्ञान-ज्ञाता-ज्ञेय आदि, २४. स्थान, २५. समय, २६. उलझन, २७. अद्वितीय, बेजोड़, २८. रोग रहित, २९. मल रहित, ३०. आधारित रहने का गुण, ३१. जिसकी अपनी वास्तविक स्थिति हो, ३२. असीम, ३३. सबका आधार, ३४. सारशब्द, ३५. परमात्मा से एकत्व-बोध करानेवाला अन्तर्नाद, ३६. सत्, चित्त और आनन्द से युक्त, ३७. अन्त रहित, ३८. किसी वस्तु में प्रविष्ट, ३९. जिसमें प्रविष्ट हुआ जाए, ४०. समष्टि प्राण, संपूर्ण प्राणियों की इन्द्रियों का आधारस्वरूप अन्तरात्मा, ४१. छोटा, ४२. अंत सहित, ४३. सबका स्वामी, ४४. अखिल विश्व का स्वामी, ४५. विश्व का स्वामी, ४६. सारशब्द, ४७. परदा, ४८. सच्चे गुरु*, ४९. दयामय, ५०. हाथ, ५१. पकड़कर।

पद्यार्थ :

परमात्मा सब शरीरों (स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण और कैवल्य), सभी नाशवानों, जड़ प्रकृति, चेतन प्रकृति तथा अविनाशी तत्त्व से परे (श्रेष्ठ) है। त्रयगुण (सत्त्व, रज और तम) रहित और त्रयगुण सहित (प्रकृति) से परे तथा अपरिवर्तनशील और परिवर्तनशील पदार्थों से परे है॥ १॥ वह सभी नाम-रूपों, मन, बुद्धि और वचन से परे है। इन्द्रियों के स्वभाव, पंच विषयों (रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द), चलायमान पदार्थों और प्रकार-भेद से भी परे है॥ २ ॥ वह सुरत की लीनता (कैवल्य मंडल), सभी प्रकार के पारस्परिक विरुद्ध भावों तथा द्वैत के भावों से परे है। ठोकर से और बिना ठोकर से होनेवाले शब्दों और सारी सृष्टि से परे है ॥ ३ ॥ वह सापेक्ष भाव (यथा—सुख-दुःख, अंधकार-प्रकाश आदि) और त्रिपुटी स्थान (जहाँ तक ज्ञान-ज्ञाता-ज्ञेय का भेद बना रहता है अर्थात् कैवल्य मंडल) से परे है॥ ४ ॥ वह अद्वितीय, रोग रहित, अत्यन्त पवित्र और आधारित रहने के गुण से परे है। स्व-स्थिति से विद्यमान, असीम, सबका आधार और मैं-तू (भिन्नता) के परे है॥ ५॥ पुनः वह ओ३म (सारशब्द)-सोऽहम् (परमात्मा से एकत्व बोध

---

* सच्चे गुरु = जीवन-काल में जिनकी सुरत सारे आवरणों को पार कर शब्दातीत पद में समाधि-समय लीन होती है और पिण्ड में बरतने के समय उन्मुनी रहनी में रहकर सारशब्द में लगी रहती है।

करानेवाला शब्द) से परे और सच्चिदानंद ब्रह्म (परा प्रकृति में व्याप्त परमात्म-अंश) से भी परे है। वह अंत-रहित परमात्मा (स्वयं) व्यापक (सबमें प्रविष्ट) और व्याप्य (जिसमें प्रविष्ट हुआ जाए) है, फिर वह व्याप्य और व्यापक के परे भी है ॥ ६॥ हिरण्यगर्भ (समष्टि प्राण-सम्पूर्ण प्राणियों की इन्द्रियों का आधारस्वरूप अंतरात्मा) भी जिससे निम्न कोटि का (बहुत छोटा) है, जो समस्त ससीम (अंत-सहित) पदार्थों के पार में है, वही सबका प्रभु, सम्पूर्ण जगत का ईश्वर, विश्व का स्वामी सबके परे है॥ ७ ॥ महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि परम प्रभु परमात्मा से मिलने के लिए सत्शब्द (सारशब्द) को पकड़कर (अंधकार, प्रकाश और शब्द के त्रय) आवरणों के पार चलो। सद्गुरु के दयामय हाथ के नीचे ठहरकर और उसका सहारा प्राप्त कर ही (वर्णित) आवरणों के पार जाओगे ॥ ८॥

प्रातःसायंकालीन सन्त-स्तुति

(२)

सब सन्तन्ह की बड़ि बलिहारी[१] ।
उनकी स्तुति[२] केहि विधि कीजै,
मोरी मति अति नीच[३] अनाड़ी[४] ॥सब०॥ १ ॥
दुःख-भंजन[५] भव-फंदन[६]-गंजन[७],
ज्ञान-ध्यान-निधि[८] जग-उपकारी ।
विन्दु-ध्यान-विधि नाद-ध्यान-विधि,
सरल-सरल जग में परचारी ॥सब०॥ २ ॥
धनि[९] ऋषि-सन्तन्ह धन्य बुद्ध जी,
शंकर रामानन्द धन्य अघारी[१०] ।
धन्य हैं साहब सन्त कबीर जी,
धनि नानक गुरु महिमा भारी ॥सब०॥ ३ ॥
गोस्वामी श्री तुलसि दास जी,
तुलसी साहब अति उपकारी ।

दादू सुन्दर सूर श्वपच रवि
जगजीवन पलटू भयहारी[११] ॥सब०॥ ४ ॥
सतगुरु देवी अरु जे भये, हैं,
होंगे सब चरणन शिर धारी ।
भजत है 'मेँहीँ' धन्य-धन्य कहि,
गही[१२] सन्त पद आशा सारी ॥सब०॥ ५ ॥

शब्दार्थ :

१. महिमा,त्याग,२.गुणगान,३.मलिन,४.अज्ञानी, विचारहीन, ५.तोड़ने या नष्ट करनेवाला,६.सांसारिक बंधन, ७.नाश करनेवाला, ८.भंडार,९. धन्य, प्रशंसनीय,१०.पापों के नाशक,११.भय हरण करनेवाले, १२.पकड़कर, ग्रहणकर ।

पद्यार्थ :

सभी संतों की बड़ी महिमा है। उनका गुणगान कैसे किया जाए! मेरी बुद्धि मलिन और अज्ञानी है ॥ १॥ वे दुःखों के नाशक, (जन्म-मरण रूप) सांसारिक बंधनों के विनाशक, ज्ञान-ध्यान के भंडार और जगत के उपकारक हैं। वे संसार में विन्दु ध्यान (दृष्टियोग) और नाद ध्यान (सुरत-शब्द-योग) की सरल से सरल विधियों का प्रचार करते हैं ॥ २॥ सभी ऋषिगण और संतजन धन्य हैं। पापों के नाशक भगवान बुद्ध, श्री मदाद्य शंकराचार्य और स्वामी रामानंदजी धन्य हैं। संत कबीर साहब और गुरु नानक साहब धन्य हैं; इनकी महिमा (त्याग) बहुत ऊँची है ॥ ३॥ गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी और संत तुलसी साहब बहुत उपकारी हैं। दादू दयालजी, सुंदरदासजी, सूरदासजी, श्वपच भगत, रविदासजी, जगजीवन साहब और पलटू साहब (भक्तों के) भय को हरण करनेवाले हैं ॥ ४॥ सतगुरु बाबा देवी साहब और (वे सभी संत) जो पहले हो चुके हैं, जो (वर्तमान समय में) हैं तथा जो (भविष्य में) होंगे; सभी के चरणों में सिर रखकर प्रणाम करता हूँ। महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि मैं समस्त आशाओं के साथ उन संतों के चरणाश्रित होकर उनकी वन्दना करता हूँ ॥ ५॥

(३)

प्रातःकालीन गुरु-स्तुति

॥ दोहा ॥

मंगल[१] मूरति[२] सतगुरू[३], मिलवैं सर्वाधार[४] ।
मंगलमय मंगल करण, विनवौं[५] बारम्बार ॥ १ ॥
ज्ञान-उदधि[६] अरु ज्ञान-घन[७], सतगुरु शंकर[८] रूप ।
नमो नमो बहु बार हीं, सकल[९] सुपूज्यन[१०] भूप[११] ॥ २ ॥
सकल भूल-नाशक प्रभू , सतगुरु परम कृपाल ।
नमो कंज[१२] पद[१३] युग[१४] पकड़ि, सुनु प्रभु नजर निहाल[१५] ॥ ३ ॥
दया दृष्टि करि नाशिये, मेरो भूल अरु चूक ।
खरो[१६] तीक्ष्ण[१७] बुधि मोरि ना, पाणि[१८] जोड़ि कहुँ कूक[१९] ॥ ४ ॥
नमो गुरु सतगुरु नमो, नमो नमो गुरुदेव ।
नमो विघ्न हरता गुरू, निर्मल जाको भेव[२०] ॥ ५ ॥
ब्रह्म रूप सतगुरु नमो, प्रभु सर्वेश्वर[२१] रूप ।
राम दिवाकर[२२] रूप गुरु, नाशक भ्रम[२३]-तम[२४]-कूप[२५] ॥ ६ ॥
नमो सुसाहब[२६] सतगुरु, विघ्न विनाशक द्याल[२७] ।
सुबुधि विगासक[२८] ज्ञान-प्रद[२९], नाशक भ्रम-तम-जाल[३०] ॥ ७ ॥
नमो-नमो सतगुरु नमो, जा सम कोउ न आन ।
परम पुरुष हू तें[३१] अधिक, गावें[३२] संत सुजान[३३] ॥ ८ ॥

शब्दार्थ :

१. कल्याण, २. प्रतिमा, प्रतिरूप, ३. सच्चे गुरु (देखिये पृ० २) ४. सबका आधार, परमात्मा, ५. विनती (प्रार्थना) करता हूँ, ६. समुद्र, ७. बादल, समूह, ८. कल्याणकारी, ९. समस्त, सभी, १०. अत्यन्त पूजनीय, ११. श्रेष्ठ, राजा, १२. कमल, १३. चरण, १४. दोनों, १५. दृष्टि डालकर ही पूर्णकाम कर देनेवाला, १६. शुद्ध, १७. तेज, १८. हाथ, १९. पुकारना, २०. भेद, युक्ति, २१. सबका स्वामी या ईश्वर, २२. सूर्यब्रह्म, २३. अज्ञान, संदेह, मिथ्या,

२४. अंधकार, २५. कुआँ, २६. श्रेष्ठ स्वामी, २७. दया करनेवाले, २८. विकास करनेवाला, बढ़ानेवाला, २९. ज्ञान देनेवाला, ३०. बंधन, फन्दा, ३१. परमात्मा से भी, ३२. गाते हैं, ३३. सुंदर ज्ञानवाले ।

पद्यार्थ :

कल्याण के प्रतिरूप सद्गुरु परमात्मा से मिलाते हैं। वे (स्वयं) कल्याणमय हैं और (दूसरों का) कल्याण करनेवाले हैं। मैं बारंबार उनसे विनती करता हूँ ॥१॥ ज्ञान के समुद्र और ज्ञान के बादल रूप सद्गुरु कल्याण करनेवाले हैं। मैं उन्हें बारंबार प्रणाम करता हूँ; क्योंकि वे समस्त अत्यन्त पूजनीयों में श्रेष्ठ हैं॥ २॥ हमारे सभी भूलों (पापों) को नष्ट करनेवाले वे प्रभु अत्यन्त कृपालु हैं। मैं उनके दोनों चरण-कमलों को पकड़कर प्रणाम करता हूँ। दृष्टि डालकर ही पूर्णकाम कर देनेवाले हे प्रभु! मेरी विनती सुनिए ॥३॥ आप दया की दृष्टि से मेरे दुर्गुणों (गलतियों) को मिटा दीजिए। मेरी बुद्धि शुद्ध और तेज नहीं है, इसलिए मैं आपको बार-बार पुकारते हुए हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ॥ ४॥ मैं उन गुरु को प्रणाम करता हूँ, सद्गुरु को प्रणाम करता हूँ, गुरुदेव को प्रणाम करता हूँ, जो बाधाओं को दूर करते हैं और जिनकी सद्युक्ति (अंतःकरण को) निर्मल बनाती है ॥ ५॥ ब्रह्मरूप सद्गुरु को मैं प्रणाम करता हूँ, जो सबके स्वामी हैं। सूर्यब्रह्म रूप गुरुदेव अज्ञानता के अंधेरे कुएँ को नष्ट करते हैं ॥ ६॥ बाधाओं के नाशक हे दयालु, श्रेष्ठ स्वामी! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। आप अच्छी बुद्धि का विकास कर ज्ञान देते हैं और अज्ञान अंधकार के बंधनों को नाश करते हैं ॥ ७॥ ऐसे सद्गुरु को मैं बारंबार प्रणाम करता हूँ, जिनके समान दूसरा कोई (हितैषी) नहीं है। उनकी महिमा परमात्मा से भी अधिक है, ऐसा सुन्दर ज्ञान रखनेवाले संतजन गाते हैं ॥ ८॥

□□□□

(४)

छप्पय

जय[१] जय परम प्रचंड[२], तेज[३] तम[४]-मोह-विनाशन ।
जय-जय तारण[५] तरण[६], करन जन[७] शुद्ध बुद्ध[८] सन[९] ॥
जय जय बोध[१०] महान, आन[११] कोउ सरवर[१२] नाहीं ।
सुर[१३] नर लोकन माहिं, परम कीरति[१४] सब ठाहीं[१५] ॥
सतगुरु परम उदार हैं, सकल[१६] जयति[१७] जय- जय करें ।
तम अज्ञान महान् अरु, भूल-चूक-भ्रम मम हरें ॥१॥
जय जय ज्ञान अखण्ड[१८], सूर्य भव[१९]-तिमिर[२०]- विनाशन ।
जय-जय-जय सुख रूप, सकल भव-त्रास[२१]- हरासन[२२] ॥
जय-जय संसृति[२३]- रोग - सोग[२४], को वैद्य श्रेष्ठतर ।
जय-जय परम कृपाल, सकल अज्ञान चूक हर[२५] ॥
जय-जय सतगुरु परम गुरु[२६], अमित[२७]- अमित परणाम[२८] मैं ।
नित्य करूँ, सुमिरत रहूँ, प्रेम - सहित गुरु नाम मैं ॥२॥
जयति भक्ति-भंडार, ध्यान अरु ज्ञान - निकेतन[२९] ।
योग बतावनिहार, सरल जय-जय अति चेतन[३०] ॥
करनहार[३१] बुधि तीव्र, जयति जय-जय गुरु पूरे ।
जय-जय गुरु महाराज, उक्ति[३२]- दाता अति रूरे[३३] ॥
जयति-जयति श्री सतगुरू, जोड़ि पाणि युग पद धरौं ।
चूक से रक्षा कीजिये, बार-बार विनती करौं ॥३॥
भक्ति योग अरु ध्यान को, भेद[३४] बतावनिहारे ।
श्रवण[३५] मनन[३६] निदिध्यास[३७], सकल दरसावनिहारे[३८] ॥
सतसंगति अरु सूक्ष्म वारता[३९], देहिं बताई ।
अकपट[४०] परमोदार[४१] न कछु, गुरु धरें छिपाई ॥
जय-जय-जय सतगुरु सुखद, ज्ञान संपूरण अंग सम ।
कृपा-दृष्टि करि हेरिये, हरिय युक्ति[४२] बेढंग[४३] मम ॥४॥

शब्दार्थ :

१. विजय हो, यश फैले, २. प्रखर, ३. प्रकाश, ४. अंधकार, ५. पार करानेवाला, उद्धारक, ६. जो पार हो गए, उद्धार पा गए , ७. लोग, भक्त, ८. ज्ञानी,९.साथ, से, समान,१०. ज्ञान, ११.दूसरा,१२. समान, १३. देवता, १४. यश, १५. जगह, १६. सभी, १७. जय हो, १८. एकरस, खण्डित न होनेवाला, १९. संसार, २०. अंधकार, २१. भय, २२. घटानेवाला, नाशक, २३. संसार, २४. शोक, दु:ख, २५. हरण करते हैं, २६. गुरुओं में श्रेष्ठ, परमात्मा, २७. अपरिमित, असंख्य, २८. प्रणाम, २९. घर, भंडार, ३०. जागृत, सचेत, ज्ञानवान, ३१. करनेवाला, ३२. कथन, उपदेश, ३३. सुन्दर, उत्तम, ३४. युक्ति, रहस्य, ३५. वह ज्ञान जो सुनकर वा पढ़कर प्राप्त किया जाता है, ३६. वह श्रवण ज्ञान जो विचार में सत्य जँच गया हो, ३७. श्रवण और मनन ज्ञान को व्यवहार में उतारना, ३८. दिखानेवाला, प्रकट करनेवाला,३९.वार्ता, बात, ४०. कपट रहित, ४१. परम उदार, ४२.विचार, भेद, ४३. अनुचित ।

पद्यार्थ :

मोह अंधकार को नाश करनेवाले अत्यन्त प्रखर प्रकाश रूप (सद्‌गुरुदेव की) जय हो, जय हो! (संसार सागर से) तारनेवाले, स्वयं उद्धार पाए हुए, भक्तों को पवित्र और ज्ञानी बनानेवाले (गुरुदेव की) जय हो, जय हो! दूसरा कोई उनके समान ज्ञान में महान (बढ़ा हुआ) नहीं है, जय हो, जय हो! देव और नर लोकादि सभी जगहों में उनका परम यश फैला हुआ है। सद्‌गुरु अत्यन्त उदार हैं, सभी उनकी जय-जयकार करते हैं । वे मेरे घोर अज्ञान-अंधकार, गलतियों और मिथ्या ज्ञान को दूर करें ॥१॥

अखण्ड (अपरिवर्तित) ज्ञान रखनेवाले, सांसारिक अज्ञानान्धकार को नष्ट करने के लिए सूर्यरूप गुरुदेव की जय हो, जय हो! सुख-स्वरूप तथा संसार के समस्त भयों को हरनेवाले, गुरुदेव की जय हो, जय हो! संसार में होनेवाले रोगों और शोकों के नाशक, उत्तम वैद्य रूप गुरु की जय हो, जय हो! अत्यन्त कृपालु, सभी प्रकार के अज्ञान और गलतियों को हरनेवाले गुरु की जय हो, जय हो! परमात्मा रूपी सद्‌गुरु की जय हो, जय हो! मैं नित्य असंख्य बार उन्हें प्रणाम करता हूँ और प्रेम सहित गुरु नाम (गुरु मंत्र) का सुमिरन करता हूँ ॥२॥

भक्ति के भंडार, ज्ञान और ध्यान के आगार (घर) योग की सरल क्रिया बतानेवाले अत्यन्त जागृत (सचेत) गुरु की जय हो! बुद्धि को तेज बनानेवाले पूरे गुरु की जय हो, जय हो! सुन्दर (उत्तम) उपदेश देनेवाले गुरु महाराज की जय हो, जय हो! मैं हाथ जोड़कर आपके चरण पड़ता हूँ और बारंबार विनती करता हूँ कि गलतियों से मेरी रक्षा कीजिए। सद्गुरु आपकी जय हो, जय हो! ॥३॥

आप भक्ति, योग और ध्यान की युक्ति बतानेवाले हैं। आप श्रवण, मनन, निदिध्यासन आदि ज्ञान के सभी अंगों को प्रकट करनेवाले हैं। आप सत्संग और (अध्यात्म की अन्य) सूक्ष्म बातों को बता देते हैं। आप कपट रहित और अत्यन्त उदार हैं, (भक्तों से) कुछ भी (ज्ञान) छुपाकर नहीं रखते। सुख देनेवाले, ज्ञान के सम्पूर्ण अंगों (श्रवण, मनन, निदिध्यासन और अनुभव) के स्वरूप (अर्थात् सभी अंगों में पूर्ण) हे सद्गुरु! आपकी जय हो, जय हो। आप कृपा की दृष्टि से (मेरी ओर) देखिए और मेरे अनुचित विचारों (कुविचारों) को दूर कीजिए ॥४॥

□□□□

(५)

प्रातःकालीन नाम-संकीर्त्तन

अव्यक्त[१] अनादि[२] अनन्त[३] अजय[४], अज[५] आदि मूल[६] परमातम जो ।
ध्वनि प्रथम स्फुटित[७] परा धारा[८], जिनसे कहिये स्फोट[९] है सो ॥ १ ॥
है स्फोट वही उद्गीथ[१०] वही, ब्रह्मनाद[११] शब्दब्रह्म[१२] ओ३म्[१३] वही ।
अति मधुर प्रणव ध्वनि[१४] धार वही, है परमातम-प्रतीक वही ॥ २ ॥
प्रभु का ध्वन्यात्मक नाम[१५] वही, है सारशब्द[१६] सत्शब्द[१७] वही ।
है सत् चेतन अव्यक्त वही, व्यक्तों[१८] में व्यापक[१९] नाम वही ॥ ३ ॥
है सर्वव्यापिनि ध्वनि राम वही, सर्व कर्षक[२०] हरि कृष्ण नाम वही ।
है परम प्रचंडिनी[२१] शक्ति वही, है शिव-शंकर[२२] हर[२३] नाम वही ॥ ४ ॥

पुनि रामनाम है अगुण[२४] वही, है अकथ[२५] अगम[२६] पूर्णकाम[२७] वही ।
स्वर-व्यंजन रहित अघोष[२८] वही, चेतन ध्वनि-सिंधु अदोष[२९] वही ॥ ५ ॥
है एक ओ३म् सत्नाम[३०] वही, ऋषि-सेवित प्रभु का नाम वही ।
मुनि-सेवित[३१] गुरु का नाम वही ।
भजो ॐ ॐ प्रभु नाम यही, भजो ॐ ॐ मेँहीँ नाम यही ॥ ६ ॥

शब्दार्थ :

१. इन्द्रियों के ग्रहण में नहीं आने योग्य, २. आदि-रहित, ३. अंत-रहित, ४. जो जीता न जा सके, ५. जन्म-रहित, ६. सृष्टि उत्पत्ति का आदि कारण, ७. निकली, ८. चेतन धारा, ९—१७. सृष्टि निर्माण के लिए परमात्मा से प्रकट आरंभिक शब्द का गुण के आधार पर विभिन्न नाम, १८. इन्द्रिय ग्राह्य पदार्थों, १९. प्रविष्ट,२०. सबको आकर्षित करनेवाला, २१. तीव्र, २२. कल्याणकारी, २३. क्लेशों को हरनेवाला, २४. त्रिगुण (सत्त्व, रज और तम) रहित, २५. कहने में नहीं आने योग्य, २६. बुद्धि से परे, २७. सभी कामनाओं की पूर्ति करनेवाला, २८. उच्चारण नहीं करने योग्य, २९. निर्मल, ३०. सच्चा नाम, आदिनाद, ३१. सेवन किया गया।

पद्यार्थ :

इन्द्रियों के द्वारा नहीं ग्रहण होने योग्य, आदि-रहित, अन्त-रहित, जो जीता न जा सके, जन्म-रहित, सृष्टि-उत्पत्ति के आदि कारण परमात्मा से (सृष्टि-निर्माण के लिए) जो चेतन ध्वनि की धारा पहले-पहल निकली वह स्फोट कहलाती है ॥१॥ वही स्फोट, उद्गीथ, ब्रह्मनाद, शब्दब्रह्म और ओ३म् (भी कहा जाता) है। अत्यन्त आनंददायक प्रणव ध्वनि की धारा वही है और वही परमात्मा का प्रतीक (चिह्न) है॥ २॥ प्रभु परमात्मा का ध्वन्यात्मक नाम वही है, उसी को सारशब्द और सत्शब्द कहते हैं। वह अपरिवर्तनशील, ज्ञानमयी और इन्द्रियातीत है। सभी इन्द्रिय-ग्राह्य पदार्थों में वह ध्वनि व्यापक है ॥ ३॥ समस्त प्रकृति मंडलों में व्याप्त रामनाम ध्वनि भी वही है। सबकी सुरत को (परमात्मा की ओर) आकर्षित करनेवाली वही ध्वनि हरिनाम और कृष्णनाम है। (सृष्टि करनेवाली) अत्यन्त तीव्र शक्ति वही है और वही कल्याणकारी, क्लेशों को हरनेवाला नाम है ॥ ४॥ और फिर त्रिगुणों (सत्त्व,

रज और तम) से विहीन रामनाम वही है। कहने में नहीं आने योग्य, बुद्धि से परे और सभी कामनाओं की पूर्ति करनेवाला नाम भी वही है । वह स्वर-व्यंजन वर्णों से रहित, उच्चारण नहीं करने योग्य और निर्मल चेतन ध्वनि का समुद्र है ॥५॥ वही 'एक ॐ सतनाम' है। ऋषियों के द्वारा (ध्यान में) सेवन किया गया प्रभु परमात्मा का नाम वही है और मुनियों द्वारा (ध्यान में) सेवन किया गया गुरुनाम भी वही है । महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि प्रभु-परमात्मा के इसी सूक्ष्म ध्वन्यात्मक ॐकार नाम का भजन (अर्थात् ध्यान) करो ।

□□□□

(६)

संतमत-सिद्धान्त

१. जो परम तत्व[१] आदि[२]-अन्त-रहित, असीम[३], अजन्मा[४], अगोचर[५] सर्वव्यापक[६] और सर्वव्यापकता के भी परे[७] है, उसे ही सर्वेश्वर[८]- सर्वाधार[९] मानना चाहिए तथा अपरा[१०] (जड़) और परा[११] (चेतन) दोनों प्रकृतियों के पार में अगुण[१२] और सगुण[१३] पर[१४] अनादि[१५]- अनन्त[१६]- स्वरूपी, अपरम्पार[१७] शक्तियुक्त, देशकालातीत[१८], शब्दातीत[१९], नामरूपातीत[२०], अद्वितीय[२१], मन-बुद्धि और इन्द्रियों के परे जिस परम सत्ता[२२] पर यह सारा प्रकृति-मंडल एक महान यंत्र की नाईं[२३] परिचालित होता रहता है, जो न व्यक्ति[२४] है और न व्यक्त[२५] है, जो मायिक विस्तृतत्व-विहीन[२६] है, जो अपने से बाहर कुछ भी अवकाश[२७] नहीं रखता है, जो परम सनातन[२८] परम पुरातन[२९] एवं सर्वप्रथम से विद्यमान है, संतमत[३०] में उसे ही परम अध्यात्म पद[३१] वा परम अध्यात्मस्वरूपी परम प्रभु सर्वेश्वर (कुल्ल मालिक[३२]) मानते हैं ।
२. जीवात्मा[३३] सर्वेश्वर का अभिन्न[३४] अंश है ।
३. प्रकृति आदि-अंत सहित है और सृजित[३५] है ।
४. मायाबद्ध[३६] जीव आवागमन[३७] के चक्र में पड़ा रहता है। इस प्रकार रहना

जीव के सब दुःखों का कारण है । इससे छुटकारा पाने के लिये सर्वेश्वर की भक्ति ही एकमात्र उपाय है ।
५. मानस-जप, मानस-ध्यान, दृष्टि-साधन और सुरत-शब्द-योग द्वारा सर्वेश्वर की भक्ति करके अंधकार, प्रकाश और शब्द के प्राकृतिक तीनों परदों से पार जाना और सर्वेश्वर से एकता[३८] का ज्ञान प्राप्त करके मोक्ष[३९] पा लेने का मनुष्य मात्र अधिकारी है ।
६. झूठ बोलना, नशा खाना, व्यभिचार[४०] करना, हिंसा करनी अर्थात् जीवों को दुःख देना वा मत्स्य[४१]- मांस को खाद्य[४२] पदार्थ समझना और चोरी करनी; इन पाँचों महापापों से मनुष्यों को अलग रहना चाहिए ।
७. एक सर्वेश्वर पर ही अचल[४३] विश्वास, पूर्ण भरोसा तथा अपने अंतर[४४] में ही उनकी प्राप्ति का दृढ़[४५] निश्चय रखना, सद्गुरु की निष्कपट[४६] सेवा, सत्संग और दृढ़ ध्यानाभ्यास; इन पाँचों को मोक्ष का कारण समझना चाहिए ।

शब्दार्थ :

१. सर्वोपरि तत्त्व, आदि तत्त्व, २. आरंभ, ३. सीमा-रहित, ४. जन्म-रहित, ५. इन्द्रियों से ग्रहण न होनेवाला, ६. सबमें फैला हुआ, ७. जो प्रकृति मंडल में व्यापक होकर उसके बाहर भी हो, ८.सबका स्वामी, ९.सबका आधार, १०. निम्न कोटि की (जड़) प्रकृति, ११. उच्च कोटि की (चेतन) प्रकृति, १२. सत्त्व, रज और तम; इन तीन गुणों से विहीन, निर्गुण,१३. त्रिगुण (सत्त्व रज और तम) से युक्त, १४. श्रेष्ठ, परे, १५.आदि-रहित, १६. अंत-रहित, १७. जिसका वार-पार नहीं हो, १८. स्थान और समय से बाहर,१९. शब्द से परे, २०. नाम-रूप विहीन, २१. एक, २२. सर्वोपरि (पारमार्थिक) सत्ता, २३. मशीन की तरह, २४. मनुष्य, २५. प्रकट, २६. विस्तार (लंबाई, चौड़ाई, मोटाई) से रहित, २७. खाली स्थान,२८. अत्यन्त प्राचीन काल से विद्यमान, २९.सबसे प्राचीन,३०.संतों का विचार,३१.परमात्म पद,३२.सबका स्वामी, ३३. शरीर स्थित आत्मतत्त्व,३४. अटूट, ३५. रचित, ३६.माया में फँसा, ३७. जन्म लेना और मरना, ३८. एक होना, ३९. कैवल्य मुक्ति, छुटकारा, ४०. पर स्त्री या पर पुरुष गमन, ४१. मछली, ४२. खाने योग्य, ४३. अटल, ४४. अन्दर, ४५. जो विचलित न हो, ४६. कपट रहित ।

□□□□

(७)

श्री[१] सद्‌गुरु[२] की सार[३] शिक्षा, याद रखनी चाहिये ।
अति अटल श्रद्धा[४] प्रेम से, गुरु भक्ति करनी चाहिये ॥१॥
मृग वारि[५] सम सबही प्रपञ्चन्ह[६], विषय सब दुख रूप हैं ।
निज सुरत[७] को इनसे हटा, प्रभु में लगाना चाहिये ॥२॥
अव्यक्त[८] व्यापक[९] व्याप्य[१०] पर जो, राजते[११] सबके परे ।
उस अज[१२] अनादि[१३] अनन्त[१४] प्रभु में, प्रेम करना चाहिये ॥३॥
जीवात्म प्रभु का अंश[१५] है, जस अंश नभ[१६] को देखिये ।
घट[१७] मठ[१८] प्रपञ्चन्ह[१९] जब मिटैं, नहिं अंश कहना चाहिये ॥४॥
ये प्रकृति द्वय[२०] उत्पत्ति[२१] लय[२२], होवैं प्रभू की मौज[२३] से ।
ये अजा[२४] अनाद्या[२५] स्वयं हैं, हरगिज न कहना चाहिये ॥५॥
आवागमन[२६] सम दुःख दूजा, है नहीं जग में कोई ।
इसके निवारण[२७] के लिये, प्रभु-भक्ति करनी चाहिये ॥६॥
जितने मनुष तनधारि हैं, प्रभु-भक्ति कर सकते सभी ।
अन्तर व बाहर भक्ति कर, घट-पट[२८] हटाना चाहिये ॥७॥
गुरु जाप मानस ध्यान मानस, कीजिये दृढ़ साधकर ।
इनका प्रथम अभ्यास कर, स्रुत[२९] शुद्ध करना चाहिये ॥८॥
घट[३०]- तम प्रकाश व शब्द पट त्रय[३१], जीव पर हैं छा रहे ।
कर दृष्टि अरु ध्वनि योग[३२] साधन, ये हटाना चाहिये ॥९॥
इनके हटे माया हटेगी, प्रभु से होगी एकता[३३] ।
फिर द्वैतता[३४] नहिं कुछ रहेगी, अस मनन[३५] दृढ़ चाहिये ॥१०॥
पाखण्ड[३६] अरुऽहंकार तजि, निष्कपट हो अरु दीन[३७] हो ।
सब कुछ समर्पण कर गुरु की, सेव करनी चाहिये ॥११॥
सत्संग नित अरु ध्यान नित, रहिये करत संलग्न[३८] हो ।
व्यभिचार, चोरी, नशा, हिंसा, झूठ तजना[३९] चाहिये ॥१२॥

सब सन्तमत सिद्धान्त ये, सब सन्त दृढ़ हैं कर दिये ।
इन अमल[४०] थिर[४१] सिद्धान्त को, दृढ़ याद रखना चाहिये ॥१३॥
यह सार है सिद्धान्त सबका, सत्य गुरु को सेवना[४२] ।
'मेँहीँ' न हो कुछ यहि बिना, गुरु सेव करनी चाहिये ॥१४॥

शब्दार्थ :

१.आदर सूचक शब्द ,२.सच्चे गुरु (देखें पृष्ठ २),३. मूल अंश, ४. विश्वास, ५. मृगतृष्णा का जल (रेगिस्तान की कड़ी धूप में मृग को भ्रमवश दीखनेवाला जल ।), ६.भ्रम,७.मन, ८.अप्रकट, ९—१० (देखें पृष्ठ १), ११.विद्यमान है, १२—१४. देखें पृष्ठ-९, १५. लघु रूप, १६. आकाश, १७. घड़ा, १८. घर, १९.आवरण,२०.दोनों,२१.उत्पन्न होना,२२. विलीन होना,२३.संकल्प, २४. अजन्मा, २५. आदि-रहित, २६. संसार में आना और जाना अर्थात् जन्म-मरण, २७. दूर करने, २८. आवरण, २९. सुरत, आत्मा, ३०. अपने अंदर, ३१. तीन, ३२. सुरत-शब्द-योग, ३३. एक होने का भाव, ३४. दो-भाव, ३५.ऐसा विचार, ३६. आडंबर, ३७.विनम्र, ३८. तत्परतापूर्वक लगा हुआ, ३९. त्यागना, ४०. पवित्र, त्रुटिहीन, ४१. स्थिर, निश्चित, ४२. सेवा करना ।

पद्यार्थ :

श्री सद्‌गुरु की मूल शिक्षाओं को स्मरण रखना चाहिए । अत्यन्त अटल विश्वास और प्रेमपूर्वक उनकी भक्ति करनी चाहिए ॥१॥ मृगतृष्णा के जल की तरह सब कुछ (सारा संसार) भ्रम है और पंच विषय (रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द) दुःख देनेवाले हैं। अपने मन को इनसे हटाकर परमात्मा में लगाना चाहिए ॥ २॥ जो अप्रकट है, व्यापक-व्याप्य; सबके परे विद्यमान है,उस जन्म-रहित और आदि-अन्त-रहित परमात्मा में प्रेम करना चाहिए ॥३॥ जिस तरह घटाकाश और मठाकाश महदाकाश का अंश है, उसी तरह जीवात्मा परमात्मा का अंश है। घट-मठ रूप आवरण के हट जाने पर फिर उसे महदाकाश का अंश नहीं (महदाकाश ही) कहना चाहिए । (उसी तरह त्रय आवरणों के हट जाने पर जीवात्मा परमात्मा कहलाता है) ॥ ४॥ (जड़ और चेतन) इन दोनों प्रकृतियों की उत्पत्ति और विलीनता परमात्मा की मौज

से होती है। ये प्रकृतियाँ स्वयं हैं ही अथवा ये अजन्मा और आदि-रहित हैं, ऐसा कदापि नहीं मानना चाहिए ॥ ५॥ जन्म लेने और मरने के समान संसार में दूसरा दुःख नहीं है। इससे छूटने के लिए परमात्मा की भक्ति करनी चाहिए ॥ ६॥ जितने मनुष्य शरीरधारी हैं, सभी परमात्मा की भक्ति कर सकते हैं। आंतरिक और बाहरी भक्ति (ध्यान और सत्संग) कर शरीर के अंदर पड़े (अंधकार, प्रकाश और शब्द रूपी) आवरणों को हटाना चाहिए ॥ ७॥ गुरुमंत्र का मानस जप और गुरु रूप का मानस ध्यान मजबूती के साथ कीजिए। पहले इन दोनों का अभ्यास करके सुरत (मन) को पवित्र कर लेना चाहिए ॥ ८॥ हमारे अन्दर अंधकार, प्रकाश और शब्द; ये तीन आवरण छाए हुए हैं। दृष्टियोग और सुरत-शब्द-योग का अभ्यास करके इन आवरणों को हटाना चाहिए ॥ ९॥ इन आवरणों के हट जाने से माया हटेगी और (जीवात्मा की) परमात्मा से एकता हो जाएगी। फिर (जीव और पीव के बीच) कुछ भी भिन्नता नहीं रहेगी—ऐसा दृढ़ विचार अपनाए रखना चाहिए ॥१०॥ आडम्बर और घमंड छोड़कर, कपट-रहित और विनम्र होकर अपना सर्वस्व समर्पित करके गुरु की सेवा करनी चाहिए ॥११॥ प्रतिदिन संलग्नतापूर्वक सत्संग और ध्यानाभ्यास करते रहिए। (साथ ही) व्यभिचार (पर-स्त्री, पर-पुरुष गमन), चोरी, नशा-सेवन, हिंसा (जीवों को दुःख देना या मांस, मछली, अंडा आदि सेवन करना) और झूठ; इन पंच पापों को छोड़ देना चाहिए ॥१२॥ संतमत के इन सभी सिद्धांतों को संतों ने निश्चित कर दिये हैं। इन पवित्र और सत्य सिद्धांतों को दृढ़ता के साथ याद रखना चाहिए (यानी अमल में लाना चाहिए) ॥ १३॥ सच्चे गुरु की सेवा करना — यह सभी सिद्धांतों का मूल तत्त्व है। महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि इसके बिना कुछ भी (आध्यात्मिक उन्नति) संभव नहीं है। अतः गुरु की सेवा करनी चाहिए।

□□□□

(८)

संतमत की परिभाषा

१. शांति स्थिरता वा[१] निश्चलता[२] को कहते हैं।

२. शांति को जो प्राप्त कर लेते हैं, संत कहलाते हैं।

३. संतों के मत[३] वा धर्म[४] को संतमत कहते हैं।

४. शांति प्राप्त करने का प्रेरण[५] मनुष्यों के हृदय में स्वाभाविक ही है। प्राचीन काल में ऋषियों[६] ने इसी प्रेरण से प्रेरित होकर इसकी पूरी खोज की और इसकी प्राप्ति के विचारों को उपनिषदों[७] में वर्णन किया। इन्हीं विचारों से मिलते हुए विचारों को कबीर साहब और गुरु नानक साहब आदि सन्तों ने भी भारती[८] और पंजाबी आदि भाषाओं में सर्वसाधारण के उपकारार्थ वर्णन किया, इन विचारों को ही संतमत कहते हैं; परन्तु संतमत की मूल भित्ति[९] तो उपनिषद के वाक्यों को ही मानने पड़ते हैं; क्योंकि जिस ऊँचे ज्ञान का तथा उस ज्ञान के पद तक पहुँचाने के जिस विशेष साधन नादानुसंधान[१०] अर्थात् सुरत-शब्द-योग[११] का गौरव संतमत को है, वे तो अति प्राचीन काल की इसी भित्ति पर अंकित[१२] होकर जगमगा रहे हैं। भिन्न-भिन्न[१३] काल तथा देशों में संतों के प्रकट होने के कारण तथा इनके भिन्न-भिन्न नामों पर इनके अनुयायियों[१४] द्वारा संतमत के भिन्न-भिन्न नामकरण होने के कारण संतों के मत में पृथक्त्व[१५] ज्ञात होता है, परन्तु यदि मोटी और बाहरी बातों को तथा पंथाई भावों[१६] को हटाकर विचारा जाय और संतों के मूल एवं सार विचारों को ग्रहण किया जाए, तो यही सिद्ध[१७] होगा कि सब संतों का एक ही मत है।

शब्दार्थ :

१. एवं, २. अचलता, ३.विचार,४.धारण करने योग्य गुण, ५.प्रेरित करना, ६.प्राचीन काल के मंत्रद्रष्टा महापुरुष, जिनकी अनुभूतियाँ वेद-उपनिषद् आदि ग्रंथों में संकलित हैं, ७.वेद का अंतिम भाग (ज्ञानकांड) जिसमें

जीव-ब्रह्म आदि का निरूपण है। ८. हिन्दी भाषा, ९. मूल आधार, १०—११. संतमत की सूक्ष्मतर एवं सूक्ष्मतम साधना, जिसमें परमात्मा से स्फुटित नाद का ध्यान किया जाता है। १२. चिह्नित, १३. अलग-अलग, १४. किसी मत के अनुसरण करनेवाले, १५. भिन्नता, १६. साम्प्रदायिकता का भाव, १७. प्रमाणित।

□□□□

(९)

अपराह्न एवं सायंकालीन विनती

प्रेम-भक्ति[1] गुरु दीजिये, विनवौं[2] कर जोड़ी ।
पल-पल छोह[3] न छोड़िये, सुनिये गुरु मोरी ॥१॥
युग-युगान[4] चहुँ खानि[5] में, भ्रमि-भ्रमि[6] दुख भूरी[7] ।
पाएउँ[8] पुनि[9] अजहूँ[10] नहिं, रहूँ इन्हतें दूरी ॥२॥
पल-पल मन माया रमे, कभुँ[11] विलग[12] न होता ।
भक्ति भेद[13] बिसरा[14] रहे, दुख सहि-सहि रोता ॥३॥
गुरु दयाल दया करी, दिये भेद बताई ।
महा अभागी जीव के, दिये भाग जगाई ॥४॥
पर[15] निज[16] बल कछु नाहिं है, जेहि बने कमाई[17] ।
सो[18] बल तबहीं पावऊँ, गुरु होयँ सहाई ॥५॥
दृष्टि टिकै स्त्रुति[19] धुन रमै, अस[20] करु गुरु दाया[21] ।
भजन में मन ऐसो रमै, जस रम सो माया ॥६॥
जोत जगे धुनि सुनि पड़ै, स्त्रुति चढ़ै अकाशा ।
सार धुन्न[22] में लीन होइ, लहे निज घर[23] वासा ॥७॥
निजपन[24] की जत[25] कल्पना[26], सब जाय मिटाई ।
मनसा[27] वाचा[28] कर्मणा[29], रहे तुम में समाई ॥८॥
आस[30] त्रास[31] जग के सबै, सब वैर[32] व[33] नेहू[34] ।
सकल भुलै एके रहे, गुरु तुम पद-स्नेहू ॥९॥
काम क्रोध मद[35] लोभ के, नहिं वेग[36] सतावै ।
सब प्यारा परिवार अरु, सम्पति नहिं भावै[37] ॥१०॥

गुरु ऐसी करिये दया, अति होइ सहाई ।
चरण-शरण होइ कहत हौं, लीजै अपनाई ॥११॥
तुम्हरे जोत-स्वरूप अरु, तुम्हरे धुन-रूपा ।
परखत रहूँ[38] निशि-दिन[39] गुरु, करु दया अनूपा[40] ॥१२॥

शब्दार्थ :

१. प्रेमपूर्ण सेवा भाव, २. प्रार्थना करता हूँ, ३. स्नेह, ४. युग-युगों से, ५. चार खानियाँ — अंडज, पिंडज, उष्मज और अंकुरज, ६. भटकते हुए, ७. बहुत, ८. प्राप्त किया, ९. फिर भी, १०. आज तक भी, ११. कभी भी, १२. अलग, १३. रहस्य, १४. भूला, १५. परन्तु, १६. अपना, १७. अर्जन करना, १८. वह, १९. सुरत, २०. ऐसा, २१. दया, २२. सार शब्द, आदि शब्द, २३. अपना घर अर्थात् परमात्म-पद, २४. अपनत्व, ममत्व, २५. जितने, २६. भावना, २७. मन से, २८. वचन से, २९. कर्म से, ३०. आशा, ३१. भय, ३२. शत्रुता, ३३. और, ३४. प्रेम, ३५. अहंकार, ३६. उत्तेजना, ३७. अच्छा लगे, ३८. देखता रहूँ, निरखता रहूँ, ३९. रात-दिन, ४०. उपमा-रहित।

पद्यार्थ :

हे गुरुदेव! मैं हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ कि मुझे अपनी प्रेमपूर्ण भक्ति दीजिए। आप एक क्षण भी (मेरे प्रति अपने) स्नेह को नहीं छोड़िए। हे गुरु! मेरी यह प्रार्थना सुनिए ॥ १॥ युग-युगों से चारों खानियों (अण्डज, पिंडज, उष्मज और अंकुरज) में भटकते हुए मैंने बहुत दुःख पाया है। फिर भी अभी तक इसे (आपकी प्रेम-भक्ति) मैंने नहीं पाई है; इनसे दूर ही रहा हूँ ॥ २॥ प्रत्येक क्षण मेरा मन माया में विचरता है, कभी अलग नहीं होता। मैं भक्ति के महत्व को भूला रहता हूँ और (इसी कारण) दुःख सहन कर-करके रोता हूँ ॥ ३॥ हे दयालु गुरुदेव! आपने दया करके मुझे भक्ति का रहस्य बतला दिया और मुझ अति अभागी जीव के सौभाग्य को जगा दिया ॥ ४ ॥ परन्तु मुझे अपना कुछ भी बल नहीं है, जिससे कि भक्ति-धन का अर्जन कर सकूँ। वह बल मैं तभी पा सकता हूँ जब गुरुदेव मुझ पर कृपालु हो जाएँ ॥ ५॥ हे गुरुदेव! आप मुझ पर ऐसी दया कीजिए कि मेरी दृष्टिधारें (सुषुम्ना में) स्थिर हो जाय और सुरत अन्तर्ध्वनि में रमण करे। मेरा मन भजन (ध्यानाभ्यास) में उसी तरह रम जाए, जिस

तरह वह माया में रमता है॥ ६॥ (हमारे अंतर में) प्रकाश प्रकट हो जाए, अन्तर्ध्वनि सुनाई पड़े। सुरत अन्तराकाश में गमन करे और सार शब्द (ओ३म्) में लीन होकर अपने घर (अर्थात् परमात्म-पद) में वास करे ॥ ७॥ मेरे मन में ममत्व के जितने भाव हैं, सभी मिट जाएँ। मन, वचन और कर्म से मैं आपमें समाकर (समर्पित होकर) रहूँ ॥ ८॥ संसार की सभी आशाएँ, भय, शत्रुता और प्रेम सब को भूल जाऊँ और एक आपके चरणों का प्रेम ही रह जाए ॥ ९॥ काम, क्रोध, अहंकार और लोभ के वेग, मुझे नहीं सतावे। सभी प्रिय, परिवार और संपत्ति मुझे अच्छी नहीं लगे (अर्थात् इनमें आसक्ति न रहे।) ॥ १०॥ हे गुरुदेव! आप अत्यन्त कृपालु होकर मुझ पर ऐसी ही दया कीजिए। मैं आपके चरणों की शरण होकर कहता हूँ कि आप मुझे अपना लीजिए ॥ ११॥ मैं आपकी ज्योति-रूप और नाद-रूप को रात-दिन निरखता रहूँ, आप ऐसी अनुपम दया कीजिए ॥ १२॥

□□□□

(१०)

आरती

सत्यपुरुष[१] की आरति कीजै।
हृदय-अधर[२] को थाल सजीजै[३] ॥ १ ॥
दामिनी[४] जोति झकाझक[५] जामें[६]।
तारे चन्द अलौकिक[७] तामें[८] ॥ २ ॥
आरति करत होत अति उज्ज्वल[९]।
ब्रह्म की जोति अलौकिक उज्ज्वल ॥ ३ ॥
सन्मुख बिन्दु में दृष्टि समावे।
अचरज आरति देखन पावे ॥ ४ ॥
दिव्य चक्षु[१०] सो अचरज पेखे[११]।
या जग-सुक्ख तुच्छ करि[१२] लेखे[१३] ॥ ५ ॥
होत महाधुन[१४] अनहद[१५] केरा[१६]।
सुनत सुरत सुख लहत[१७] घनेरा[१८] ॥ ६ ॥

सूरत सार शबद में लागी।
पिण्ड[१९]-ब्रह्माण्ड[२०] देइ सब त्यागी ॥ ७ ॥
आतम[२१] अरपि[२२] के भोग[२३] लगावे।
सेवक[२४] सेव्य[२५] भाव छुटि जावे ॥ ८ ॥
हम प्रभु, प्रभु हम एकहि होई।
द्वन्द्व[२६] अरु द्वैत[२७] रहे नहिं कोई ॥ ९ ॥
मेँहीँ ऐसी आरति कीजै।
भव[२८] महँ जनम बहुरि[२९] नहिं लीजै ॥ १० ॥

शब्दार्थ :

१. परमात्मा, २. हृदयाकाश, अन्तराकाश, ३. सजा लीजिए, ४. बिजली, ५खूब चमकीला, ६.जिसमें, ७. अद्‌भुत, असाधारण, दिव्य, ८.उसमें, ९. स्वच्छ, प्रकाशमान, १०.जाग्रत, स्वप्न और मानस-दृष्टि निरुद्ध होने पर खुलनेवाली अन्तर्दृष्टि, ११.देखे, १२.ओछे पदार्थ की तरह, १३. जाने, १४. महाध्वनि, १५. जिसकी हद (सीमा) न हो, जड़ात्मक मंडल की विविध अन्तर्ध्वनि, १६.का, १७. प्राप्त करता है, १८.अत्यधिक, १९. शरीर, २०. बाह्य जगत, २१. आत्मा, २२. अर्पण कर, २३. नैवेद्य, २४. सेवा करने वाला, २५. जिसकी सेवा की जाय, इष्ट, २६—२७.देखें पृष्ठ १, २८.संसार, २९.पुनः, फिर से।

पद्यार्थ :

हृदयाकाश की थाल सजाकर परमात्मा की आरती कीजिए ॥१॥ जिस आकाश में बिजली का खूब चमकीला प्रकाश है, उसमें अद्‌भुत तारे और चाँद भी हैं ॥२॥ आरती करते समय अत्यन्त तीव्र प्रकाश होता है। वह परमात्मा की दिव्य स्वच्छ ज्योति है ॥३॥ सामने के सुषमन बिन्दु में दृष्टिधारों के स्थिर होने पर आश्चर्यमयी आरती देखने में आती है ॥४॥ दिव्य दृष्टि से उस आश्चर्यमयी ज्योति को देखने पर (व्यक्ति) संसार के सुख को ओछा जानता है ॥५॥ (अन्तराकाश में) अनहद नाद की महाध्वनि होती है। सुरत उसे सुनकर अत्यधिक सुख प्राप्त करती है। जब सुरत सार शब्द (ओ३म्) में लग जाती है तो वह शरीर और बाह्य जगत (के सभी

आवरणों) को त्याग देती है ॥७॥ यहाँ चेतन आत्मा अपने आपको अर्पित कर (परमात्मा को) भोग लगाती है और सेवक-सेव्य की भावना मिट जाती है॥८॥ यहाँ हम और प्रभु अर्थात् जीव और ब्रह्म एक हो जाते हैं। फिर परस्पर विरुद्ध भाव और भिन्नता नहीं रहती ॥९॥ महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि ऐसी आरती करो, जिससे संसार में पुनः जन्म न लेना पड़े ॥१०॥

(११)

विनती (दोहा)

तुम साहब[१] रहमान[२] हो, रहम[३] करो सरकार[४] ।
भव सागर[५] में हौं पड़ो, खेइ उतारो पार ॥१॥
भव सागर दरिया[६] अगम[७], जुलमी[८] लहर अनंत ।
षट विकार[९] की हर घड़ी, ऊठत होत न अंत ॥२॥
इन लहरों की असर तें[१०], गई सुबुद्धी खोइ ।
प्रेम दीनता[११] भजन-सँग[१२], तीनहु बने न कोइ ॥३॥
आप अपनपौ[१३] सब भुले, लहरों के ही हेत[१४] ।
सो भूले कैसे लहौं[१५], सुख जो शान्ती देत ॥४॥
तेहि कारण अति गरज[१६] सों, अरज[१७] करौं गुरुदेव ।
भव-जल लहरन बीच में, पकड़ि बाँह मम[१८] लेव ॥५॥
बुद्धि शुद्धि कुछ भी नहीं, कहै क्या 'मेँहीँ दास' ।
सतगुरु खुद[१९] जानैं सभै, बेगि[२०] पुराइय[२१] आस[२२] ॥६॥
मेरे मुअलिज[२३] जगत में, सतगुरु बिन कोइ नाहिं ।
तेहि कारण विनती करौं, हे सतगुरु तोहि पाहिं[२४] ॥७॥

शब्दार्थ :

१. स्वामी, मालिक, २. दयालु, ३. दया, ४. स्वामी, प्रभु, ५. संसार- सागर,

६. नदी, जलराशि, ७. अथाह, ८. उत्पात मचानेवाला, उपद्रवी, ९. मन के छः विकार—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य, १०. से, ११. नम्रता, १२. भजन (ध्यान) में प्रेम, १३. परमात्म और आत्म-स्वरूप, १४. कारण, १५. प्राप्त करूँ, १६. जरूरत, प्रयोजन, १७. प्रार्थना, १८. मेरा, १९. स्वयं, २०. शीघ्रतापूर्वक, २१.पूरा कीजिए, २२.आश, २३. ईलाज करनेवाला, वैद्य, २४. पास ।

पद्यार्थ :

हे (गुरुदेव) स्वामी! आप दयालु हैं। हे प्रभु! दया कीजिए । संसार-रूपी समुद्र में पड़ा हूँ, खेवकर पार उतार दीजिए ॥ १॥ संसार-समुद्र अथाह जलराशि है, जिसमें उत्पात मचानेवाली अंतहीन लहरें उठती रहती हैं। हर पल उठनेवाली इन षट्विकार रूप लहरों का कभी अंत नहीं होता है ॥ २॥ इन लहरों की प्रभाव से मेरी सुबुद्धि (सात्त्विकी बुद्धि) खो गई है। प्रेम, विनम्रता तथा भजन (ध्यान) करने की रुचि; ये तीनों उत्पन्न नहीं होते ॥ ३॥ इन लहरों के कारण मैं परमात्म और आत्म स्वरूप—सबका ज्ञान भूल गया हूँ । उस भूले हुए ज्ञान को मैं कैसे प्राप्त करूँ, जो सुख और शांति देता है ॥ ४॥ इसी कारण अत्यन्त जरूरतवश प्रार्थना करता हूँ कि हे गुरुदेव! संसार-समुद्र के बीच पड़ा हूँ, आप मेरी बाँह पकड़ (कर खींच) लें ॥ ५॥ महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि हे गुरुदेव! मुझमें कुछ भी ज्ञान और पवित्रता नहीं है । आप स्वयं सब कुछ जानते हैं । आप मेरी आशा को शीघ्र पूरी कीजिए ॥ ६॥ इस संसार में सद्गुरु के अतिरिक्त मेरे भव-रोगों को दूर करने वाला और कोई (वैद्य) नहीं है । इसी कारण हे सद्गुरु! मैं आपके पास विनती करता हूँ ॥ ७॥

(१२)

प्रभु अटल[1] अकाम[2] अनाम[3],
हो साहब पूर्ण धनी[4] ॥१॥हो साहब०॥
अति अलोल[5] अक्षर[6] क्षर[7] न्यारा[8],
शुद्धातम[9] सुख धाम ॥२॥हो साहब०॥
अविगत[10] अज विभु[11] अगम[12] अपारा[13],
सत्य पुरुष सतनाम ॥३॥हो साहब०॥
सीम[14] आदि मध अन्त विहीना,
सब पर पूरन काम ॥४॥हो साहब०॥
बरन[15] विहीन, न रूप न रेखा,
नहिं रघुवर नहिं श्याम ॥५॥हो साहब०॥
सत रज तम पर[16] पुरुष प्रकृति पर,
अलख अद्वैत[17] अधाम[18] ॥६॥हो साहब०॥
अगुण सगुण दोऊ तें न्यारा,
नहिं सच्चिदानन्द नाम ॥७॥हो साहब०॥
अखिल विश्व पुनि विश्वरूप अणु,
तुम में करें मुकाम[19] ॥८॥हो साहब०॥
सब तुममें प्रभु अँटै होइ तुछ[20],
तुम अँटो सो नहिं ठाम[21] ॥९॥हो साहब०॥
अति आश्चर्य अलौकिक अनुपम[22],
को कहि सक गुण ग्राम[23] ॥१०॥हो साहब०॥
त्रिपुटी[24] द्वन्द्व[25] द्वैत से न्यारा,
लेश[26] न माया नाम ॥११॥हो साहब०॥
करो न कछु कछु होय न तुम बिनु,
सबका अचल[27] विराम ॥१२॥हो साहब०॥
महिमा अगम अपार अकथ[28] अति,
बुद्धि होत हैरान[29] ॥१३॥हो साहब०॥

अविरल[30] अटल स्वभक्ति[31] मोहि को,
दे पुरिये[32] मन काम ॥१४॥हो साहब०॥

शब्दार्थ :

१. स्थिर, २. इच्छा-रहित, ३. नाम-रहित, ४. पूर्ण सामर्थ्यवान,५.जो चंचल न हो, ६.—७. देखें पृष्ठ १, ८. परे, ९. शुद्ध आत्मस्वरूप, १०. सर्वव्यापक, ११. बहुत बड़ा, १२. बुद्धि से परे, १३. अंतहीन, १४. सीमा, १५.वर्ण, १६. परे, १७. एक ही एक, १८. जिसका घर न हो, अनिकेत, १९. निवास, २०. छोटा, २१. स्थान,२२. उपमा-रहित, २३. गुण-समूह, २४.—२५. देखें पृष्ठ १, २६. थोड़ा, २७. जो चले नहीं, स्थिर, २८.जो कहा नहीं जाए, २९. चकित,३०.निरंतर, सघन,३१. अपनी भक्ति,३२. पूरा कीजिए।

पद्यार्थ :

हे परमात्मा! तुम स्थिर, इच्छा-रहित, नाम-रहित, सबके स्वामी और पूर्ण सामर्थ्यवान हो ॥ १॥ तुझमें बिल्कुल कम्पन नहीं होता, तुम अविनाशी-नाशवान से परे हो। तुम शुद्ध आत्मस्वरूप और सुख के भण्डार हो ॥ २॥ तुम सर्वव्यापक, जन्म-रहित, सबसे बड़े, बुद्धि से परे, अंतहीन, सत्य-स्वरूप और सत्य नाम हो ॥ ३ ॥ तुम सीमा रहित, आदि-मध्य-अंत से रहित, सबसे परे और भक्तों की इच्छाओं को पूर्ण करनेवाले हो ॥४॥ तुम वर्ण रहित हो, तुम्हारा कोई रूप या चिह्न नहीं है और न तो तुम राम हो, न कृष्ण ही ॥५॥ तुम सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण से परे,चेतन और जड़ प्रकृति से परे, आँखों से न दीखनेवाला, एक-ही-एक और अनिकेत हो ॥६॥ तुम निर्गुण-सगुण दोनों से परे हो। सच्चिदानंद ब्रह्म भी तुम्हारा नाम नहीं है ॥ ७॥ सम्पूर्ण विश्व और संसार का अंश अणुरूप भी तुझमें निवास करते हैं ॥८॥ हे प्रभु! सब कुछ तुझमें अँटकर भी छोटा पड़ जाता है और तुम (पूरे-के-पूरे किसी में) अँट सको, ऐसा कोई स्थान नहीं है ॥ ९॥ तुम अत्यन्त आश्चर्यजनक, अलौकिक (जैसा इस संसार में नहीं है) और उपमा रहित हो। तुम्हारे गुण समूहों को कौन कह सकता है ॥ १०॥ तुम त्रिपुटी (ज्ञाता-ज्ञेय-ज्ञान के भेद), पारस्परिक दो विरुद्ध भावों के झगड़े से परे हो। तुझमें नाम मात्र की भी माया नहीं है ॥ ११॥ तुम कुछ भी नहीं करते, पर तुम्हारे किए बिना कुछ भी नहीं होता। तुम्हीं सबके स्थिर और अंतिम विश्राम-स्थल

हो ॥ १२॥ तुम्हारी महिमा अथाह, अनंत और बिल्कुल ही नहीं कहने योग्य है। (तुम्हारे स्वरूप को जानने के प्रयास में) बुद्धि चकित हो जाती है ॥ १३ ॥ मुझे अपनी निरंतर स्थिर रहनेवाली भक्ति देकर मेरी मनोकामना पूर्ण कीजिए ॥ १४ ॥

□□□□

(१३)

सर्वेश्वरं सत्य शान्ति स्वरूपं ।
सर्वमयं[१] व्यापकं अज अनूपं[२] ॥ १ ॥
तन बिन अहं बिन बिना रंग रूपं ।
तरुणं न बालं न वृद्धं स्वरूपं ॥ २ ॥
गुण गो महातत्त्व[३] हंकार[४] पारं ।
गुरु ज्ञान गम्यं[५] अगुण तेहु न्यारं ॥ ३ ॥
रुज[६] संसृतं[७] पार आधार सर्वं ।
रुद्धं[८] नहीं नाहिं दीर्घं[९] न खर्वं[१०] ॥ ४ ॥
ममतादि रागादि दोषं अतीतं ।
महा अद्भुतं नाहिं तप्तं[११] न शीतं[१२] ॥ ५ ॥
हार्दिक[१३] विनय[१४] मम सृनो[१५] प्रभु नमामी ।
हाटक[१६] वसन[१७] मणि की हू नाहिं कामी[१८] ॥ ६ ॥
राज्यं रु यौवन त्रिया[१९] नाहिं माँगूँ ।
राजस रु तामस विषय संग न लागूँ ॥ ७ ॥
जन्मं मरण बाल यौवन बुढ़ापा ।
जर-जर[२०] करयो रु[२१] गेरयो[२२] अन्ध कूपा ॥ ८ ॥
कीशं[२३] समं मोह मुट्ठी को बाँधी ।
कीचड़ विषय फँसि भयो है उपाधी[२४] ॥ ९ ॥
जगत सार आधार देहू यही वर ।
जतन सों सो सेऊँ[२५] जो सद्गुरु कुबुद्धि हर ॥ १० ॥
यही चाह स्वामी न औरो चहूँ कुछ ।
यहि बिन सकल भोग गन[२६] को कहूँ तुछ ॥ ११ ॥

शब्दार्थ :

१. सबमें भरा हुआ, २. उपमा-रहित, ३. समष्टि बुद्धि, ४. अहंकार, ५. जानने योग्य, ६. रोग, ७. आवागमन, जन्म-मरण, ८. घिरा, आबद्ध, ९. बड़ा, १०. छोटा, ११. गर्म, १२. ठंढ़ा, १३. हृदय की, १४. प्रार्थना, १५. सुनो, १६. सोना, १७. वस्त्र, १८. इच्छुक, १९. स्त्री, २०. जीर्ण-शीर्ण, क्षत-विक्षत, २१.और, २२. गिरा दिया, २३. बन्दर, २४. बंधन युक्त, २५. सेवा करूँ, २६. भोग्य पदार्थ ।

पद्यार्थ :

सबका स्वामी परमात्मा सत्य, शांति-स्वरूप, सबमें भरपूर—सर्वव्यापक अजन्मा और उपमा-रहित है ॥ १॥ वह शरीर-रहित, अहंकार-रहित और रंग-रूप विहीन है। वह न युवारूप, न बालक रूप और न वृद्ध रूप है ॥ २॥ वह त्रयगुण, इन्द्रियों, बुद्धि और अहंकार से परे है। वह निर्गुण से भी परे और सद्गुरु के ज्ञान से जानने योग्य है।॥३॥ वह रोग और आवागमन से परे है तथा सबका आधार है। वह किसी से आबद्ध नहीं है और न बड़ा है न छोटा ही ॥४॥ वह ममता और राग (आसक्ति) आदि दोषों से परे है। वह न गर्म है, न शीतल ही, किन्तु अत्यन्त आश्चर्यजनक है ॥५॥ हे प्रभु! मैं आपको नमस्कार करके कहता हूँ, मेरे हृदय की प्रार्थना सुनिये। सोना, वस्त्र और मणियों का मैं इच्छुक नहीं हूँ ॥६॥ मैं राज्य, यौवन और स्त्री नहीं माँगता हूँ। मैं राजसी और तामसी विषयों के संग नहीं लगूँ ॥ ७॥ जन्म-मृत्यु, बालपन, यौवन और बुढ़ापा ने मुझे जीर्ण-शीर्ण कर अज्ञानता के कुएँ में गिरा दिया है।॥ ८॥ बंदर की तरह मोह की मुट्ठी बाँधे* विषय के कीचड़ में फँसकर बँधनयुक्त हो गया हूँ।॥९॥ हे जगत के सार और सबके आधार-रूप परमात्मा! मुझे यही वरदान दीजिए कि यत्नपूर्वक मैं उन सद्गुरु की सेवा करूँ, जो कुबुद्धि को हरनेवाले हैं।॥ १०॥ हे प्रभु! मैं यही चाहता हूँ और कुछ भी नहीं चाहता। इसके अतिरिक्त सभी भोग्य-पदार्थों को ओछा कहूँ (समझूँ) ॥११॥

□□□□

* सँकरे मुँहवाले बर्त्तन में रखी मिठाई खाने के लालच में बन्दर उसमें हाथ डालकर मिठाई को अपनी मुट्ठी में पकड़ लेता है और जब उसकी मुट्ठी बाहर नहीं निकलती तो अपने को फँसा हुआ मान लेता है। इस तरह शिकारी के द्वारा पकड़ा जाता है।

(१४)

सद्गुरु-स्तुति

नमामी[१] अमित[२] ज्ञान, रूपं कृपालं ।
अगम बोध दाता, सुबुधि निधि विशालं ॥ १ ॥
क्षमाशील अति धीर[३], गंभीर[४] ज्ञानं ।
धरम कील[५] दृढ़ थीर[६], सम धीर ध्यानं ॥ २ ॥
जगत्-त्राणकारी[७], अघारी[८] उदारं ।
भगत प्राण रूपं, दया गुण अपारं ॥ ३ ॥
नमो सत्गुरुं, ज्ञान दाता सुस्वामी ।
नमामी नमामी, नमामी नमामी ॥ ४ ॥
हरन भर्म[९] भूलं, दलन[१०] पाप मूलं ।
करन धर्म पूलं[११], हरन सर्व शूलं ॥ ५ ॥
जलन भव विनाशन, हनन[१२] कर्म पाशन[१३] ।
तनन[१४] आश नाशन, गहन ज्ञान भाषण ॥ ६ ॥
युगल[१५] रत्न पुरुषार्थ परमार्थ दाता ।
दया गुण सुमाता[१६], अमर रस पिलाता ॥ ७ ॥
नमो सत् गुरुं सर्व, पूज्यं अकामी[१७] ।
नमामी नमामी, नमामी नमामी ॥ ८ ॥
सरब[१८] सिद्धि दाता, अनाथन को नाथा ।
सुगुण बुधि विधाता, कथक ज्ञान[१९] गाथा[२०] ॥ ९ ॥
परम शांतिदायक, सुपूज्यन को नायक[२१] ।
परम सत्सहायक, अधर कर गहायक[२२] ॥ १० ॥
महाधीर योगी, विषय-रस-वियोगी ।
हृदय अति अरोगी, परम शान्ति-भोगी ॥ ११ ॥
नमो सद्गुरुं सार, पारस[२३] सुस्वामी ।
नमामी नमामी, नमामी नमामी ॥ १२ ॥

महाघोर कामादि दोषं विनाशन ।
महाजोर मकरन्द[२४] मन बल हरासन[२५] ॥ १३ ॥
महावेग जलधार, तृष्णा सुखायक ।
महासुक्ख भण्डार, सन्तोष दायक ॥ १४ ॥
महा शांति-दायक, सकल गुण को दाता ।
महा मोह-त्रासन[२६], दलन धर सुगाता[२७] ॥ १५ ॥
नमो सद्गुरुं, सत्य धर्म सुधामी ।
नमामी नमामी, नमामी नमामी ॥ १६ ॥
जो दुष्टेन्द्रियन नाग गण विष अपारी ।
हैं सद्गुरु सुगारुड़, सकल विष संघारी[२८] ॥ १७ ॥
महा मोह घनघोर, रजनी[२९] निविड़[३०] तम ।
हैं सद्गुरु वचन दिव्य सूरज किरण सम[३१] ॥ १८ ॥
महाराज सद्गुरु हैं, राजन को राजा ।
हैं जिनकी कृपा से सरैं[३२] सर्व काजा ॥ १९ ॥
भने[३३] 'मेँहीँ' सोई परम गुरु नमामी ।
नमामी नमामी, नमामी नमामी ॥ २० ॥

शब्दार्थ :

१.नमस्कार करता हूँ, २.असीम, अत्यधिक,३. धैर्यवान, ४.गहरा, ५. स्तंभ, ६. स्थिर, ७.रक्षा करनेवाले, ८.पाप-नाशक,९.भ्रम, १०. नाश करनेवाला, ११.पुल, १२.मारनेवाला,१३.बंधन,१४. शरीर का,१५.दोनों,१६.श्रेष्ठ माता,१७.कामना-रहित,१८.सभी,१९. ज्ञान कहनेवाले,२०.कथा,२१. श्रेष्ठ, २२. पकड़ानेवाला, २३. एक प्रकार का पत्थर, जिसके बारे में मान्यता है कि उसके स्पर्श से लोहा सोना बन जाता है। २४. भौंरा, २५. घटानेवाला, नष्ट करनेवाला,२६.भय,२७.सुन्दर शरीर,२८. संहार करनेवाला,२९. रात, ३०. घना, ३१. समान, ३२. पूरे होते हैं, ३३. कहते हैं ।

पद्यार्थ :

असीम ज्ञानरूप और कृपालु, अगम (परमात्मा) का ज्ञान देनेवाले उत्तम विचारों के विशाल भंडार सद्गुरु को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १॥

वे क्षमाशील, अत्यन्त धैर्यवान, गहन ज्ञान रखनेवाले, धर्म के मजबूत और अटल स्तंभ तथा ध्यान-साधना में समान रूप से धैर्य धारण करनेवाले हैं ॥ २॥ संसार के रक्षक, पापों के नाशक, उदार, भक्तों के प्राणरूप और अपार दया गुण रखनेवाले हैं ॥ ३॥ ऐसे ज्ञान-दान में समर्थ सद्‌गुरु रूप श्रेष्ठ स्वामी को मैं नमस्कार करता हूँ, नमस्कार करता हूँ ....॥ ४ ॥

वे भ्रम और भूलों को हरनेवाले, पापों की जड़ को नष्ट करनेवाले, धर्म का पुल तैयार करनेवाले और सभी प्रकार की व्यथाओं को दूर करनेवाले हैं॥ ५॥ सांसारिक तापों को नष्ट करनेवाले, कर्म-बंधनों को विनष्ट करनेवाले, शरीर की आसक्ति को मिटानेवाले और गंभीर ज्ञान के उपदेशक हैं ॥ ६॥ पुरुषार्थ (कर्तव्यनिष्ठा) और परमार्थ (मोक्ष) रूपी दो रत्नों को देनेवाले और दयागुण से पूर्ण श्रेष्ठ माता के समान हैं, जो अमर रस (हरि-रस) पिलाते हैं॥७॥ ऐसे सबके द्वारा पूजित, कामना-रहित सद्‌गुरु को मैं नमस्कार करता हूँ , नमस्कार करता हूँ.....॥ ८॥

वे सभी प्रकार की सिद्धियाँ देनेवाले, अनाथों के नाथ, सद्‌गुण और सद्‌बुद्धि उत्पन्न करनेवाले और ज्ञान की कथाएँ कहनेवाले हैं॥ ९॥ परम शांति देनेवाले, अत्यन्त पूजनीय व्यक्तियों में श्रेष्ठ, बड़े और सच्चे सहायक और अन्तराकाश को ग्रहण करानेवाले हैं ॥ १०॥ अत्यन्त धैर्यवान योगी, विषय रस से विमुख रहनेवाले, विकार-रहित हृदयवाले और परम शांति का उपभोग करनेवाले हैं ॥ ११॥ ऐसे सार रूप (परमात्म रूप) और पारसरूप श्रेष्ठ स्वामी—सद्‌गुरु को मैं नमस्कार करता हूँ , नमस्कार करता हूँ......॥ १२॥

वे अत्यन्त कठिन काम, क्रोध, लोभादि षट्‌विकारों के विनाशक और बलवान मनरूप भौंरे की विषय-भोग की शक्ति समाप्त करनेवाले हैं ॥१३॥ महावेगवान तृष्णा (भोगेच्छा) रूप जलधारा को सुखा देनेवाले, महासुख (मोक्ष-सुख) के भंडार और संतुष्टि प्रदान करनेवाले हैं॥ १४॥ महाशांति देनेवाले, समस्त सद्‌गुण देनेवाले और महामोह (घोर अज्ञानता) रूपी भय को सुन्दर शरीर धारण कर नष्ट करनेवाले हैं॥ १५॥ सत्यधर्म के श्रेष्ठ निवास रूप सद्‌गुरु को मैं नमस्कार करता हूँ, नमस्कार करता हूँ......॥१६॥

नागरूप दुष्ट इन्द्रिय-समूह अपार विष वाला है। उसके समस्त विष को नष्ट करने के लिए सद्‌गुरु श्रेष्ठ गारुड़ मंत्र के समान हैं॥१७॥

महामोह की भयानक रात्रि के घने अंधकार को नष्ट करने के लिए सद्‌गुरु के वचन अलौकिक सूर्य की किरणों के समान हैं ॥ १८॥ गुरु महाराज राजाओं के राजा हैं, जिनकी कृपा से सभी कार्य सम्पन्न होते हैं॥१९॥ महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि उन्हीं परमगुरु को मैं बारंबार नमस्कार करता हूँ ॥२०॥

□□□□

(१५)

सद्‌गुरु नमो[१] सत्य ज्ञानं स्वरूपं ।
सदाचारि पूरण[२] सदानन्द[३] रूपं ॥ १ ॥
तरुण[४] मोह घन तम विदारण[५] तमारी[६] ।
तरण[७] तारणंऽहं[८] बिना तन विहारी[९] ॥ २ ॥
गुण त्रय अतीतं सु परमं पुनीतं[१०] ।
गुणागार[११] संसार द्वन्द्वं अतीतं[१२] ॥ ३ ॥
रुज संसृतं[१३] वैद्य परमं दयालुं ।
रुलकर[१४] प्रभू मध्य प्रभू ही कृपालुं ॥ ४ ॥
मननशील समशील[१५] अति ही गंभीरं ।
मरुत[१६] मदन[१७] मेघं सुयोगी[१८] सुधीरं[१९] ॥ ५ ॥
हानि रु लाभं युगल मध समं थीर ।
हालन चलन[२०] शुभ्र[२१] इन्द्रिय दमन वीर ॥ ६ ॥
राग रोषं[२२] बिनं शुद्ध शांतिं स्वरूपं ।
राकापतिं[२३] तुल्यं शीतल अनूपं ॥ ७ ॥
जरा जन्म मृत्युं परं पार धामी[२४] ।
जगत आत्मतुल्यं हृदय अति अकामी ॥ ८ ॥
कीरति[२५] सु भृंगं[२६] समं सो सु स्वामी ।
कीटन्ह स्वयं सम करन गुरु नमामी ॥ ९ ॥
जगत त्राण कर्त्ता रु हर्त्ता भौजालं ।
जरा जन्म-हर्त्ता रु कर्त्ता सु भालं[२७] ॥ १० ॥

यज्ञं जपं तप फलं हूँ न कामी ।
यक[२८] सद्गुरुं पद नमामी नमामी ॥११॥

शब्दार्थ :

१. नमस्कार, २. पूर्ण, ३. सत् और आनंदमय, ४. मध्याह्न, ५. फाड़नेवाला, ६. सूर्य, ७. उद्धार पाए हुए, ८. उद्धार करनेवाला, ९. विचरनेवाला, १०. पवित्र, ११. गुणों के भंडार, १२. परे, १३. आवागमन, १४. मिलकर, १५. समतावान, १६. वायु, १७. कामदेव, १८. श्रेष्ठयोगी, १९. अत्यन्त धैर्यवान, २०. आचार-विचार, २१. पवित्र, २२. क्रोध, २३. पूर्णिमा का चन्द्रमा, २४. धामों के परे, २५. यश, २६. एक विशेष प्रकार का कीट, २७. सुंदर भाग्यवाला, २८. एक मात्र ।

पद्यार्थ :

सत्य और ज्ञानस्वरूप सद्गुरु को नमस्कार है, जो पूर्ण सदाचारी और सदानंद रूप हैं ॥१॥ आप मोह (अज्ञानता) रूप घने अंधकार को फाड़ने (नष्ट करने) के लिए मध्याह्नकालीन सूर्य के समान हैं। वे संसार से उद्धार पाए हुए, दूसरों का उद्धार करनेवाले और अहंकार रहित होकर शरीर में विहार (अन्तर्गमन) करनेवाले हैं ॥२॥ आप त्रयगुणों से मुक्त, परमपवित्र, सद्गुणों के भंडार और सांसारिक द्वंद्वों (झंझटों) से परे हैं ॥३॥ आप आवागमन रूप रोगों को मिटाने के लिए परम दयालु वैद्य रूप हैं। आप प्रभु से मिलकर स्वयं कृपालु प्रभु ही हो गए हैं ॥४॥ आप विचारवान, समतावान अत्यन्त गंभीर, मेघरूप कामदेव को छिन्न-भिन्न करने के लिए वायु रूप, श्रेष्ठयोगी और अत्यन्त धैर्यवान हैं ॥५॥ आप हानि और लाभ दोनों में समानरूप से स्थिर रहनेवाले, पवित्र आचार-विचार वाले और इन्द्रियों को नियंत्रित रखने में वीर हैं ॥६॥ आप राग-रोष से रहित शुद्ध शांति स्वरूप तथा पूर्णिमा की चन्द्रमा की भाँति अनुपम शीतल हैं ॥७॥ आप बुढ़ापा, जन्म-मृत्यु से परे और (साकेत, बैकुंठादि सभी) धामों के परे निवास करनेवाले, संसार को अपने समान जाननेवाले और कामना-रहित हृदयवाले हैं ॥८॥ आपकी सुंदर कीर्ति कीट को अपनी तरह बनानेवाले भृंग (अर्थात् शिष्य को अपने समान बनानेवाले) की-सी हैं, ऐसे सुन्दर स्वामी—सद्गुरु को नमस्कार है ॥९॥ आप संसार की रक्षा करनेवाले, भव-बंधन को काटनेवाले, बुढ़ापा और जन्म को हरनेवाले

तथा सुन्दर भाग्य निर्माण करनेवाले हैं ॥१०॥ मैं यज्ञ, जप, तप के फलों की इच्छा नहीं रखता हूँ। मात्र सद्गुरु के चरणों में बारंबार नमस्कार करता हूँ ॥११॥

□□□□

(१६)

छन्द

जय जयति सद्गुरु जयति जय जय, जयति श्री[१] कोमल तनुं[२] ।
मुनि[३] वेष धारन करन मुनिवर, जयति कलिमल[४] दल[५] हनं[६] ॥
जय जयति जीवन मुक्त मुनिवर, शीलवन्त[७] कृपालु जो ।
सो कृपा करि कै करिय आपन, दास प्रभु जी मोहि को ॥
जय जयति सद्गुरु जयति जय जय, सत्य सत् वक्ता प्रभू ।
हरि[८] कुमति भर्महिं[९] सुमति सत्य को, पाहि[१०] मोहि दीजै अभू[११] ॥
यह रोग संसृति[१२] व्यथा शूलन्ह[१३], मोह के जाये[१४] सभै ।
अति विषम[१५] सर[१६] बहु होय बेध्यो[१७], मोहि अब कीजै अभै[१८] ॥
प्रभु! कोटि कोटिन्ह बार इन्ह दुख, मोहि आनि[१९] सतायेऊ ।
यहु बार जहु[२०] एक वचन आशा, आय तहु में समायेऊ[२१] ॥
बिनु तुव[२२] कृपा को बचि सकै, तिहु काल तीनहु लोक में ।
प्रभु शरण तुव आरत जना[२३] तू, सहाय[२४] जन के शोक में ॥

शब्दार्थ :

१. ऐश्वर्य, २. शरीर, ३. तपस्वी, मननशील, ४. पाप, ५. समूह, ६. नष्ट करनेवाला, ७. सच्चाई और नम्रता से बरतनेवाला, ८. हरण कर, ९. भ्रम को, १०. रक्षा करो, ११. अभी, १२. जन्म-मरण, संसार, १३. तीव्र पीड़ा, १४. उत्पन्न किए हुए, १५. तीक्ष्ण, कठिन, १६. वाण, १७. बेध रहा है, १८. निर्भय, १९. आकर, २०. सन्तान, २१. सम+ आयेऊ= आना, पहुँचना, २२. तुम्हारा, २३. अति दुःखी भक्त, २४. सहायक ।

पद्यार्थ :

ऐश्वर्यवान और मनोहर शरीरवाले सद्गुरुदेव की जय हो । तपस्वी का वेश धारण करनेवाले, (भक्तों को) श्रेष्ठ तपस्वी (साधक) बनानेवाले, पाप समूह को नष्ट करनेवाले सद्गुरुदेव की जय हो । जीवन्मुक्त, श्रेष्ठ मननशील (विचारक) सद्गुरुदेव की जय हो। आप शीलवान (सच्चाई और नम्रता से बरतनेवाले) और कृपालु हैं । इसलिए हे प्रभु! कृपा करके मुझे अपना दास बना लीजिए । सत्य और स्पष्ट बोलनेवाले प्रभु की जय हो । आप मेरी कुबुद्धि और भ्रम को हर कर तथा सुबुद्धि और सत्य ज्ञान देकर अभी मेरी रक्षा कीजिए । आवागमन का रोग और व्यथा-वेदना, जो मोह से उत्पन्न हुए हैं, वे अनेक अति तीक्ष्ण वाणरूप होकर मुझे बेध रहे हैं । अब इनसे मुझे निर्भय (मुक्त) कीजिए । हे प्रभो! इन दुःखों ने करोड़ों-करोड़ बार आकर मुझे सताया है। इस बार (इस मनुष्य योनि में आकर) आपका पुत्र (संतान*) आपके वचन** पाने की एक आशा लिये आपकी शरण में आया है। आपकी कृपा के बिना तीनों काल और तीनों लोकों में इन (मोहजनित दुःख) से कौन बच सकता है ? आप दुःख में भक्तों को सहायता देते हैं, इसलिए हे सद्गुरुदेव! आपका अत्यन्त दुःखी दास आपकी शरण में आया है ।

---

* संतमता बिनु गति नहीं, सुनो सकल दे कान ।
जो चाहो, उद्धार को, बनो संत-संतान ।। (महर्षि मेँहीँ-पदावली)

** वचन तीन प्रकार के होते हैं-(१)आशीर्वचन, (२)अन्तर्ज्योति (प्रकाश रूप) और (३) अन्तर्नाद यानी शब्द रूप ।

(१) कल्याण की कामना ।

(२) 'वन्दौं गुरु पद कंज, कृपा सिन्धु नर रूप हरि ।
महामोह तम पुंज, जासु वचन रविकर निकर ।।' (रामचरितमानस, बालकांड)
महामोह घनघोर रजनी निविड़तम ।
हैं सद्गुरु वचन, दिव्य सूरज किरण सम।। (महर्षि मेँहीँ-पदावली)

(३) आरम्भ में वचन (शब्द) था और वचन (शब्द) ईश्वर के संग था और वचन ईश्वर था। (पवित्र बाइबुल, सेन्ट जॉन-योहन्ना, सत्संग योग भाग-२)

(१७)

कजली

सतगुरु सुख के सागर, शुभ गुण आगर[1], ज्ञान उजागर[2] हैं ॥टेक ॥
अन्तर पथ-गामी[3], अति निःकामी[4], अन्तर्यामी[5] हैं ।
त्रैगुण पर[6] योगी, हरि-रस भोगी, अति निःसोगी[7] हैं ॥१॥
थिर बुद्धि सुजाना[8], यती सयाना[9],धरि ध्वनि[10] ध्याना हैं ।
सो ध्वनि सारा, 'मेँहीँ' न्यारा[11], सतगुरु धारे हैं ॥२॥

शब्दार्थ :

१. भंडार,२.प्रकाशित करनेवाला, ३.गमन करनेवाला,४. कामना-रहित, ५. मन की बात जाननेवाला, ६. परे, ७. शोक-रहित, ८. श्रेष्ठ ज्ञानवाला, ९. पूर्ण संन्यासी, १०. नाद, शब्द, ११. विलक्षण ।

पद्यार्थ :

सद्गुरु सुख के समुद्र, कल्याणकारी गुणों के भंडार और सद्ज्ञान प्रकाशित करनेवाले हैं । वे अन्तरमार्ग पर चलनेवाले, अत्यन्त कामना-रहित और मन की बातों को जाननेवाले हैं। तीनों गुणों (सत्त्व, रज और तम) से परे पहुँचे हुए योगी, (ज्योति और नाद रूप) हरि-रस का आनंद लेनेवाले तथा अत्यन्त शोक-रहित हैं । वे स्थिर बुद्धिवाले, श्रेष्ठ ज्ञान सम्पन्न, पूर्ण संन्यासी और अन्तर्नाद का ध्यान करनेवाले हैं। महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि वह अन्तर्नाद (सार शब्द) सृष्टि का सार तत्त्व है और अन्य सभी नादों से विलक्षण है। सद्गुरु उसी नाद को (सुरत द्वारा) ग्रहण किए हुए हैं ।

(१८)

चौपाई

गुरू गुरू मैं करौं पुकारा ।
सतगुरु साहब सुनो हमारा ॥
अघ[१] औगुण[२] दुख मेटनहारा[३] ।
सतगुरु साहब परम उदारा ॥
अपनि विरद[४] प्रभु आप सम्हारो ।
मुझ अघ-रूपहिं पार उतारो ॥
मैं अति नीच निकाम[५] अनाड़ी ।
तुम दयाल प्रभु अगम अपारी ॥
मैं बुधि-हीन शुद्धि कछु नाहीं ।
सन्तत[६] रहुँ मन नीच के पाहीं ॥
तन मन गुण इन्द्रिन का बन्दी ।
होइ भोगुँ विष रस आनन्दी ॥
पाँच तत्त्व प्रकृति पंच बीसा[७] ।
के वश तिन्ह मुख[८] बरतौं[९] ईशा[१०] ॥
काम क्रोध मद लोभा मोहा ।
नींद भूख आलस तन छोहा[११] ॥
चञ्चलपन कटुता असहन्ता[१२] ।
वृथा गुणावन[१३] प्रण विचलन्ता[१४] ॥
सब मिलि करैं उपद्रव भारी ।
सुस्थिरता नहिं सकौं सम्हारी ॥
निज वश चलै न कछु इन्ह पाहीं ।
तुम तजि और न कोइ सहाई ॥
अस विचारि प्रभु दया करीजै ।
चरणन बल मोहू को दीजै ॥

सुस्थिरता के बाधक जेते ।
तुम पद बल ले जीतउँ तेते ॥
जीति थीर होइ पद-रज ध्याउँ ।
ध्यावत यम-हद[१५] ते बहराउँ[१६] ॥
हो दयाल अस कीजिय दाया ।
मो दुखिया कहँ दीजिय छाया[१७] ॥

शब्दार्थ :

१.पाप,२.दुर्गुण,३.मिटानेवाले,४.यश,क्रीर्ति, ५.निकम्मा,६.सतत,७.पचीस, ८. उनके अनुकूल,९.चलता हूँ, १०. प्रभु, ११. ममता, १२. असहनशीलता, १३. संकल्प-विकल्प, १४. अस्थिर, १५. यम की सीमा, १६. बाहर आऊँ, १७. आश्रय ।

पद्यार्थ :

गुरु! गुरु! कहकर मैं पुकार रहा हूँ। हे सद्गुरु स्वामी! मेरी पुकार सुनिए॥ पापों, दुर्गुणों और दुःखों को मिटानेवाले सद्गुरु स्वामी अत्यन्त उदार हैं॥ आप अपनी कीर्ति को सँभालिए (निभाइए) और मुझ पापरूप को (संसार समुद्र से) पार उतारिए ॥ मैं बहुत नीच, निकम्मा और ज्ञानहीन हूँ। हे प्रभु! आप अगाध-असीम दयालु हैं॥ मैं बुद्धिहीन हूँ। मुझमें कुछ भी पवित्रता नहीं है; क्योंकि मैं सदा नीच मन के संग में रहता हूँ ॥ मैं शरीर, मन, त्रिगुण और इन्द्रियों का बन्दी (दास) होकर विषय-रस का आनंद भोगता हूँ। हे प्रभु! पाँच तत्त्वों * और पचीस प्रकृतियों ⨯ के अधीन होकर उन्हीं के अनुकूल चलता हूँ ॥ काम, क्रोध, अहंकार, लोभ, मोह,नींद,भूख,आलस, शरीर की ममता, चंचलता, कठोरता, असहनशीलता, अनस्थिर प्रतिज्ञा और व्यर्थ के

---

* पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश ।

⨯ पचीस प्रकृति — पाँचों स्थूल तत्त्वों की पाँच प्रकृतियाँ हैं। यथा–

पृथ्वी	-	हाड़, मांस, बाल, त्वचा और नाड़ी ।
जल	-	रक्त, वीर्य, लार (मज्जा), मूत्र और पसीना ।
अग्नि	-	भूख, प्यास ,नींद, आलस और जम्हाई ।
वायु	-	चलना, बोलना, बल करना, पसरना और सिकुड़ना ।
आकाश	-	काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार ।

संकल्प-विकल्प; ये सब मिलकर भारी उत्पात करते हैं, जिससे अपनी सुस्थिरता को मैं सँभाल नहीं पाता हूँ। इनके निकट मेरा कुछ भी वश नहीं चलता है। (ऐसी परिस्थिति में) आपको छोड़कर मेरा कोई सहायक नहीं है ॥ हे प्रभु! इन बातों को विचारकर मुझ पर दया कीजिए और अपने चरणों में स्थान देकर मुझे बल प्रदान कीजिए। सुस्थिरता के जितने बाधक हैं, उन्हें आपके चरणों का संबल प्राप्तकर जीत सकूँगा। सभी बाधक तत्त्वों को जीतने के बाद आपकी चरण-धूलि का ध्यान करूँगा और इस तरह ध्यान करते-करते यम की सीमा से बाहर हो जाऊँगा ॥ हे दयालु गुरुदेव! आप मुझपर ऐसी दयाकर मुझे आश्रय प्रदान कीजिए ॥

□□□□

(१९)

गुरुदेव दानि[१] तारन, सब भव व्यथा विदारन[२],
मम सकल काज सारन[३], अपना दरस[४] दिखा दो ॥१॥
विषयों में ही मन लागे, सत्संग से हटि भागे,
मोको करो सभागे[५], सत्संग में लगा दो ॥२॥
जब जाप जपन लागूँ, तब ध्यान में जब पागूँ[६],
चिन्तन सभी तब त्यागूँ, ऐसी लगन लगा दो ॥३॥
दृष्टि अड़ै सुखमन में, मन मगन हो भजन में,
ललचे न कोउ रँग में, इक बिन्दु को धरा दो[७] ॥४॥
जौं सूर्त[८] दल सहस[९] में, वा त्रिकुटी महल में,
चढ़ि जाय तहँहुँ बिन्दु में, मम दृष्टि को लगा दो ॥५॥
कोउ रूप को न देखूँ, इक बिन्दु सबमें पेखूँ[१०],
रिधि सिद्धि[११] को न लेखूँ[१२], ऐसी सुरत सिमटा दो ॥६॥
घण्ट शंख ना नगारा, मुरली न बीन तारा,
की धुन में फँस रहूँ मैं, गुरु ऐसे ही बना दो ॥७॥
धुन अनाहत की हो, घट-घट में जो सतत हो,
जो सार धुन अहत हो, तिसमें[१३] सुरत लगा दो ॥८॥

जो जगत से विलक्षण, जिसमें न विषय लक्षण,
जो एकरस सकल क्षण, तिसमें मुझे रमा दो ॥९॥
गुरु शरण हूँ तुम्हारी, भावे करो हमारी,
एक आस है तिहारी, भव-फन्द से छोड़ा दो ॥१०॥
सब औगुणों[१४] से पूरे, हौं मैं गुरु जरूरे,
तुमसे न कुछ भी दूरे, औगुण सकल जला दो ॥११॥
कपटी कपूत[१५] जौं हूँ, तुम्हरो कहाउँ तौ हूँ,
शरणी तिहार ही हूँ, चाहो सो मोहि बना दो ॥१२॥

शब्दार्थ :

१.दानी,२.नाश करनेवाला,३.पूरा करनेवाला,४.दर्शन, ५.भाग्यवान,६.पग जाऊँ, डूब जाऊँ, ७.पकड़ा दो, ८.सुरत, ९. सहस दल कमल, १०. देखूँ , ११. ऋद्धि सिद्धि *,१२.गणना करूँ, १३.उसमें,१४.अवगुण, १५. कुपुत्र।

पद्यार्थ :

ज्ञान दान देकर संसार सागर से पार उतारनेवाले, सभी सांसारिक क्लेशों को हरनेवाले, मेरे सभी कार्यों को पूर्ण करनेवाले, हे गुरुदेव! मुझे अपने निज-स्वरूप का दर्शन करा दीजिए ॥ १॥ मेरा मन सत्संग से हटकर भागता है और विषय-सेवन में लग जाता है। आप इसे सत्संग से जोड़कर मुझे भाग्यवान बना दीजिए ॥ २॥ जब मैं मंत्र-जप करने लगूँ, आपके ध्यान में डूबने लगूँ तब सभी प्रकार के गुणावनों (संकल्प-विकल्पों) को छोड़ दूँ, मन में ऐसा प्रेम उत्पन्न कर दीजिए ॥३॥ मन ध्यान में ऐसा मग्न हो कि मेरी दृष्टिधारें (मिलकर) सुषुम्ना में स्थिर हो जाएँ। मन (स्थूल पाँच तत्त्वों के) किसी रंग में मोहित न हो, एक मात्र (ज्योतिर्मय) बिन्दु को पकड़ा दीजिए ॥४॥ यदि मेरी सुरत सहसदल कमल में या त्रिकुटी महल में चढ़ जाए, तो वहाँ

* ऋद्धि = गणेश की एक दासी जो समृद्धि की देवी मानी जाती है।
सिद्धि = योग की अष्ट सिद्धियाँ- अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, इशित्व और वशित्व। पुराणों में अष्ट सिद्धियाँ और बतलायी गयी हैं-अंजन, गुढका, पादुका, धातु भेद, वेताल, वज्र, रसायन और योगिनी। सांख्य में सिद्धियाँ इस प्रकार कही गयी हैं-तार, सुतार,तारतार,रम्यक,आधिभौतिक,आधिदैविक और आध्यात्मिक।

भी दृष्टि को विन्दु में ही लगा दीजिए ॥५॥ मेरी सुरत इस तरह सिमटा दीजिए कि किसी अन्य (प्रकाश) रूप को न देखकर सबमें एक उसी विन्दु को देखूँ और ऋद्धि-सिद्धियों की गणना न करूँ (उसे, महत्त्व न दूँ) ॥६॥ मेरी वृत्ति ऐसी बना दीजिए कि मैं (अन्तर में होनेवाले) घंटे, शंख, नगाड़े, मुरली, बीन, सितारे आदि की मधुर ध्वनियों में न फँस जाऊँ ॥७॥ जो अनाहत ध्वनि अनवरत रूप से प्रत्येक शरीर में हो रही है, जो अनाहत ध्वनि (सृष्टि का) सार तत्त्व है, उसी में मेरी सुरत को संलग्न कर दीजिए ॥८॥ जो सार ध्वनि जागतिक सभी ध्वनियों से विलक्षण है, जिसमें पंच विषयों में से किसी भी विषय का कोई लक्षण-चिह्न नहीं है, जो निरंतर एक समान रहता है, उसी में मेरे मन को रमा दीजिए ॥ ९॥ हे गुरुदेव! मैं आपकी शरण में हूँ। अब आप हमारे लिए जैसा चाहें, वैसा कीजिए । एक आपकी ही आशा है। मुझे जन्म-मरण के बंधन से मुक्त कर दीजिए ॥१०॥ हे गुरुदेव! आपसे कुछ भी छिपा नहीं है, मैं अवश्य ही सभी दुर्गुणों से पूर्ण हूँ। आप मेरे सारे दुर्गुणों को नष्ट कर दीजिए ॥ ११॥ यद्यपि मैं कपटी और कुपुत्र हूँ, तथापि आपकी ही संतान कहलाता हूँ। अब आपकी शरण में हूँ। आप जैसा चाहें, वैसा मुझे बना दीजिए ॥ १२॥

□□□□

(२०)

गुरु मम[१] सुरत को गगन[२] पर चढ़ाना ।
दया करके सतधुन[३] की धारा गहाना[४] ॥
अपनी किरण का सहारा गहाकर ।
परम तेजोमय रूप अपना दिखाना ॥
साधन-भजन-हीन <u>मों सम</u>[५] न कोऊ ।
मेरी इस दुर्बलता को प्रभु जी हटाना ॥
पापों के संस्कार[६] जन्मों के मेरे ।
हैं जो दया कर क्षमा कर मिटाना ॥
तुम्हरो विरद[७] गुरु है पतितन को तारन ।
अपनो विरद राखि 'मेँहीँ' निभाना ॥

शब्दार्थ :

१. मेरा, २. अन्तराकाश, ३. सतशब्द, सारशब्द, ४. पकड़ाना, ५.मुझ-सा, ६. पूर्व जन्मकृत शुभाशुभ कर्मों का प्रभाव जो जीवात्मा के साथ लगा रहता है, ७. कीर्ति, यश ।

पद्यार्थ :

हे गुरुदेव! आप दया करके मेरी सुरत को अन्तराकाश में चढ़ाकर सारशब्द की धारा पकड़ा दीजिए॥ अपनी ब्रह्मज्योति का सहारा देकर अपने परम तेजवान आत्मस्वरूप का दर्शन करा दीजिए॥ मेरे समान साधना और भक्ति से हीन दूसरा कोई नहीं है। हे प्रभु! आप मेरी इस कमजोरी को दूर कर दीजिए ॥ मेरे अनेक जन्मों के जो पापों के संस्कार हैं, उन्हें दयापूर्वक क्षमा करके मिटा दीजिए॥ महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि हे गुरुदेव! पतितों (अधमों) के उद्धार करनेवाले के रूप में आपकी कीर्ति है । अपनी इस कीर्ति को रखते हुए आप मेरा निर्वहण (मेरी सँभाल) कीजिए ॥

□□□□

(२१)

गुरु खोलिये <u>वज्र कपाट</u>[१],
अन्धेरी सन्मुख[२] की ॥१॥
काया दुर्ग[३] दुखद बन्दिखाना[४],
जले अग्नि या में दुख की ॥२॥
हम बन्दी[५] युग-युग से जलते,
चहैं[६] सहारा तुअ[७] रुख[८] की ॥३॥
हम दिशि दृष्टि कृपा की धारिये[९],
खोलि दीजिये पथ सुख की ॥४॥
चरण-शरण अब आये तुम्हारी,
सुनिये अर्ज[१०] दुखियन मुख की ॥५॥
<u>दीन हीन</u>[११] दुख दारिद[१२] घेरे,
हैं हम अन्त करिय दुख की ॥६॥

'मेँहीँ' मेँहीँ[१३] बिन्दु-द्वार[१४] होइ,
घैंचि[१५] दीजिये घर सुख की ॥७॥

शब्दार्थ :

१. कठोर फाटक, २.सामने,३.किला,४. कारागार, जेल, ५.कैदी, ६.चाहता हूँ, ७.आपका, ८.कृपादृष्टि,९.बनाए रखिये,१०.विनती,११.असहाय-अधम, १२.दरिद्रता,१३.सूक्ष्म,१४.दशमद्वार, आज्ञाचक्र,१५.खींचकर निकालना।

पद्यार्थ :

हे गुरु! हमारे सामने (नयनाकाश में) लगे अंधकार रूप कठोर फाटक को खोल दीजिए॥१॥ शरीर रूप किला कारागार की तरह कष्ट देनेवाला है। इसमें दुःख की अग्नि जलती रहती है॥२॥ हम (इस शरीर में) कैदी की तरह युगों-युगों से जलते आ रहे हैं। आपकी कृपादृष्टि का सहारा चाहते हैं॥३॥ हमारी ओर कृपादृष्टि बनाए रखिए और (परमात्म-) सुख का मार्ग खोल दीजिए ॥४॥ अब हम आपके चरणों की शरण में आए हैं। दुखिया के मुख की विनती सुनिए॥५॥ हम दीन-हीन (असहाय-अधम) और दुःख-दरिद्रता से घिरे हैं। आप हमारे दुःखों का अन्त कर दीजिए ॥६॥ महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि आप हमें सूक्ष्म-दशमा द्वार (आज्ञाचक्र) होकर सुख के घर (परमात्मपद) में खींचकर पहुँचा दीजिए॥७॥

□□□□

(२२)

गुरु कीजै भव-निधि[१] पार,
स्वामी हो दयालु जी ॥१॥
नौ द्वारन[२] दस चारि इन्द्रिन[३] में,
भव दुख सहउँ[४] अपार ॥२॥
जन्म मरण दुख अगणित[५] भोगे,
बिनु प्रभु पद आधार ॥३॥
तन धन परिजन[६] मान की ममता,
फँसि खोयो[७] ततु सार[८] ॥४॥

मन अति कठिन कराल[९] प्रभू हो,
तजय न विषय विकार ॥५॥
मन दृढ़ हो न लागु प्रभु पद में,
होत न मो से[१०] सम्हार[११] ॥६॥
युगन युगन सों यहि विधि अहऊँ[१२],
अब गुरु करिय उबार[१३] ॥७॥
ईश्वर देव पितर परिजन सों,
होत न यह उपकार ॥८॥
यह 'मेँहीँ' होवत गुरु से ही,
गुरु की अमित[१४] बलिहार[१५] ॥९॥

शब्दार्थ :

१. संसार-सागर, २. शरीर के नौ द्वार (छिद्र)*, ३.चौदह इन्द्रियाँ~, ४. सह रहा हूँ, ५. अनगिनत, ६.परिवार के लोग, ७. खो दिया है, ८.सारतत्त्व (परमात्मा) ९.भयंकर,१०. मुझसे, ११. सँभाल, १२. हूँ, १३. उद्धार, १४. असीम, बड़ा, १५. महिमा।

पद्यार्थ :

हे दयालु गुरुदेव स्वामी! मुझे संसार-सागर से पार कीजिए ॥१॥ मैं नौ द्वारों और चौदह इन्द्रियों (वाले इस शरीर) में संसार का अपार दुःख सह रहा हूँ ॥२॥ हे प्रभु! आपके चरणों के अवलंब के बिना मैंने अनगिनत बार जन्म-मरण के दुःख भोगे हैं॥३॥ मैंने शरीर, धन, परिवार के लोगों और प्रतिष्ठा की ममता (आसक्ति) में फँसकर सारतत्त्व-परमात्मा को खो दिया ॥४॥ हे प्रभु! मेरा मन अत्यन्त कठिन (दुर्जय) और भयंकर है।

---

* आँख, कान और नाक के दो-दो छिद्र तथा मुँह, लिंग और गुदा का एक-एक छिद्र।

~ पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ (आँख,कान,नाक, जिह्वा और त्वचा), पाँच कर्मेन्द्रियाँ (मुख, हाथ, पैर, गुदा और लिंग) तथा चार अंतःकरण की इन्द्रियाँ (मन,बुद्धि,चित्त और अहंकार)।

यह पंच विषयों* और षट्विकारों** को नहीं छोड़ता है ॥५॥ मेरा मन आपके चरणों में स्थिर होकर नहीं लगता है। मुझसे इस (चंचल) मन की संभाल नहीं होती है ॥६॥ हे गुरुदेव! मैं युग-युगों से इसी तरह (की स्थिति में) हूँ। अब मेरा उद्धार कीजिए ॥७॥ ईश्वर, देवता, पितर और परिवार के लोगों द्वारा यह उपकार (अर्थात् जन्म-मरण के चक्र से उद्धार कर देना) नहीं हो सकता॥८॥ महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि यह कार्य सद्गुरु से ही हो सकता है। इसलिए सद्गुरु की बड़ी महिमा है ॥९॥

□□□□

(२३)

मोहि दे दो भगती दान,
सतगुरु हो दाता जी ॥१॥
दस दिशि[१] विषय जाल से हूँ घेरो,
टरत नहीं[२] अज्ञान ॥२॥
गाढ़ अविद्या[३] प्रबल[४] धार में,
भये हूँ बहि हैरान[५] ॥३॥
निज[६] बुधि[७] बल को कछु न भरोसा,
गुरु तव[८] आस[९] न आन[१०] ॥४॥
जग के सब सम्बन्धिन देखे,
तुम बिनु हित न महान ॥५॥
बाहर अन्तर भक्ति कराई,
दीजै आतम ज्ञान ॥६॥
नात्म[११] द्वैत[१२] से बाहर कीजै,
यहि विनती नहिं आन ॥७॥

* रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द।

** काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य।

शब्दार्थ :

१. दशो दिशाओं* से, सभी ओर से, २. दूर नहीं होता, ३. गहन मोह, ४. तीव्र, वेगवान, ५. परेशान, व्याकुल, ६. अपना, ७. बुद्धि, ८. तुम्हारा, आपका, ९. आशा, १०. दूसरे का, ११. अनात्म (आत्मा से भिन्न) पदार्थ, १२. दो भाव।

पद्यार्थ :

हे दाता सद्गुरु! मुझे भक्ति का दान दे दीजिए॥१॥ मैं सभी ओर से विषय (रूप,रस,गंध, स्पर्श और शब्दरूप) के जाल से घिरा हुआ हूँ, मेरी अज्ञानता दूर नहीं होती है ॥२॥ गहन मोह की तीव्र धारा में बहते हुए मैं व्याकुल हो गया हूँ॥३॥ मुझे अपने बुद्धि-बल (समझ की शक्ति) का कुछ भी भरोसा नहीं है। हे गुरुदेव! मुझे आपकी ही आशा है, दूसरे की नहीं॥४॥ मैंने संसार के सभी संबंधियों को देखा (परखा), किन्तु आपके अतिरिक्त कोई बड़ा हितैषी नहीं मिला ॥५॥ आप मुझसे बाहरी और आंतरिक भक्ति (सत्संग और ध्यानाभ्यास) कराकर मुझे आत्म ज्ञान दीजिए ॥६॥ मुझे अनात्म तत्त्वों और द्वैत भावों से बाहर कर दीजिए (ऊपर उठा दीजिए), यही एक प्रार्थना है, दूसरी नहीं ॥७॥

□□□□

(२४)

छन्द

दया प्रेम सरूप सतगुरु, मोरि विनती मानिये।
मैं अधम कामी कुलच्छन[१], मलिन मति[२] मोहि जानिये ॥१॥
पर दुख दुखी तुव भक्त गुण, पुनि पर सुखी भक्तहु सुखी।
अस मैं नहीं सपनेहु कभुँ, मैं दुखद करुँ सब जग दुखी ॥२॥
परदार[३] परधन पर कभूँ, नहिं भक्त निज मन फेरहीं[४]।
मम मन फिरै तिन्ह पर सदा, कोइ कोटि कोटिन घेरहीं[५] ॥३॥

* पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, वायव्य कोण, अग्निकोण, नैर्ऋत्य कोण, ईशान कोण, ऊपर और नीचे।

दया क्षमा संयुक्त भक्तन्ह, रहैं शीतल[६] सर्वदा ।
अति दयाहीन कठोर हूँ मैं, तपउँ[७] अगनी[८] सम सदा ॥४॥
कहँ लगि कहुँ निज मति की उलटी, रीति प्रभु सुनि लीजिये ।
तनिकहुँ[९] जतन[१०] नाहीं मुझे, जेहि तुअ[११] चरण चित दीजिये ॥५॥
अस पाउँ सतसंग सिखबहू[१२], चलुँ राह सोइ भक्तन्ह चलैं ।
न तो जलत रहिहौं जगत में, सतगुरु-विमुख जहँ नित जलैं ॥६॥
गुरु डरत हूँ अस सुनि सही, मन निज स्वभाव न त्यागई ।
कभुँ निजउ[१३] देउँ सुसिखबहूँ, पर मनहिं कछु नहिं लागई ॥७॥
हारे अहुँ[१४] मन ते गुरु, अब टेर के[१५] तुमको कहूँ ।
हो दीनबन्धु[१६] दयाल सतगुरु, जतन सो करु पद गहूँ ॥८॥
प्रकाश-मण्डल पद तुम्हारे, मैं पड़ा तम-कूप[१७] में ।
अब त्राहि-त्राहि[१८] पुकार करूँ, गुरु ले चढ़ो दिव[१९] रूप में ॥९॥
तिल राह[२०] होइ जो उठन कहेउ, सो राह मोहि दीखत नहीं ।
गुरु करि दया हरि तम के मण्डल, पार तिल करु मोहि गही ॥१०॥
तारा-मण्डल में चढ़ाओ, उठो ले दल सहस को ।
जहँ ज्योति जगमग चन्द झलकत[२१], गुरु दिखाओ रहस[२२] को ॥११॥
त्रिकुटी तिहु गुण मूल घर, जहँ ब्रह्म पर राजत[२३] रहैं ।
गुरु करउँ विनती चरण पड़ि, करु जतन जा या घर लहैं ॥१२॥
यहँ सुरज ब्रह्म-प्रकाश गुरु, पुनि ले चलो येहि आगरे[२४] ।
जहँ शुद्ध ब्रह्म विराजते, रहि सुन्न देश उजागरे[२५] ॥१३॥
मानसरवर ले धँसो मोहि, दो धरा निज नाम ही ।
निज नाम पूरण काम[२६] अमृत, धार सार[२७] सो नाम ही ॥१४॥
पुनि देहु बल चढ़ूँ महासुन्नहिं, अवर[२८] बल ते तरन को ।
भँवर गुफा में चढ़ा पुनि, जहँ न भवभय टरन को ॥१५॥
करि कृपा तहँ चढ़न को बल, सतगुरु मोहि दीजिये ।
यहि सतलोक में आनिके[२९] गुरु, मोहि निर्मल कीजिये ॥१६॥
पुनि नाम निर्गुण पार करिके, अनाम धाम[३०] मिलाइये ।
यहि भाँति निज घर लाइ मोहि, प्रभु निज कृपा दरसाइये[३१] ॥१७॥

शब्दार्थ :

१.बुरे लक्षणोंवाला, २.अपवित्र बुद्धिवाला, ३. परायी स्त्री, ४. ले जाते हैं, घुमाते हैं, ५.घेरते हैं, ६.शांत, ७.तपता हूँ, ८.आग, अग्नि, ९. तनिक भी, थोड़ा भी, १०.यत्न, युक्ति, उपाय, ११. तुम्हारा, १२. सिखलाइये, १३. स्वयं भी, १४. हूँ, १५. पुकार के, १६. दुखियों के सहायक, १७. अंधकार रूप कुआँ, १८.रक्षा करो-रक्षा करो, १९.दिव्य, २०.दशमा द्वार, २१.दीखता है, २२.रहस्य, गुप्तभेद, २३. विराजत, २४.आगे, २५.प्रकाशित होते हैं, २६. सभी इच्छाओं के पूर्ण करनेवाला, २७.सार शब्द, २८.और, २९. लाकर, ३०. शब्दातीत पद, ३१. दिखलाइये ।

पद्यार्थ :

हे दया और प्रेम की प्रतिमूर्ति सद्गुरु! मेरी प्रार्थना स्वीकार कीजिए । मैं नीच, कामी और बुरे लक्षणोंवाला हूँ। आप मुझे अपवित्र बुद्धि का जानिए ॥१॥ दूसरों के दुःख से दुःखी होना और फिर दूसरों के सुख से सुखी होना आपके भक्तों का स्वभाव है। परन्तु मैं स्वप्न में भी ऐसा नहीं हूँ। मैं दुःख देनेवाला, संसार के सब लोगों को दुःखी करता रहता हूँ ॥२॥ जो भक्त होते हैं, वे परायी स्त्री और दूसरे की सम्पत्ति पर कभी भी अपना मन नहीं ले जाते हैं, किन्तु मेरा मन सदा उनपर घूमता रहता है, चाहे कोई करोड़ों-करोड़ लोग मुझे घेरे रहें ॥३॥ भक्तगण दया क्षमा से संयुक्त और सदा शांत रहते हैं, परन्तु मैं अत्यन्त दयाहीन और कठोर (हृदय का) हूँ। परिणामतः (षट्विकारों के कारण) सदा अग्नि के समान जलता रहता हूँ ॥४॥ हे प्रभु! मैं कहाँ तक अपनी बुद्धि के उलटे व्यवहार को कहूँ ? मुझे तनिक भी युक्ति (उपाय) नहीं दीखती, जिससे आपके चरणों में अपने चित्त को लगा सकूँ ॥५॥ आप अपने सत्संग के द्वारा मुझे वह ज्ञान सिखलाइए, जिससे मैं उस मार्ग पर चल सकूँ, जिसपर भक्तलोग चलते हैं। अन्यथा मैं संसार में उसी तरह जलता रहूँगा, जैसे कि सद्गुरु-विमुख लोग प्रतिदिन जलते रहते हैं ॥६॥ हे गुरुदेव! इसतरह (जलने) की बात सुनकर मैं सचमुच ही डरता हूँ, किन्तु मेरा मन अपना स्वभाव नहीं छोड़ता । कभी मैं स्वयं भी मन को अच्छी सीख देता हूँ, परन्तु इसका उस पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता है ॥७॥ हे गुरुवर! मैं इस मन से हार गया हूँ। अब आपको पुकार कर कहता हूँ— सद्गुरुदेव! आप दुखियों के

सहायक और दयालु हैं, ऐसी युक्ति कीजिए जिससे आपके चरणों को मैं (हृदय में) ग्रहण कर सकूँ ॥८॥ आपका चरण प्रकाश मंडल है और मैं अंधकार रूप कुएँ में पड़ा हूँ। हे गुरुदेव! अब मेरी रक्षा कीजिए! रक्षा कीजिए!! कहकर पुकार कर रहा हूँ। आप मुझे अपने दिव्य (ज्योतिर्मय) रूप में लेकर चलिए ॥९॥ आपने तिलद्वार (सुषुम्ना) होकर उठने के लिए कहा है। पर वह (सूक्ष्म) मार्ग मुझे दीखता नहीं है। हे गुरुदेव! आप दया करके (हमारे नयनाकाश के) अंधकार मंडल को दूर कर दीजिए और मुझे पकड़कर तिल (श्याम-विन्दु) से पार कर दीजिए॥१०॥ मुझे तारामंडल में चढ़ाइए और फिर वहाँ से उठाकर सहसदल कमल में ले जाइए, जहाँ ब्रह्मज्योति जगमगाती है और पूर्णचन्द्र दीखता है। हे गुरुदेव! मुझे इन रहस्यों (गुप्त लीलाओं) को दिखलाइए ॥११॥ त्रिकुटी (सत्त्व, रज और तम इन) तीनों गुणों का मूल स्थान है, जहाँ परब्रह्म विराजते हैं। हे गुरुदेव! मैं आपके चरणों में गिरकर विनती करता हूँ कि आप कोई ऐसा उपाय कीजिए, जिससे मैं इस घर (त्रिकुटी) को प्राप्त कर सकूँ ॥१२॥ यहाँ (त्रिकुटी में) सूर्यब्रह्म का प्रकाश है। हे गुरुदेव! पुनः इससे भी आगे ले चलिए, जहाँ शुद्धब्रह्म विराजते हैं और जो शून्य-देश के नाम से विख्यात है॥१३॥ मुझे लेकर मानसरोवर में प्रवेश कीजिए और अपना निज नाम (सारशब्द) ग्रहण करा दीजिए। यह निज नाम सभी इच्छाओं को पूर्ण करनेवाला अमृत है। यही नाम (समस्त सृष्टि का) सारधार (सार तत्त्व) है॥१४॥ पुनः मुझे ऐसी शक्ति दीजिए कि जिससे मैं महाशून्य में चढ़ जाऊँ। फिर और शक्ति दीजिए कि उसको भी पार कर जाऊँ। इसके बाद मुझे भँवर गुफा में चढ़ाइए, जहाँ जन्म-मरण का दुःख नहीं मिटता है॥१५॥ अतएव हे सद्‌गुरुदेव! फिर कृपा करके मुझे उससे आगे (सतलोक में) चढ़ने की शक्ति दीजिए। हे गुरुदेव! इस सतलोक में लाकर मुझे निर्मल (जड़ावरण रहित) कर दीजिए॥१६॥ फिर (सतलोक के) निर्गुण नाम को पार कर अनाम धाम (शब्दातीत पद) प्राप्त करा दीजिए। हे स्वामी! इस तरह मुझे निजघर (परमात्म-पद) में लाकर अपनी कृपा दिखलाइए॥१७॥

टिप्पणी :

त्रयगुणों (सत्त्व, रज और तम) का मूल स्थान साम्यावस्थाधारिणी मूल

प्रकृति है, किन्तु वहाँ उसका कार्य परिलक्षित नहीं होता। त्रिकुटी में योगी लोग उसके कार्यों को सूक्ष्म रूप में देखते हैं। इसलिए त्रिकुटी को त्रय गुणों का मूल स्थान कहा गया है। आज्ञाचक्र से नीचे आने पर सर्व साधारण भी उसके कार्यों को देखते हैं, क्योंकि वहाँ स्थूल रूपों में होता है।

□□□□

(२५)

हे प्रेम रूपी सतगुरु, प्रेमी मुझे बना दो ॥टेक॥
नर-नारि रूप सारे, मन मोहैं[१] जो हमारे,
आकर्षि[२] प्रेम लेवैं[३], इनसे लगन[४] छोड़ा दो ॥१॥
ये स्थूल[५] दृश्य जेते[६], मोको[७] जो खैंचि लेते,
मम[८] प्रेम धार खोते, इनसे मुझे हटा दो ॥२॥
चौभुज[९] औ अष्टभुज जो, अथवा अनेकभुज जो,
आश्चर्य <u>तेजपुञ्ज</u>[१०] जो, सबसे सुरत <u>फुटा दो</u>[११] ॥३॥
रस शब्द गन्ध परसन[१२], करते जो चित्त कर्षन[१३],
करि प्रेम धार वर्षन[१४], इनसे मुझे छुटा दो ॥४॥
इक तजि अनुभवानन्द[१५], सारे आनन्द द्वन्द्वं,
है द्वन्द्व अनात्म फन्दं[१६], अनात्म-आत्म फुटा दो ॥५॥
अकल[१७] अभेद[१८] अछेदं[१९], अनाम अद्वन्द्व अखेदं[२०],
सर्वपर[२१] अनूप[२२] रूपं, तिस[२३] रूप में फँसा दो ॥६॥
तुम्हरा यह रूप जानूँ, अपना भी यही मानूँ,
<u>तुम हम दुई</u>[२४] मिटाकर, इक एकही बना दो ॥७॥

शब्दार्थ :

१.मोहित करते हैं,२. आकर्षण करना,खिंचाव, ३.लेते हैं, ४. प्रेम, ५.इन्द्रिय गोचर, ६. जितने, ७. मुझको, ८. मेरा, ९. चार भुजा (हाथ) वाले, १०.प्रकाश समूह, ११.अलग कर दो, १२. स्पर्श, १३. आकर्षण, खींचना, १४. वर्षा,

१५.परमात्म-अनुभव का आनंद, ब्रह्मानंद, १६.बंधन, जाल, १७.खंड (अवयव) रहित, १८. भेद-रहित, अद्वैत, एक, १९. नहीं छिदने योग्य, २०. शोक-रहित, २१.सबसे परे, २२.उपमा-रहित, २३. उस, २४. तुम-हम का द्वैतभाव ।

पद्यार्थ :

हे प्रेम के प्रतिरूप सद्गुरु! मुझे अपना प्रेमी बना दीजिए । (जगत के) सारे पदार्थ हमारे मन को इस तरह मोहित करते हैं, जैसे नर-नारि का रूप (एक-दूसरे को) मोहित करता है। ये हमारे प्रेम को अपनी ओर खींच लेते हैं। इनसे हमारा प्रेम छुड़ा दीजिए ॥१॥ ये संसार के जितने इन्द्रिय-गोचर पदार्थ हैं, जो मुझे अपनी ओर आकर्षित करते हैं और (आपकी ओर बहनेवाली) प्रेम की धारा को विनष्ट करते हैं, इन सबसे मुझे (मेरे मन को) हटा दीजिए ॥२॥ जो चौभुजी, अष्टभुजी अथवा अनेक भुजी देवरूप हैं और जो आश्चर्यमय प्रकाश-समूह हैं, इन सबसे मेरी सुरत को अलग कर दीजिए ॥३॥ (इन विविध रूपों के अतिरिक्त) रस, शब्द, गंध और स्पर्श विषय हमारे चित्त को आकर्षित करते हैं। आप (हमारे अंदर) प्रेम-धार की वर्षा करके इन सबसे मुझे छुड़ा दीजिए ॥४॥ एक मात्र परमात्म-अनुभव के आनंद को छोड़कर सभी आनंद द्वन्द्वमय (सुख-दुःख मिश्रित) हैं । ये द्वन्द्व, अनात्म (माया) के बंधन हैं। आप अनात्मा को आत्मा से (जड़ को चेतन से) अलग कर दीजिए ॥ ५॥ जो स्वरूप अखंड, भेद-रहित, नहीं छिदने योग्य, नाम-रहित द्वन्द्व-रहित, शोक-रहित, सबसे परे और उपमा-रहित है, उसी में (मेरी सुरत को) संलग्न कर दीजिए ॥ ६॥ मैं आपके इसी स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करूँ और अपना स्वरूप भी ऐसा ही मानूँ । तुम और हम के द्वैत-भाव (भिन्नता) को मिटाकर आप दोनों को एक-ही-एक बना दीजिए ॥७॥

(२६)

बार-बार करुँ वीनती[१], गुरु साहब आगे ।
कृपादृष्टि हेरिय[२] गुरु, चित चरणन लागे ॥१॥
अति दयाल दे चित्त सुनो, मम हाल मलीना[३] ।
या जग मो सम[४] और ना, दुख-दूषण[५]-भीना[६] ॥२॥
चहुँ खानिन[७] में बार बहु, भरमेउँ अज्ञाना ।
असीम यातना सहेउँ, तुम पद नहिं चीना[८] ॥३॥
अब गुरु दाता कृपा करी, दीन्हों नर देही ।
अजहूँ[९] फिरउँ[१०] भुलान[११], काल के मारग में ही ॥४॥
तुम बिन ऐसो कोउ ना, सुनु सतगुरु पूरे[१२] ।
काल-राह से घैंचि के, मोहि करिहैं दूरे ॥५॥
काम-लहरि तें माति के, करुँ आनहिं आना ।
अन्ध होइ भोगन फँसूँ, सत पंथ भुलाना ॥६॥
क्रोध-अगिन में नित जलूँ, नहिं समझउँ काहू ।
मात पिता अरु हितहु से, चलुँ टेढ़ी राहू[१३] ॥७॥
लोभ-कुण्ड[१४] में पैठि[१५] के, करुँ नित जो कर्मा ।
पापरूप दृष्टी भई, कछु सूझ न धर्मा ॥८॥
सतगुरु दानि दयाल हो, सुनिये अब मेरी ।
अन्ध होइ दुख बहु सहूँ, करु दृष्टि उजेरी[१६] ॥९॥
तुम बिन दाता कोउ ना, सब सन्त बखानें ।
दृष्टि दान मोहि दीजिये, मेटिय अन्ध खानें ॥१०॥
और अमित[१७] सुनि लीजिये, मोरी अघ करनी[१८] ।
जेहि वश सकउँ न दृढ़ धरी, तुम्हरी सत शरणी[१९] ॥११॥
मोह-दुर्ग ते स्वपनेहु, नहिं बाहर जाऊँ ।
जाते दुःख अगणित सहूँ, नहिं छूटन पाऊँ ॥१२॥
दया करो दाता मेरे, तुम बन्दी-छोरा[२०] ।
यह सब बन्दी छोड़िये, बहु करौं निहोरा[२१] ॥१३॥

अहंकार ते मस्त होइ, मैं-मोरि बखानौं ।
या विधि हठ वश मान में, नहिं काहू[22] जानौं ॥१४॥
करौं अनेक कुचाल[23] प्रभु, कत[24] कहौं बखानी ।
तुव सेवा की चाल सभे, मम हिये[25] भुलानी ॥१५॥
निज अवगुण जत[26] सबन को, नहिं परखन पाऊँ ।
तुम सतगुरु सर्वज्ञ[27] हो, जानहु सब ठाऊँ ॥१६॥
मम अन्तर अघ जानि के, सब देहु मिटाई ।
अघनाशन[28] दाया करो, अघ देहु नसाई ॥१७॥
गुनह[29] मोटरी[30] सिर मेरे, तौलत कठिनाई ।
या तर दबि अब मरत हौं, बिन तुम्हरि सहाई ॥१८॥
नहिं सहाइ तुम बिन कोई, सुनु सतगुरु दाता ।
गुनह मोटरी फेंकिये, दइ मो सिर लाता[31] ॥१९॥
अघ औगुण मति संग से, मम दृष्टि मलीना ।
दया करो साईं मेरे, मोहि जानिय दीना ॥२०॥
तुम बिनु कोउ नहिं अमल[32] करै, दृष्टी कहँ साईं ।
दया धार बरषा करी, देहु दृष्टि बनाई ॥२१॥
दया प्रेम बरषा करो, हो प्रेम सरूपा ।
प्रेम नाम सतनाम की, मोहि मिलवहु रूपा ॥२२॥

शब्दार्थ :

१. विनती, प्रार्थना, २. देखिये, ३. मलिन, बुरा, ४. मुझ-सा, ५. दोष, ६. भींगा हुआ, डूबा हुआ, ७. चारो खानियों (अण्डज, पिण्डज, उष्मज और अंकुरज) ८.चीन्हा, पहचाना, ९. इस बार, १०. विचरण करता हूँ, ११. भूला हुआ, १२. पूर्ण,१३. टेढ़ी राह,१४. गड्ढा,१५. प्रवेशकर, १६.उज्ज्वल, प्रकाशपूर्ण, १७.अनगिनत, १८. पाप कर्म, १९.सच्ची शरण, २०. बंधन से छुड़ानेवाले, २१.विनती, २२.किसी को,२३.बुरे आचरण, २४. कितना, २५. हृदय से, २६. जितना, २७. सब कुछ जाननेवाला,२८.पाप नष्ट करनेवाला,२९. पाप, ३०. गठरी, पोटली, ३१. लात, पैर, ३२. पवित्र, मल-रहित ।

पद्यार्थ :

हे गुरुदेव स्वामी! मैं आपके सामने बार-बार प्रार्थना करता हूँ कि आप कृपापूर्ण दृष्टि से मुझे देखिए, जिससे मेरा चित्त आपके चरणों में लग जाए।॥१॥ हे अत्यन्त दयालु! आप चित्त देकर मेरा मलिन (बुरा) हाल सुनिए । इस संसार में मेरे समान दुःख और दोषों में डूबा हुआ और कोई नहीं है ॥२॥ मैंने अज्ञानता के कारण चारों खानियों में बहुत बार भ्रमण किया है, असीम कष्टों को सहा है, फिर भी आपके चरणों (की महिमा) को नहीं पहचाना ॥३॥ हे दाता गुरुदेव! यद्यपि आपने इस बार कृपा करके मुझे मनुष्य का शरीर दिया है, तथापि मैं यम राजा (जन्म-मरण) के मार्ग में ही भूला फिर रहा हूँ ॥ ४॥ हे पूर्ण सद्गुरु! सुनिए, आपके अतिरिक्त ऐसा कोई नहीं है, जो मुझे काल के मार्ग से खींचकर दूर कर सके ॥ ५॥ मैं काम-लहर से मस्त होकर दूसरे-दूसरे (अनावश्यक) कामों को करता हूँ और विवेक-दृष्टि से हीन, (होने के कारण) सच्चे मार्ग (परमात्म-पथ) को भूलकर भोगों में फँस जाता हूँ॥ ६॥ मैं नित्य क्रोध रूपी अग्नि में जलता हूँ और (अपने आगे) किसी को कुछ नहीं समझता। माता-पिता और हितैषियों के साथ भी मैं टेढ़ी राह पर चलता हूँ (अर्थात् प्रतिकूल व्यवहार करता हूँ) ॥ ७॥ लोभ के गड्ढे में प्रवेश कर (गिरकर) मैं नित्य प्रति जो कर्म करता हूँ, इससे मेरी दृष्टि पापमयी हो गई है और धर्म क्या है, कुछ सूझता नहीं है॥ ८॥ हे सद्गुरु! आप दानी और दयालु हैं। अब मेरी प्रार्थना सुन लीजिए । ज्ञान-दृष्टि से हीन होकर मैंने बहुत कष्ट सहे। अब मेरी दृष्टि को उज्ज्वल (ज्ञानमयी) बना दीजिए॥९॥ आपके अतिरिक्त कोई (समर्थ) दाता नहीं है, ऐसा सब संत वर्णन करते हैं। मुझे अन्तरदृष्टि प्रदान कर (नयनाकाश स्थित) अंधकार की खान को मिटा दीजिए ॥१०॥ हे गुरुदेव! आप मेरे और भी अनगिनत अपकर्मों को सुन लीजिए, जिनके वश होकर मैं आपकी सच्ची शरण को दृढ़तापूर्वक ग्रहण नहीं कर पाता हूँ ॥११॥ मैं मोह-रूपी गढ़ से स्वप्न में भी बाहर नहीं हो पाता हूँ, जिसके कारण अनगिनत दुःख सहता हूँ तथा उनसे छूट नहीं पाता हूँ ॥ १२॥ हे दाता! दया कीजिए, आप बंधनों से मुक्त करने वाले हैं। मैं बहुत बार प्रार्थना करता हूँ कि इन सब (षट् विकार रूप) बंधनों से मुझे मुक्त कर दीजिए ॥१३॥ अहंकार से मतवाला होकर मैं (लोगों के

सामने) 'मैं' और 'मेरा' का ही बखान करता हूँ। इस प्रकार मान पाने की जिद् में मैं किसी को नहीं समझता (अर्थात् किसी का आदर नहीं करता) ॥१४॥ हे प्रभु! इस तरह मैं अनेक बुरे आचरणों को करता हूँ, वर्णन करके कितना कहूँ ? आपकी सेवा करने के सभी ढंग मेरे हृदय से खो गए हैं ॥१५॥ अपने जितने अवगुण हैं, उन सबको मैं परख नहीं पाता हूँ। हे सद्‌गुरु! आप सब कुछ जाननेवाले हैं, सभी जगहों की बात जानते हैं॥१६॥ मेरे भीतर के सभी अवगुणों को परखकर आप उन्हें मिटा दीजिए। हे पापों के नाशक! दया करके मेरे पापों को नष्ट कर दीजिए ॥१७॥ मेरे सिर पर जो पापों की गठरी है, उसे ढोने में मुझे कठिनाई हो रही है। आपकी सहायता के बिना अब मैं इसके नीचे दबकर मर रहा हूँ॥ १८॥ हे दाता सद्‌गुरु! सुनिए, आपके अतिरिक्त मेरा कोई सहायक नहीं है। आप मेरे सिर पर लात मारकर पाप की गठरी को गिरा दीजिए ॥ १९॥ पाप युक्त और दोषपूर्ण बुद्धि के संग से मेरी (विचार) दृष्टि मलिन हो गयी है। हे मेरे स्वामी! मुझे दुर्दशाग्रस्त जानकर मुझ पर दया कीजिए ॥ २०॥ हे स्वामी! आपके सिवा ऐसा कोई नहीं जो मेरी दृष्टि को पवित्र कर सके। आप दया-धार की वर्षा करके मेरी दृष्टि को पवित्र बना दीजिए ॥ २१॥ हे प्रेम-स्वरूप! आप दया और प्रेम की वर्षा कीजिए और सतनाम (सारशब्द) रूपी प्रेम नाम के स्वरूप में मुझे लीन कर दीजिए ॥ २२॥

□□□□

(२७)

अपनी भगतिया सतगुरु साहब, मोहि कृपा करि देहु हो ।
जुगन-जुगन[१] भव[२] भटकत बीते, अब भव बाहर लेहु हो ॥ १ ॥
पशु पक्षी कृमि[३] आदिक योनिन, में भरमेउ[४] बहु[५] बार हो ।
नर तन अबहिं कृपा करि दीन्हों, अब प्रभु करो उबार[६] हो ॥ २ ॥
हरहु भव दुख देहु अमर सुख, सर्व दाता समरत्थ[७] हो ।
जो तुम चाहिहु[८] होइहिं[९] सोई, सब कुछ तुम्हरे हत्थ[१०] हो ॥ ३ ॥

करहु अनुग्रह[११] प्रीतम साहब, तुम अंशक[१२] मैं अंश[१३] हो ।
तुम सूरज मैं किरण तुम्हारी, तुम वंशक[१४] मैं वंश[१५] हो ॥४॥
मोहि तोहि इतनेहि भेद[१६] हो साहब, यहि भेद भव दुःख मूल[१७] हो ।
करो कृपा नासो यहि भेदहिं, होउ अति ही अनुकूल हो ॥५॥
आस[१८] त्रास[१९] भय भाव सकल ही, मम मन कर[२०] जत[२१] जाल हो ।
सकल सिमिटि तुम्हरो पद[२२] लागे, 'मेँहीँ' के यहि अर्ज[२३] हाल[२४] हो ॥ ६ ॥

शब्दार्थ :

१.युग-युगान्तर, २.संसार, जन्म-मरण, ३.कीड़े, ४.भ्रमण किया, ५.बहुत, अनेक, ६.उद्धार, ७.समर्थ, योग्य, ८.चाहेंगे, ९. होगा, १०. हाथ, ११. कृपा, १२. अंशी, १३. अवयव, अंग, भाग, १४.वंश उत्पन्न करनेवाला, वंशधर, १५. वंशज, संतान, १६. अंतर, १७. जड़, कारण, १८.आशा, १९.दुःख, क्लेश, २०.मन का, २१.जितने, २२. चरण, २३. विनती, २४. वृतान्त, बातें ।

पद्यार्थ :

हे सद्‌गुरु स्वामी! आप कृपा करके मुझे अपनी भक्ति दीजिए । जन्म-मरण के चक्र में भटकते हुए मुझे युग-युगान्तर बीत गए । अब मुझे इससे बाहर कर लीजिए ॥१॥ मैंने पशु, पक्षी, कीड़े आदि की योनियों में अनेक बार भ्रमण किए हैं। इस बार आपने कृपा करके मनुष्य-शरीर प्रदान किया है। हे प्रभु! अब मेरा उद्धार कर दीजिए ॥२॥ आप सब कुछ प्रदान करने में योग्य-सर्वशक्तिमान गुरुदेव हैं। आप मेरे आवागमन के दुःखों का हरण कर मुझे अमर (अविनाशी) सुख प्रदान कीजिए । आप जो चाहेंगे वही होगा, क्योंकि सब कुछ आपके हाथ (अधीन) है ॥ ३॥ हे प्रियतम स्वामी! आप मुझ पर कृपा कीजिए । आप अंशी हैं और मैं आपका अंश हूँ। आप सूर्य रूप हैं और मैं आपकी किरण हूँ । आप वंशधर हैं और मैं आपका वंशज हूँ ॥ ४॥ हे स्वामी! मेरे और आपके बीच यही (अंश और अंशी का) भेद है और यही भेद जन्म-मरण के दुःखों की जड़ (कारण) है। आप अत्यन्त सहायक होइए और कृपा करके इस भेद को मिटा दीजिए ॥ ५॥ महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि सांसारिक आशाएँ, दुःख और भय के सभी भाव तथा हमारे मन के जितने जाल हैं, सभी सिमटकर आपके चरणों में लग जाएँ, ये ही सब मेरी विनती की (सार) बातें हैं ॥६॥

□□□□

(२८)

पुकार

सतगुरु दाता सतगुरु दाता सतगुरु दाता सतगुरु दाता ।
अरज[१] सुनो हे मेरे प्रीतम तात[२] पिता हे सतगुरु दाता ॥टेक॥
हो दयाल दातार[३] महा सुखदाई ।
अघनाशन सुख देन कृपा अधिकाई ॥१॥
जुग जुगान ते अहूँ पड़े दूखन[४] में ।
सुधि बुधि गई सब भूलि माया सुखन में ॥२॥
मन-इन्द्रिन की फाँस[५] गले हैं मेरे ।
ताते वश होइ सदा रहूँ यम चेरे ॥३॥
काम क्रोध मद लोभ सतावै हरदम ।
नित पड़ा रहूँ इन्ह बीच न पाऊँ शम[६]-दम[७] ॥४॥
सुख पावन[८] मन ठानि दौड़ि जहँ जाऊँ ।
दुख अगिन प्रबल होइ जरत तहाँ ही पाऊँ ॥५॥
रवि[९] कर[१०] जल मृग देखि दौड़ि दुख पावै ।
तिमि[११] जग सुख मध दुख कुण्ड मोहि को नावै[१२] ॥६॥
हूँ पड़ा दुखन के माहिं प्रबल मुरछाई[१३] ।
निज संकट सकुँ न बखानि जो पाउँ सदाई ॥७॥
हूँ अन्धकार बिच पड़ा न पाउँ प्रकाशा ।
नहिं सकूँ जान जित[१४] अहै[१५] प्रकाश-निवासा ॥८॥
हो सर्वज्ञ दयाल प्रभू दातारा ।
गुरु दीन-बन्धु तुम जानहु मर्म हमारा ॥९॥
करु दया कहूँ मैं याहि पुकारि पुकारी ।
हो दीन-बन्धु सुख-सिन्धु दीन-हितकारी ॥१०॥
दुख दलन[१६] जलन[१७] कर हतन पतन[१८] यम-जारी[१९] ।
कोमल चित दीन-दयाल कृपा धर भारी ॥११॥

यम-फन्दन ते वेगि निकालि के मोही ।
निज विरद[२०] सम्हारो[२१] नाथ! कहूँ मैं तोही ॥१२॥
तम-कूप ते खैंचि के मोहि प्रकाश में लाओ ।
पुनि शब्द-बाँह निज देइ पास बैठाओ ॥१३॥
यहि विधि अपनाइ के मोहि छोड़ाइये यम से ।
होइ आरत[२२] करूँ पुकार नाथ मैं तुम से ॥१४॥
नहिं आन[२३] कोऊ जहँ जाइ के करौं पुकारा ।
यम-फन्द-निकन्दन[२४] एकहि तुम दातारा ॥१५॥
अब सतगुरु सतगुरु सतगुरु नित-नित गाऊँ ।
प्रभु रीझि[२५] देहु निज चरण-शरण में ठाऊँ[२६] ॥१६॥

शब्दार्थ :

१.प्रार्थना,२.बंधु,३.दाता,४.दुःख,५.फंदा, ६.मनोनिग्रह, ७.इन्द्रिय-निग्रह, ८. पाने को, ९. सूर्य,१०. किरण,११. उसी प्रकार, १२.झुकाता है, गिराता है,१३.मुर्छा,बेहोशी,१४. जहाँ,१५.है,१६.कुचलनेवाला,१७.जलानेवाला, १८.मारने-गिरानेवाला, १९.यमफंद,२०. कीर्ति,२१. संभालो,२२. पीड़ित, दुखी, २३. दूसरा, २४. नष्ट करनेवाला, २५. प्रसन्न होकर, २६. स्थान ।

पद्यार्थ :

हे मेरे परमप्रिय तात और पिता, दाता सतगुरु! मेरी प्रार्थना सुनिए। आप दयालु, दानशील, महान सुख देनेवाले, पापों के नाशक और अति कृपाशील हैं॥१॥ मैं युग-युगों से दुःख में पड़ा हूँ। माया के मुख में पड़कर मैं अपनी सुध-बुध (होश-हवास) भूल गया हूँ ॥२॥ मेरे गले में मन और इन्द्रियों का फन्दा पड़ा हुआ है। इनके वशीभूत होने के कारण मैं सदा यम का दास बना हुआ हूँ॥३॥ मुझे काम, क्रोध, अहंकार, लोभ आदि सदा दुःख पहुँचाते हैं। मैं सर्वदा इन्हीं (विकारों) के बीच पड़ा रहता हूँ, इस कारण मनोनिग्रह तथा इन्द्रियनिग्रह नहीं कर पाता हूँ॥४॥ सुख पाने का निश्चय करके मैं दौड़कर जहाँ जाता हूँ, वहीं दुःख की अग्नि प्रचंड होकर जलते हुए पाता हूँ॥ ५॥ जिस तरह सूर्य की किरणों में (भासित होनेवाले) जल को देखकर हिरण (उसे पाने को) दौड़ता और दुःख पाता है, उसी

प्रकार सांसारिक सुख (का भ्रम) मुझे दुःख के गड्ढे में गिराता है॥६॥ मैं गंभीर रूप से चेतनाहीन होकर दुखों में पड़ा हूँ। अपने उन कष्टों का वर्णन नहीं कर सकता, जो मैं सदा पाता रहता हूँ॥७॥ मैं अंधकार में पड़ा हूँ। मुझे प्रकाश नहीं मिलता है। जहाँ प्रकाश का निवास है, मैं वह स्थान नहीं जान पाता हूँ ॥ ८॥ हे दाता, दयालु स्वामी! आप सब कुछ जानने वाले हैं। हे दीनबंधु गुरुदेव! आप मेरे हृदय की सारी बातों को जानते हैं ॥ ९॥ मैं पुकार- पुकार कर यही कहता हूँ कि मुझ पर दया कीजिए । आप दुखियों के सहायक, सुख के समुद्र और विपन्न की भलाई करनेवाले हैं ॥ १०॥ आप क्लेशों को कुचलने-जलाने वाले, यमफंद को मार गिराने (नष्ट करने) वाले, कोमल अंतःकरण वाले, दुर्दशाग्रस्त पर दया करनेवाले और अत्यधिक कृपा रखनेवाले हैं॥११॥ हे स्वामी! मैं आपसे प्रार्थना करके कहता हूँ कि यमफंद से मुझे शीघ्र निकालकर आप अपनी कीर्ति की संभाल कीजिए ॥ १२॥ आप मुझे अंधकार के कुएँ से खींचकर प्रकाश-मंडल में लाइए। पश्चात् शब्द रूपी अपनी बाँह का सहारा देकर मुझे अपने पास बिठा लीजिए ॥ १३॥ इस प्रकार मुझे अपनाकर यम (काल) से बचा लीजिए। हे स्वामी! दुःखी होकर मैं आपसे ऐसी पुकार करता हूँ ॥ १४॥ आपके सिवा दूसरा ऐसा कोई नहीं, जिसके पास जाकर मैं ऐसी विनती करूँ । हे दाता! यमफंद को विनष्ट करनेवाले मात्र एक आप ही हैं ॥ १५॥ अब मैं नित्य प्रति सद्गुरु-सद्गुरु का गायन (जप) करता हूँ । हे प्रभु! आप प्रसन्न होकर मुझे अपने चरण-शरण में स्थान दे दीजिए ॥ १६॥

□□□□

(२९)

बरसाती

सतगुरु दरस[1] देन[2] हित[3] आए, भाग[4] जगे हमरे ॥टेक॥
आनन्द मंगल[5] पूरि[6] रहे सब शुभ-शुभ भा[7] सगरे[8] ।
पाप समूह दरस ते भागे पुण्य सकल डगरे[9] ॥१॥
परम उछाह[10] आजु सभ[11] सखिया सतगुरु पद भज[12] रे ।
तन मन धन आतम[13] करि अर्पण[14] मेँहीँ आजु तरे[15] ॥२॥

शब्दार्थ :

१. दर्शन,२. देने, ३. हेतु, के लिये,४.भाग्य, सौभाग्य, ५.कल्याण, ६. परिपूर्ण, ७.हुआ,८.सब ओर,९.राह में,१०.आनंद, उत्साह,११.सभी, १२.आराधना कर, १३. आत्मा, १४. न्योछावर, समर्पण, १५. तर गए, उद्धार पा गए ।

पद्यार्थ :

सद्गुरु महाराज हमें दर्शन देने के लिए पधारे, जिससे हमारे सौभाग्य जग गए ।टेक॥ सभी आनंद और कल्याण से परिपूर्ण हो गए और सब ओर (दिशा) मंगल-ही-मंगल हो गया (छा गया)। उनके मात्र दर्शन से (हृदय की) पाप-राशि दूर हो गयी और सभी राहों में (सब ओर) पुण्य (अर्थात् पवित्र भाव) फैल गया॥१॥ हे मेरे सभी सखियो! आज परम आनंद का दिन है, अतः सद्गुरु महाराज के चरणों की आराधना (ध्यान-पूजन) करो । महर्षि मेँहीँ परमहंस जी महाराज कहते हैं कि अपने सद्गुरु महाराज के चरणों में शरीर, मन, सम्पत्ति और आत्म समर्पण करके आज मैं तर गया (उद्धार पा गया) ॥२॥

□□□□

(३०)

भजु[1] मन सतगुरु सतगुरु सतगुरु जी ॥ १ ॥
जीव चेतावन[2] हंस[3] उबारन[4],
भव भय टारन[5] सतगुरु जी ।भजु॰॥ २ ॥
भ्रम तम नाशन ज्ञान प्रकाशन,
हृदय विगासन[6] सतगुरु जी ।भजु॰॥ ३ ॥
आत्म अनात्म विचार बुझावन[7],
परम सुहावन[8] सतगुरु जी ।भजु॰॥ ४ ॥
सगुण[9] अगुणहिं[10] अनात्म बतावन,
पार[11] आत्म कहैं सतगुरु जी ।भजु॰॥ ५ ॥
मल[12] अनात्म ते सुरत[13] छोड़ावन,
द्वैत मिटावन सतगुरु जी ।भजु॰॥ ६ ॥

पिण्ड[१४] ब्रह्माण्ड[१५] के भेद बतावन,
सुरत छोड़ावन सतगुरु जी ।भजु०॥ ७ ॥
गुरु-सेवा सत्संग दृढ़ावन[१६],
पाप निषेधन[१७] सतगुरु जी ।भजु०॥ ८ ॥
सुरत-शब्द मारग दरसावन[१८],
संकट टारन सतगुरु जी ।भजु०॥ ९ ॥
ज्ञान विराग[१९] विवेक[२०] के दाता,
अनहद राता[२१] सतगुरु जी ।भजु०॥ १० ॥
अविरल भक्ति[२२] विशुद्ध के दानी,
परम विज्ञानी[२३] सतगुरु जी ।भजु०॥ ११ ॥
प्रेम दान दो प्रेम के दाता,
पद राता रहें सतगुरु जी ।भजु०॥ १२ ॥
निर्मल युग कर[२४] जोड़ि के विनवौं,
घट-पट[२५] खोलिय सतगुरु जी ।भजु०॥ १३ ॥

शब्दार्थ :

१. भजो, आराधना करो, २. सचेत करनेवाले, ३. जीव, ४.उद्धारक, ५. टालने या दूर करनेवाले, ६. विकास करनेवाले, ७. समझानेवाले, ८. मनोहर, ९. त्रयगुण (सत्व, रज और तम) सहित, १०. त्रयगुण रहित (निर्गुण) को, ११. परे, १२. मैल, विकार, १३. चेतनवृति,१४. शरीर, १५. सम्पूर्ण विश्व, बाह्य जगत, १६. दृढ़करनेवाले, स्थिर करनेवाले,१७. रोकनेवाले, बचानेवाले, १८.दिखानेवाले, १९. वैराग्य, २०. सत्य-असत्य की पहचान, २१. संलग्न, करनेवाले, लीन करनेवाले, २२. सदा एक-सी रहनेवाली भक्ति,२३. सब कुछ परमात्ममय है, यह अनुभव से जाननेवाला व्यक्ति, २४. दोनों दृष्टि-किरणें (दृष्टिधार), २५. शरीर के अंदर अंधकार, प्रकाश और शब्द रूप तीन आवरण ।

पद्यार्थ :

हे मन! सद्गुरु की आराधना करो॥१॥ सद्गुरुजी जीवों को (कर्त्तव्य के प्रति) सचेत कर उनका उद्धार करनेवाले और जन्म-मरण के भय को

दूर करनेवाले हैं॥२॥ वे भ्रमरूप अंधकार को नष्ट कर ज्ञान प्रकाशित करनेवाले और हृदय का विकास करनेवाले हैं॥३॥ सद्गुरुजी आत्म और अनात्म तत्व का विचार (ज्ञान) समझानेवाले और बहुत ही मनोहर दीखनेवाले हैं ॥४॥ वे सगुण और निर्गुण (दोनों) को अनात्म-तत्त्व बतलाते हैं और कहते हैं कि आत्म-तत्त्व इन दोनों के परे है॥५॥ सद्गुरुजी अनात्म-तत्त्व रूपी मलावरण से सुरत को पृथक कर (आत्मा और परमात्मा के बीच भासित) द्वैतता (भिन्नता) को मिटानेवाले हैं ॥ ६॥ वे पिण्ड (शरीर) और ब्रह्माण्ड (संसार) के रहस्यों को प्रकट कर इन दोनों से सुरत को छुड़ानेवाले हैं॥७॥ सद्गुरु जी (हृदय में) गुरु-सेवा और सत्संग के प्रति आस्था दृढ़ करानेवाले तथा सभी प्रकार के पापों से वर्जन करनेवाले हैं ॥८॥ वे जीव को सुरत-शब्द-योग का मार्ग दिखलाकर (आवागमन रूप) संकट से दूर करनेवाले हैं ॥९॥ सद्गुरुजी ज्ञान, वैराग्य और विवेक (सत्य-असत्य की पहचान) देनेवाले और सुरत को अनहद नाद में संलग्न करनेवाले हैं ॥१०॥ वे सदा एक-सी स्थिर रहनेवाली विशुद्ध (परम पवित्र) भक्ति देनेवाले तथा परम विज्ञानी (अर्थात् सब कुछ परमात्ममय है- ऐसा अनुभव ज्ञान रखने वाले) हैं ॥११॥ हे प्रेम दान देनेवाले सद्गुरुजी! आप मुझे ऐसा प्रेम प्रदान कीजिए कि हम आपके श्रीचरणों में लीन रहें॥१२॥ मैं अपनी दोनों दोष-रहित दृष्टि-किरणों (दृष्टिधारों) को जोड़कर आपसे प्रार्थना करता हूँ कि हमारे अंदर के (अंधकार, प्रकाश और शब्द रूप) आवरणों को हटा दीजिए ॥१३॥

□□□□

(३१)

सतगुरु जी से अरज[१] हमारी ॥ टेक ॥
मैं एक दीन मलीन कुटिल[२] खल[३],
सिर अघ[४] पोट[५] है भारी ।
कामी क्रोधी परम कुचाली[६], हूँ कुल[७] अघन[८] सम्हारी[९] ॥
अधम मो ते नहिं भारी ॥ १ ॥

सुनत कठिनतर[१०] गति[११] अधमन की,
काँपत हृदय हमारी ।
कवन[१२] कृपालु जो अधम उधारें, जहँ तहँ करउँ पुछारी[१३] ॥
सुनउँ[१४] इक नाम तुम्हारी ॥२॥
अधम उधारन हो, अस[१५] सुनउँ,
तेहि ते कहउँ पुकारी ।
मोसे[१६] अधम को जो सको तारी[१७], तो तुम्हरी बलिहारी[१८] ॥
सुनो चित्त दै अघहारी[१९] ॥३॥
सतगुरु देवी साहब जी के पद में विनती हर बारी[२०] ।
'मेँहीँ' पतित[२१] को हो पतित उधारन,अबकी लेहु उधारी ॥
मैं जाउँ हर घड़ि[२२] बलिहारी ॥४॥

शब्दार्थ :

१. अर्ज, प्रार्थना,२.कपटी,३. दुष्ट,४. पाप, ५.गठरी,६. बुरे आचरण वाला, ७. समस्त, ८.पाप-समूह, ९.भरा हुआ, १०. अधिक कठिन, ११. दुर्गति, १२. कौन,१३. पूछना, पूछताछ करना, १४. सुना है,१५.ऐसा,१६. मुझ-सा, १७. यदि तार सको,१८. महिमा, न्योछावर होना, १९. पापों के नाशक, २०.हर बार,२१. महा पापी, २२. घड़ी, समय ।

पद्यार्थ :

सद्‌गुरु जी से हमारी प्रार्थना है।टेक॥ मैं एक दयनीय दशावाला, अपवित्र, कपटी और दुष्ट आदमी हूँ। मेरे सिर पर पाप की भारी गठरी है। मैं कामी (विषयासक्त), क्रोधी, अत्यन्त बुरे आचरणवाला और (अन्य) समस्त पापों से भरा हुआ हूँ॥ मुझसे अधिक नीच दूसरा कोई नहीं होगा॥१॥ यह सुनकर कि पापियों की बड़ी दुर्गति होती है, मेरा हृदय (भय से) काँप उठता है। मैं जहाँ-तहाँ (लोगों से) पूछताछ करता हूँ कि कौन ऐसे कृपाशील (महापुरुष) हैं, जो पापियों का उद्धार कर सकते हैं॥ (अंततः) मैंने एक आपका ही नाम सुना ॥२॥ आप पापियों के उद्धारक हैं, ऐसा मैंने सुना है। इसीलिए मैं आपको पुकार कर कहता हूँ कि मुझ-जैसे पापी को यदि आप तार सकें (उद्धार कर सकें) तो आपकी बड़ी महिमा

(प्रकट) होगी॥ हे पापों के नाशक! (मेरी विनती) चित्त देकर सुनिए॥३॥ महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि मैं अपने सद्‌गुरुदेव बाबा देवी साहब के चरणों में हर बार (बार-बार) प्रार्थना करता हूँ कि हे पापियों के उद्धारक! मुझ-जैसे पापी को इस बार (इस जन्म में) उद्धार कर दीजिए॥ मैं हर समय (हर पल) आप पर न्योछार होता हूँ ॥४॥

□□□□

(३२)

सतगुरु साहब की बलिहारी ॥टेक॥
जग तम-कूप बड़ा ही भयंकर, तन बिच घोर[१] अंधारी ।
ता में[२] जीव सहे नाना[३] दुःख, सुधि[४] निज घर की बिसारी[५] ॥
सतगुरु बिन परम दुःखारी ॥१॥
सतगुरु छाड़ि[६] नहीं कोउ दूसर, भेद जो कहैं पुकारी ।
जाते[७] छूटे घोर अंधारी, जीव चले भव पारी ॥
जहाँ निज घर सुख सारी ॥२॥
सतगुरु कहैं पुकारि पुकारी, भवन गवन[८] पथ न्यारी[९] ।
ना पानी महँ[१०] ना पाथर[११] महँ, बड़[१२] वैराट[१३] में ना री ॥
सोहै[१४] निज घट में सँवारी[१५] ॥३॥
बाबा देवि साहब सतगुरु पूरे, 'मेँहीँ' पुकारि पुकारी ।
कहत सकल[१६] सौं जौं निज घर चहु,गहु[१७] सतगुरु शरणारी[१८] ॥
तो पैहो[१९] निज घर-पथ सारी ॥४॥

शब्दार्थ :

१.घना,गहन,२.उसमें,३.अनेक,४.सुध, याद, ५.भूलकर,६.छोड़,७. जिससे, ८. गमन, जाना, ९. विलक्षण, भिन्न, १०. में, ११. पत्थर, १२.बड़ा, विशाल,१३. विश्व, संसार,१४. शोभा पाता है,१५.सजा हुआ,१६. सब, सभी, १७. ग्रहण करो, १८. शरण को, १९. पाओगे ।

पद्यार्थ :

सद्‌गुरु स्वामी की (बड़ी) महिमा है।टेक॥ यह संसार बहुत भयानक अंधकारमय कुआँ है। शरीर के अंदर (नयनाकाश में) भी गहन अंधकार है । इस (शरीर और संसार के अंधकार) में पड़ा जीव अपने निज-घर (परमात्म-धाम) की सुध (याद) भूलकर अनेक प्रकार के कष्टों को सहता है। सद्‌गुरु-विहीन होने से वह अत्यन्त दुःखी है ॥१॥

सद्‌गुरु को छोड़कर (संसार में) कोई दूसरा ऐसा नहीं है, जो पुकार कर वह रहस्य कह सके, जिससे गहन अंधकार छूट जाय और जीव संसार-सागर के पार चला जाय, जहाँ समस्त सुखों से भरपूर अपना घर है ॥२॥ सद्‌गुरु पुकार-पुकार कर कहते हैं कि अपने घर जाने का मार्ग (जागतिक मार्ग से) विलक्षण (भिन्न) है। वह मार्ग न तो पानी में मिलता है, न पत्थरों (पहाड़ों) में और न ही इस विशाल संसार में अन्य कहीं। वह तो अपने शरीर के अंदर सजा हुआ शोभा पाता है ॥३॥ महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि पूरे (पहुँचे हुए) सद्‌गुरु बाबा देवी साहब पुकार-पुकार कर सबसे कहते हैं कि यदि अपने घर जाना चाहते हो तो सद्‌गुरु की शरण ग्रहण करो । तभी अपने घर के मार्ग के संबंध में सभी ज्ञान प्राप्त कर सकोगे ॥४॥

□□□□

(३३)

कहरा

ध्यानाभ्यास करो सद सद ही[१], चातक दृष्टि[२] बनाई हो ।
लखत[३] लखत छवि[४] बिन्दु प्रभू की, ज्योति मंडल धँसि धाई[५] हो ॥१॥
रामनाम[६] धुन[७] सत धुन सारा, शब्द केन्द्र[८] तें आई हो ।
ता धुन भजत मिलो प्रभु से निज, आवागमन नसाई[९] हो ॥२॥
गुरु की भक्ति साधु की सेवा, बिनु नहिं कछुहू[१०] पाई हो ।
याते[११] भजो गुरु गुरु नित ही, रहो चरण लौ लाई[१२] हो ॥३॥

विन्दु चन्द तब सूर[१३] प्रकाशे, शब्द-लहर लहराई[१४] हो ।
जो अति सिमिटि[१५] रहै सुखमन में, ताको पड़ै जनाई हो ॥४॥
'मेँहीँ' सतगुरु की बलिहारी, जिन यह युक्ति[१६] बताई हो ॥
धन्य-धन्य सतगुरु मेरे पूरे, निसदिन तुव[१७] शरणाई[१८] हो ॥५॥

शब्दार्थ :

१. सदा-सदा ही, प्रतिदिन, २.चातक पक्षी की-सी दृष्टि, ३.देखते, ४. रूप, ५.शीघ्रतापूर्वक, ६.सर्वव्यापक शब्द, ७.ध्वनि, ८.उद्‌गम स्थान, ९.नष्ट होगा, समाप्त होगा, १०.कुछ भी, ११.इसीलिए, १२.मन लगाकर, १३.सूर्य, १४. तरंगित या ध्वनित होती है, १५.सिमट कर, १६.रहस्य,भेद, १७.आपके, १८. शरण में ।

पद्यार्थ :

(हे साधक! तुम) चातक* पक्षी की-सी दृष्टि बनाकर प्रतिदिन (नियमित रूप से) ध्यान का अभ्यास करो । प्रभु परमात्मा के ज्योतिर्मय बिन्दु रूप को देखते-देखते शीघ्रतापूर्वक प्रकाशमंडल में धँस जाओगे ॥१॥

रामनाम ध्वनि रूप सत्तध्वनि, जो (सृष्टि का) सार तत्व है, वह शब्द अपने केन्द्र (परमात्म-पद) से आता है। उस ध्वनि का भजन (ध्यान) करते हुए अपने प्रभु से मिलो, जिससे तुम्हारा जन्म-मरण का दुःख समाप्त हो जाएगा ॥२॥

गुरु की भक्ति और साधुओं की सेवा किए बिना (अध्यात्म-मार्ग में) तुम कुछ भी नहीं पाओगे । इसलिए नित्यप्रति गुरुदेव की आराधना करते रहो और उनके चरणों में अपने मन को लगाकर रखो ॥३॥

(सूक्ष्म ध्यान के क्रम में) पहले ज्योतिर्मय विन्दु, चन्द्रमा और फिर सूर्य प्रकाशित होता है। (पश्चात् वहीं पर) शब्द की धाराएँ ध्वनित होती हैं । किन्तु ये अनुभूतियाँ उनको हो पाती हैं, जो अपनी चेतन धाराओं को

---

* चातक चिड़ियाँ स्वाति-बूंद के लिए आसमान की ओर टकटकी लगाकर देखती रहती है, वह अन्य किसी प्रकार के जल की ओर ध्यान नहीं देती । इसीप्रकार दृष्टि-योग के साधक को एकबिन्दुता प्राप्त करने के लिये सब ओर से अपनी दृष्टि को समेटकर केन्द्र में केन्द्रित करना चाहिए ।

समेटकर सुषुम्ना में स्थिर कर पाता है।।४।।

महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि जिन्होंने (आध्यात्मिक साधना की) यह युक्ति बताई है, उन सद्गुरु की बड़ी महिमा है। मेरे पूर्ण ज्ञानी सद्गुरुदेव! आप धन्य हैं, धन्य हैं। मैं रात-दिन आपकी ही शरण में हूँ ।।५।।

□□□□

(३४)

नैनों के तारे[१] चश्म रोशन[२] क्यों नजर आते नहीं ।
रूह रोशन[३] आत्मभूषण[४] क्यों पकड़ जाते नहीं ॥१॥
नख से सिख लौं[५] बिन्दु प्रति में तुम रमे हो[६] हे प्रभो ।
प्रति पकड़[७] में तुम भरे हो क्यों धरे जाते[८] नहीं ॥२॥
सर्वरूपी[९] हो कहाते फिर अरूपी[१०] हो गये ।
सूक्ष्मतर मन बुद्धि हू[११] से क्यों गहे[१२] जाते नहीं ॥३॥
प्रति अंश में अंतर व बाहर घट[१३] के व्यापक व्योम[१४] ज्यों ।
त्योंहि तुम हू सर्वव्यापक क्यों प्रकट होते नहीं ॥४॥
तुममें निज में भेद बुद्धि[१५] को जो सकते हैं मिटा ।
वह तुम्हीं तुम वही मेँहीँ प्रश्न पुनि[१६] रहते नहीं ॥५॥

शब्दार्थ :

१. बहुत प्यारा, परम प्रिय, २. आँखों को प्रकाशित करनेवाले, ३.जीवात्मा को प्रकाशित करनेवाले,४.आत्मा की शोभा बढ़ानेवाले,५.शिखा (चोटी) तक,६.फैले हुए हो, व्यापक हो, ७.प्रत्येक परमाणु, ८. ग्रहण किए जाते, पहचाने जाते,९.सब रूप जिसके हों,१०.रूप-रहित, निराकार, ११. भी, १२. ग्रहण किए, १३. घड़ा, १४. आकाश, १५. द्वैत-भाव, १६. पुनः ।

पद्यार्थ :

(आत्म दृष्टि से) परम प्रिय लगनेवाले तथा हमारी आँखों को प्रकाश

देनेवाले हमारे प्रभु! तुम क्यों नहीं दिखाई पड़ते ? ऐ जीवात्मा को प्रकाशित कर उसकी शोभा बढ़ानेवाले! तुम (इन्द्रियों के द्वारा) ग्रहण क्यों नहीं होते हो ? ।।१।।

हे प्रभु! तुम हमारे नख से शिखा (चोटी) तक (कण-कण में) व्यापक हो तथा प्रत्येक परमाणु में भरे हुए हो ।(इतने पर भी) तुम क्यों पहचाने नहीं जाते ? ।।२।।

सभी रूपों में तुम ही हो, ऐसा कहा जाता है, लेकिन तुम रूप-रहित हो गए (लगते) हो। (ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों की अपेक्षा) जो सूक्ष्मतर इन्द्रियाँ-मन और बुद्धि हैं, तुम उनके द्वारा भी ग्रहण क्यों नहीं होते ?।।३।।

जिसप्रकार आकाश घड़े के भीतर और बाहर प्रत्येक अंश में (समान रूप से) व्यापक (फैला हुआ) है, उसी प्रकार तुम भी सबमें व्यापक हो, फिर भी प्रकट क्यों नहीं होते ? ।।४।।

महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि (हे प्रभु!) तुममें और निज तत्त्व (आत्म तत्व) के बीच स्थित भेद-बुद्धि (द्वैत भाव) को जो साधक मिटा सकता है,वह तुम्हीं (अर्थात् परमात्मा) हो जाता है और तुम वही हो जाते हो । वहाँ पुनः द्वैत-भाव का कोई प्रश्न ही नहीं रहता ।।५।।

□□□□

(३५)

ईश्वर-स्वरूप-निरूपण

प्रभु अकथ[१] अनामी[२] सब पर स्वामी, गो गुण[३] प्रकृति परे ॥१॥
हो सरब निवासी[४] राम[५] कहासी[६], सबही से न्यार हरे ॥२॥
अव्यक्त[७] अगोचर[८] क्षर अक्षर पर, जा पद संत धरे ॥३॥
हैं अनादि अनन्त सर्वप्रिय[९] कन्त[१०], व्यापक हैं सगरे[११] ॥४॥
प्रभु हैं सर्वदेशी[१२] और अदेशी[१३], व्यापकपनहु[१४] परे ॥५॥
'मेँहीँ' कर जोरे[१५] प्रभु को भजो रे, प्रभु भजि जीव तरे ॥६॥

शब्दार्थ :

१. नहीं कहने (वर्णन करने) योग्य, २. नाम-रहित, ३. इन्द्रियों के गुण,

४.सब जगह रहनेवाले,५.सबमें रमण करनेवाले,६.कहलाते हो, ७.अप्रकट, ८.इन्द्रियों के द्वारा अग्राह्य, ९. सबके प्रिय, १०. स्वामी,११. सभी जगह, १२.सभी जगह रहनेवाले, १३. जो किसी स्थान में रहते हुए उससे परे भी हो, १४. सर्वव्यापकता (सभी जगह रहने के गुण) के भी, १५. दृष्टि-किरणों को जोड़ो ।

पद्यार्थ :

हे प्रभु! आप वर्णनातीत, नाम-रहित, सर्वोपरि स्वामी, इन्द्रियों के गुणों और (जड़-चेतन दोनों) प्रकृतियों के परे हैं ॥१॥ आप सबमें रहनेवाले हैं, इसलिए राम कहलाते हैं, किन्तु हे हरि! आप सबसे न्यारे (भिन्न) हैं॥२॥ आप अप्रकट, इन्द्रियों द्वारा अग्राह्य, नाशवान और अविनाशी दोनों से परे, उस (शब्दातीत) पद में रहते हैं, जिसे संतगण प्राप्त करते हैं॥३॥ आप आदि-अंत रहित, सबके प्रिय स्वामी और सभी जगह व्यापक हैं॥४॥ आप सभी स्थानों में हैं, साथ ही उसी में ही न रहकर उसके बाहर भी विद्यमान हैं, अर्थात् आप सर्वव्यापकता के भी परे हैं ॥५॥ महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि (दोनों) दृष्टि-किरणों (दृष्टिधारों) को जोड़कर प्रभु का भजन (ध्यान) करो, इस प्रकार प्रभु को भजने से जीव (संसार-सागर से) तर जाता है॥६॥

□□□□

(३६)

प्रभु वरणन[१] में आवैं नाहीं,
अकथ अनामी अहैं[२] सब माहीं[३] ॥१॥
प्रत्येक परमाणु[४] अणु[५], लघु[६] दीर्घ[७] सर्व तनु[८],
प्रभु जी व्यापक जनु[९] गगन रहाहीं[१०] ॥२॥
दृश्यऽरु अदृश्य[११] सब, सहित प्रकृति भव,
प्रभु में अँटहि प्रभु अँटि न सकाहीं ॥३॥
अनादि अनन्त प्रभु, निर अवयव[१२] विभु[१३],
अछय[१४] अजय[१५] अति सघन[१६] रहाहीं ॥४॥
गो गुण[१७] अगोचर, आत्मगम्य[१८] सूक्ष्म तर,
गुरु-भेद लहि[१९] भजि 'मेँहीँ' गति पाहीं[२०] ॥५॥

शब्दार्थ :

१.वर्णन,२. हैं, ३. में, ४. वह छोटा भाग, जिसका पुनः विभाजन न हो, ५.सूक्ष्म कण,६.छोटा,७.बड़ा, ८.सब शरीर,९.जैसे,१०.रहता है,११.दृश्य और अदृश्य (देखे और नहीं देखे जाने वाले पदार्थ),१२.अंश-रहित, अखण्ड,१३. बहुत बड़ा,१४.अक्षय, नाश-रहित,१५. जिसे जीता न जा सके, १६.घना,१७.इन्द्रियों के गुण, १८.आत्मा से जानने योग्य,१९. लेकर, प्राप्त कर,२०.सद्गति (मोक्ष) पाते हैं ।

पद्यार्थ :

परम प्रभु परमात्मा वर्णन करने में नहीं आते हैं। वे नहीं कहने योग्य, नाम-रहित और सबमें (रहनेवाले) हैं॥१॥ वे (सृष्टि के) प्रत्येक परमाणु, अणु और छोटे-बड़े सभी शरीरों में उसी तरह व्यापक हैं, जैसे आकाश (सभी पदार्थों में) व्यापक रहता है॥२॥ (जड़ और चेतन) प्रकृतियों के सहित दृश्य और अदृश्य समस्त जगत प्रभु परमात्मा में समा जाते हैं, परन्तु परमात्मा उनमें (पूरे-के-पूरे) नहीं समा पाते॥३॥ (क्योंकि) वे आदि-अंत रहित, अंश-रहित (अखंडित), सबसे बड़े, नाश-रहित, किसी से न जीते जाने योग्य और अत्यन्त सघनता से (सर्वत्र विद्यमान) रहनेवाले हैं॥४॥ वे इन्द्रियों के गुण-ज्ञान में नहीं आने योग्य, मात्र आत्मा द्वारा जाननेयोग्य और अत्यन्त सूक्ष्म हैं। महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि सद्गुरु से युक्ति प्राप्त कर परमात्मा की भक्ति करने से जीव सद्गति (मोक्ष) प्राप्त करता है॥५॥

□□□□

(३७)

कजली

प्रभु अकथ अनाम अनामय[१] स्वामी, गो गुण प्रकृति परे ॥ टेक ॥
क्षर अक्षर प्रभु पार परमाक्षर[२], जा पद सन्त धरे ।
अगुण सगुण पर पुरुष प्रकृति पर, सत्त असतहु परे ॥१॥
अनन्त अपारा सार के सारा, जा भजि जीव तरे ।
'मेँहीँ' कर जोरे प्रभुहिं निहोरे[३], करु उधार हमरे ॥२॥

शब्दार्थ :

१. रोग-रहित, २. पुरुषोत्तम, ३. प्रार्थना करता हूँ।

पद्यार्थ :

परमप्रभु परमात्मा नहीं कहने योग्य, नाम-रहित, रोग-रहित, इन्द्रिय के गुणों और (जड़-चेतन) प्रकृतियों के परे तथा सबका मालिक हैं॥ टेक ॥ वे प्रभु क्षर और अक्षर पुरुष से परे पुरुषोत्तम हैं। उनके (शब्दातीत) पद को संतजन धारण करते हैं। परमात्मा निर्गुण-सगुण, पुरुष-प्रकृति तथा सत-असत् से भी परे (श्रेष्ठ) हैं॥१॥ वे अंतहीन, अपार (असीम), सार के भी सार (अर्थात् चेतन को भी चेतनता प्रदान करनेवाले) हैं, जिनकी आराधना करके जीव (संसार-सागर से) तर जाता है। महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं—'मैं हाथ जोड़कर प्रभु परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ कि आप हमारा उद्धार कीजिए' ॥२॥

□□□□

(३८)

पीव प्यारा

है जिसका नहीं रंग[१] नहिं रूप रेखा[२] ।
जिसे दिव्य दृष्टिहु से नहिं कोइ देखा ॥
ये इन्द्रिन चतुर्दश[३] में जो ना फँसा है ।
तथा कोई बन्धन से जो ना कसा है ॥
वही है परम पुर्ष[४] सबको अधारा[५] ।
सोई पीव प्यारा सोई पीव प्यारा ॥१॥
त्रितन[६] पाँच कोषन[७] में जो ना बझा[८] है ।
जो लम्बा न चौड़ा न टेढ़ा-सोझा[९] है ॥
नहीं जो स्थावर[१०] न जंगम[११] कहावे ।
नहीं जड़ न चेतन की पदवी को पावे ॥
जो है परम पुर्ष सबको अधारा ।
सोई पीव प्यारा सोई पीव प्यारा ॥२॥

नहीं आदि नहिं मध्य नहिं अन्त जाको ।
नहिं माया के ढक्कन से है पूर्ण ढाको[१२] ॥
पुरण ब्रह्म पदवीहु से जो तुलै ना ।
अगुण वा सगुण पदहू जामें लगै ना ॥
जो है परम पूर्ष सबको अधारा ।
सोई पीव प्यारा सोई पीव प्यारा ॥३॥
सभी में भरा अंश रहता जिसी का ।
परन्तु जो होता न आकृत[१३] किसी का ॥
हैं निर्गुण सगुण ब्रह्म दोउ अंश जाको ।
समता न पाता कोई भी है जाको ॥
जो है परम पुर्ष सबको अधारा ।
सोई पीव प्यारा सोई पीव प्यारा ॥४॥
ब्रह्म सच्चिदानन्द[१४] अरु वासनात्मक[१५] ।
मनोमय[१६] तथा ज्ञानमय[१७] प्राण आत्मक[१८] ॥
ओ ओंकार शब्द ब्रह्म औ विश्वरूपी ।
ये सप्त[१९] ब्रह्म श्रेणी जिसे न पहूँची ॥
जो है परम पुर्ष सबको अधारा ।
सोई पीव प्यारा सोई पीव प्यारा ॥५॥
नहीं जन्म जाको नहीं मृत्यु जाको ।
नहीं दस न चौबीस अवतार जाको ॥
अखिल[२०] विश्व में हू जो सब ना समाता[२१] ।
अपरा परा पूरि नहिं अन्त पाता ॥
जो है परम पुर्ष सबको अधारा ।
सोई पीव प्यारा सोई पीव प्यारा ॥६॥
नहीं सूर्य सकता जिसे कर प्रकाशित ।
न माया ही सकती जिसे कर मर्यादित ॥
जो मन बुद्धि वाणी सबन को अगोचर ।
बताया हो चुप जिसको वाह्व मुनिवर ॥

जो है परम पुर्ष सबको अधारा ।
सोई पीव प्यारा सोई पीव प्यारा ॥७॥
ज्यों का त्यों ही सदा जो सबके प्रथम से ।
जिसे उपमा देता बने कुछ न हम से ॥
है जिसके सिवा आदि सबका ही भाई ।
अन आदि एक ही जो ही कहाई ॥
जो है परम पुर्ष सबको अधारा ।
सोई पीव प्यारा सोई पीव प्यारा ॥८॥

शब्दार्थ :

१. आकार से भिन्न किसी दृश्य पदार्थ का वह गुण जिसका अनुभव केवल आँखों से ही होता है। जैसे-लाल, काला आदि । २. आकार सूचक चिह्न, ३. चौदह इन्द्रियाँ, ४. पुरुष, ५. आधार, ६. तीन शरीर (स्थूल, सूक्ष्म और कारण), ७. पाँच कोश (अन्नमय, प्राणमय,मनोमय, विज्ञानमय और आनंदमय), ८.फँसा,९.सीधा, १०.नहीं चलने वाले जीव (पेड़-पौधे आदि), ११. चलने वाले प्राणी, १२.ढँका हुआ,१३.रूप, १४. समष्टि प्राण, चेतन प्रकृति में व्यापक सर्वेश्वर का अंश, १५. त्रिकुटी तक प्रकृति मंडल में व्याप्त परमात्म-अंश, १६.समष्टि मन में व्याप्त परमात्म-अंश, १७. समष्टि बुद्धि में व्याप्त परमात्म-अंश, १८. व्यष्टि चेतन में व्याप्त परमात्म-अंश, १९. सात, २०. सम्पूर्ण, २१. अँटता है ।

पद्यार्थ :

जिसका न कोई रंग है, न कोई आकार सूचक चिह्न, जिसे किसी ने दिव्य दृष्टि से भी नहीं देखा है, जो चौदह इन्द्रियों से संबद्ध नहीं है तथा जो किसी भी प्रकार के बंधन से बंधा नहीं है, वही परम पुरुष परमात्मा सबका आधार है, वही सबका प्यारा स्वामी है॥१॥

जो तीन जड़ शरीरों (स्थूल, सूक्ष्म और कारण) तथा पाँच कोशों (अनमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनंदमय) में फँसा हुआ नहीं है, जो लंबा-चौड़ा, टेढ़ा-सीधा नहीं है, जो न स्थावर (स्थिर रहनेवाला) कहलाता है और न जंगम (चलनेवाला), जिसे जड़ (अज्ञानमय) या चेतन (ज्ञानमय) की संज्ञा भी नहीं दी जा सकती, जो परमपुरुष परमात्मा

सबका आधार है, वही सबका प्यारा, स्वामी है॥२॥

जिसका आरंभ, मध्य और अंत नहीं है, जो माया के आवरण से पूरी तरह ढँका हुआ नहीं है, पूर्ण ब्रह्म (जड़-चेतन प्रकृतियों में व्याप्त परमात्म-अंश) के पद से भी जिसकी तुलना नहीं की जा सकती, सगुण या निर्गुण पद् भी जिसके लिए प्रयुक्त नहीं किया जा सकता, जो परम पुरुष परमात्मा सबका आधार है, वही सबका प्यारा स्वामी है॥३॥

संसार के सभी पदार्थों में जिसका अंश भरा (व्याप्त) रहता है, पर वह उस पदार्थ की आकृति जैसा नहीं हो जाता, निर्गुण ब्रह्म और सगुण ब्रह्म दोनों जिसका अंश है, परन्तु दोनों में से कोई भी जिसकी बराबरी नहीं कर सकता, जो परमप्रभु परमात्मा सबका आधार है, वही सबका प्यारा स्वामी है॥४॥

सच्चिदानंद ब्रह्म, वासनात्मक ब्रह्म, मनोमय ब्रह्म, ज्ञानमय ब्रह्म, प्राणात्मक ब्रह्म, ओंकार शब्दब्रह्म और विश्वरूपी ब्रह्म—ये सातों प्रकार के ब्रह्म भी जिसके समीप नहीं जा सकते (अर्थात् बराबरी नहीं कर सकते), जो परम पुरुष परमात्मा सबका आधार है, वही सबका प्यारा स्वामी है॥५॥

जिसका न जन्म होता है, न मृत्यु ही, जिसके दस* अथवा चौबीस अवतार** भी नहीं होते, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में भी जो (पूरा-पूरा) नहीं अँट पाता, अपरा (जड़) और परा (चेतन) प्रकृति के मंडलों में परिपूर्ण होकर भी जिसका अंत नहीं हो पाता, जो परम पुरुष परमात्मा सबका आधार है, वही सबका प्यारा स्वामी है॥६॥

जिसे सूर्य प्रकाशित नहीं कर सकता, जिसे माया अपने घेरे में नहीं समेट सकती, जो मन, बुद्धि, वाणी; इन सबसे नहीं जानने योग्य है, जिसके (स्वरूप के) बारे में मुनिश्रेष्ठ वाह्व ने (वाष्कल को) मौन होकर बताया (कि वह वाणी का विषय नहीं है), जो परम पुरुष परमात्मा सबका आधार है, वही सबका प्यारा स्वामी है॥७॥

---

* दस अवतार—मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राघव राम, कृष्ण, बुद्ध और कल्कि ।

** चौबीस अवतार—वराह, सनकादि, नारद, नर-नारायण, कपिल, दत्तात्रेय, यज्ञ, ऋषभ, हंस, पृथु, मत्स्य, कूर्म, धन्वन्तरि, हयशीर्ष, मोहिनी, नृसिंह, वामन, परशुराम, वेदव्यास, राघव राम, कृष्ण, बलराम, बुद्ध और कल्कि ।

(महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि) जो सबके पहले से सदा ज्यों-का-त्यों (एक समान) है, जिसकी कुछ भी उपमा देते हुए मुझसे नहीं बनता, हे भाई! जिसके अतिरिक्त अन्य सबका आरंभ है, अनादि (आरंभ-रहित) कहलाने वाला जो एक- ही-एक है, वह परम पुरुष परमात्मा सबका आधार है, वही सबका प्यारा स्वामी है॥८॥

□□□□

(३९)

प्रभु तोहि कैसे देखन पाऊँ ।
तन इन्द्रिन संग माया देखूँ,
मायातीत[१] धरहु[२] तुम नाऊँ[३] ॥१॥
मेधा[४] मन इन्द्रिन गहें[५] माया,
इन्हमें रहि माया लिपटाऊँ ।
इन्द्रिन मन अरु बुद्धि परे प्रभु,
मैं न इन्हें तजि आगे धाऊँ[६] ॥२॥
करहु कृपा इन्ह संग छोड़ाबहु,
जड़ प्रकृति कर पारहि जाऊँ ।
'मेँहीँ' अस करुणा करि स्वामी,
देहु दरस[७] सुख पाइ अघाऊँ[८] ॥३॥

शब्दार्थ :

१. माया से परे,२.धारण किया,३.नाम,४.बुद्धि,५. ग्रहण करता है, ६. वेग से चलना, ७. दर्शन, ८. तृप्त हो जाऊँ ।

पद्यार्थ :

हे परमप्रभु परमात्मा! मैं आपको किस तरह देख सकता हूँ ? आपने अपना मायातीत नाम धारण किया है और मैं शरीर-इन्द्रियों के साथ रहने के कारण माया को ही देखता हूँ॥१॥

मेरी बुद्धि, मन और अन्य इन्द्रियाँ मायिक विषयों को ही ग्रहण करती हैं। मैं इनके बीच रहकर माया में लिपटा हूँ । हे प्रभु! आप तो इन

इन्द्रियों, मन और बुद्धि से परे हैं, लेकिन मैं इन सबको छोड़कर वेग से आगे नहीं बढ़ पाता हूँ॥२॥

आप मुझ पर कृपा कीजिए और इनसे मेरा संग (लगाव) छुड़ा दीजिए, जिससे मैं जड़ प्रकृति के पार (चेतन मंडल में) जा सकूँ । महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि आप ऐसी दया करके मुझे दर्शन दीजिए कि मैं उस सुख को पाकर तृप्त हो जाऊँ ॥३॥

□□□□

(४०)

नैन[१] सों नैनहिं[२] देखिय जैसे ।
त्वचहिं[३] त्वचा सुख पाइये जैसे ॥१॥
आत्म परमात्महिं[४] पेखै[५] तैसे ।
आत्म परमात्म मिलन सुख तैसे ॥२॥
यह <u>दरस परस</u>[६] अति दुर्लभ बात ।
बुद्धि परे मन पर की बात ॥३॥
ध्यावै[७] अति लौ लावै जोइ ।
अरु सदाचार पालै[८] दृढ़ होइ ॥४॥
सो[९] 'मेँहीँ' सो दुर्लभ पावै ।
नहिं फिर भव महँ भटका[१०] खावै ॥५॥

शब्दार्थ :

१. आँख, २. आँख को, ३. त्वचा से, ४. परमात्मा को, ५. देखता है, ६. दर्शन-स्पर्शन, ७. ध्यानाभ्यास करता है, ८. पालन करता है, ९. वह, १०. भटकाव ।

पद्यार्थ :

जैसे आँख से अपनी आँख को देखते हैं, जैसे त्वचा से त्वचा का (स्पर्श) सुख पाते हैं॥१॥ उसीप्रकार आत्मा (योग-साधना के द्वारा) परमात्मा को देखती है और परमात्मा से आत्मा का मिलन-सुख (प्राप्त) होता है॥२॥ लेकिन यह दर्शन-स्पर्शन (मिलन) अत्यन्त दुर्लभ बात है, बुद्धि और मन (की पहुँच) से परे की बात है॥३॥ जो अत्यन्त प्रेम के साथ ध्यानाभ्यास करते हैं और दृढ़तापूर्वक सदाचार (झूठ, चोरी, नशा, हिंसा

और व्यभिचार के त्याग) का पालन करते हैं ॥४॥ महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि वे ही उस दुर्लभ (दर्शन-स्पर्शन) को प्राप्त करते हैं और उन्हें संसार में पुनः (जन्म-मरण के चक्र में) भटकना नहीं पड़ता है ॥५॥

□□□□

(४१)

मेधा[1] मन संग जेते दरसन[2] ।
मेधा मन संग जेते[3] परसन[4] ॥१॥
दिव्य दृष्टि से हू जो दरसन ।
दिव्य अंग का हू जो परसन ॥२॥
सब मायामय दरसन परसन ।
प्रभु दरस परस हैं ये नहीं सतजन[5] ॥३॥
प्रकृति पार मन बुद्धि के पारा ।
जड़ के सब आवरणन[6] पारा ॥४॥
गुरु हरि कृपा से अस[7] हो जोई[8] ।
'मेँहीँ' दरसन पावै सोई[9] ॥५॥

शब्दार्थ :

१. बुद्धि, २. दर्शन, ३. जितने, ४. स्पर्शन, ५. सज्जन, ६. आवरणों, परदे, ७. ऐसा, ८. जो, ९. सो, वही ।

पद्यार्थ :

बुद्धि और मन के साथ (रहने पर) जितने प्रकार के दर्शन तथा स्पर्शन होते हैं, (॥१॥) दिव्य दृष्टि से भी जो दर्शन होते हैं तथा दिव्य (शरीर के) अंगों का जो स्पर्शन होता है; (॥२॥) ये सब दर्शन-स्पर्शन मायामय (माया-संबंधी) हैं। हे सज्जनो! ये सब परमप्रभु परमात्मा के दर्शन-स्पर्शन नहीं हैं ॥३॥ गुरुरूप हरि की कृपा से प्रकृति, मन, बुद्धि और जड़ के सभी आवरणों के पार हो जाने वाला जो व्यक्ति होता है, महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि वही परमप्रभु परमात्मा के दर्शन कर पाता है ॥४॥५॥

□□□□

(४२)

आत्मा

नहीं थल नहीं जल नहीं वायु अग्नी ।
नहीं व्योम[1] ना पाँच तन्मात्र[2] ठगनी ॥
ये त्रय गुण नहीं नाहिं इन्द्रिन चतुर्दश ।
नहीं मूल प्रकृति[3] जो अव्यक्त अगम अस ॥
सभी के परे जो परम तत्त्व[4] रूपी ।
सोई आत्मा है सोई आत्मा है ॥ सभी के०॥ १ ॥
न उद्भिद्[5] स्वरूपी न उष्मज[6] स्वरूपी ।
न अण्डज[7] स्वरूपी न पिण्डज[8] स्वरूपी ॥
नहीं विश्व रूपी[9] न विष्णु स्वरूपी ।
न शंकर स्वरूपी न ब्रह्मा स्वरूपी ॥ सभी के०॥ २ ॥
कठिन[10] रूप ना जो तरल[11] रूप ना जो ।
नहीं वाष्प[12] को रूप तम रूप ना जो ॥
नहीं ज्योति को रूप शब्दहु नहीं जो ।
सटै कुछ भी जापर सोऊ रूप ना जो ॥ सभी के०॥३ ॥
न लचकन[13] न सिकुड़न न कम्पन है जा में ।
न संचालना[14] नाहिं विस्तृत्व[15] जा में ॥
है अणु नाहिं परमाणु भी नाहिं जा में ।
न रेखा[16] न लेखा[17] नहीं बिन्दु जा में ॥ सभी के०॥ ४ ॥
नहीं स्थूल रूपी नहीं सूक्ष्म रूपी ।
न कारण स्वरूपी नहीं व्यक्त रूपी ॥
नहीं जड़ स्वरूपी न चेतन स्वरूपी ।
नहीं पिण्ड रूपी न ब्रह्माण्ड रूपी ॥सभी के०॥ ५ ॥
है जल थल में जोइ पै[18] जल थल है नाहीं ।
अगिन वायु में जो अगिन वायु नाहीं ॥

जो त्रयगुण गगन[१९] में न त्रयगुण अकाशा ।
जो इन्द्रिन में रहता न होता तिन्हन सा ॥ सभी के०॥ ६ ॥
मूल माया[२०] की सब ओर अरु ओत प्रोतहु[२१] ।
भरो जो अचल रूप कस[२२] सो[२३] सुजन[२४] कहु ॥
भरो मूल माया में नाहीं सो माया ।
अव्यक्त हू को जो अव्यक्त कहाया ॥ सभी के०॥ ७ ॥
ब्रह्मा महाविष्णु विश्वरूप हरि[२५] हर[२६] ।
सकल देव दानव रु नर नाग किन्नर ॥
स्थावर[२७] रु जंगम[२८] जहाँ लौं[२९] कछू है ।
है सबमें जोई पर न तिनसा सोई है ॥ सभी के०॥ ८ ॥
जो मारे मरै ना जो काटे कटै ना ।
जो साड़े सड़ै ना जो जारे जरै ना ॥
जो सोखा ना जाता सोखे से कछू भी ।
नहीं टारा जाता टारे से कछू भी ॥ सभी के०॥ ९ ॥
नहीं जन्म जाको नहीं मृत्यु जाको ।
नहीं बाल यौवन जरापन[३०] है जाको ॥
जिसे नाहिं होती अवस्था हू चारो ।
नहीं कुछ कहाता जो वर्णहु[३१] में चारो ॥ सभी के०॥ १० ॥
कभी नाहिं आता न जाता है जोई ।
कभी नाहिं वक्ता न श्रोता है जोई ॥
कभी जो अकर्त्ता न कर्त्ता कहाता ।
बिना जिसके कुछ भी न होता बुझाता ॥ सभी के०॥ ११ ॥
कभी ना अगुण वा सगुण ही है जोई ।
नहीं सत् असत् मर्त्य[३२] अमरहु ना जोई ॥
अछादन[३३] करनहार अरु ना अछादित ।
न भोगी[३४] न योगी[३५] नहिं हित[३६] न अनहित[३७] ॥ सभी के०॥ १२ ॥
त्रिपुटी किसी में न आवै कभी भी ।
औ सापेक्ष भाषा न पावै कभी भी ॥

ओंकार शब्दब्रह्म हू को जो पर है ।
हत[३८] अरु अनाहत सकल शब्द पर है ॥ सभी के०॥ १३ ॥
जो टेढ़ों में रहकर भी टेढ़ा न होता ।
जो सीधों में रहकर भी सीधा न होता ॥
जो जिन्दों में रहकर न जिन्दा कहाता ।
जो मुर्दों में रहकर न मुर्दा कहाता ॥ सभी के०॥ १४ ॥
भरो व्योम से घट फिरै व्योम में जस ।
भरो सर्व तासों फिरै ताहि में तस ॥
नहीं आदि अवसान[३९] नहिं मध्य जाको ।
नहीं ठौर कोऊ रखै पूर्ण वाको ॥ सभी के०॥ १५ ॥
हैं घट[४०] मठ[४१] पटाकाश[४२] कहते बहुत-सा ।
न टूटै रहै एक ही तो अकाशा ॥
है तस ही अमित चर[४३] अचर[४४] हू को आतम ।
कहैं[४५] बहु न टूटै न होवै सो बहु कम ॥ सभी के०॥ १६ ॥
न था काल जब था वरतमान[४६] जोई ।
नहीं काल ऐसो रहेगा न ओई[४७] ॥
मिटैगा अवस काल वह ना मिटैगा ।
है सतगुरु जो पाया वही यह बुझेगा ॥ सभी के०॥ १७ ॥
सरव श्रेष्ठ तनधर[४८] की भी बुधि न गहती ।
जो ऐसो अगम सन्तवाणी ये कहती ॥
करै पूरा वर्णन तिसे 'मेँहीँ' कैसे ।
है कंकड़-वणिक[४९] कहै मणि-गुण[५०] को जैसे ॥ सभी के०॥ १८ ॥

शब्दार्थ :

१.आकाश,२.तन्मात्राओं (सूक्ष्म भूतों— रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द), ३. साम्यावस्थाधारिणी जड़ात्मिका प्रकृति, महाकारण, ४. परमसत्ता, परमात्मा, ५.भूमि से जन्म लेने वाला (वृक्ष, लता आदि), ६.गर्मी से उत्पन्न होने वाला (खटमल, जूँ आदि), ७.अण्डा से जन्म लेने वाला (साँप, पक्षी आदि) ८. पेट से जन्म लेने वाला (गाय, कुत्ता, मानव आदि), ९. रूपवाला, १०. ठोस, ११. ऊँचाई से नीचाई की ओर बहने वाला (जल,

तेल आदि),१२.भाप,१३. मुड़ने का गुण, १४. चलने की क्रिया, गति, १५.विस्तार,फैलाव,१६. चिह्न, १७.गिनती, गणना,१८.परन्तु,१९.आकाश, २०. जड़ात्मिका मूल प्रकृति, २१. सघनता से व्याप्त, २२. कैसा, २३. वह, २४. सज्जन, २५. विष्णु, २६.शंकर,२७.नहीं चलने वाले जीव,२८. चलनेवाले जीव,२९.तक,३०.बुढ़ापा,३१.जाति,३२.मरणशील, ३३.आच्छादन, ढँकना,३४.विषयानंद लेनेवाला,३५.योग करनेवाला,३६.भलाई चाहनेवाला, ३७.बुराई चाहनेवाला,३८.आहत शब्द,३९. अंत, समाप्ति,४०.घड़ा, ४१.घर,४२.वस्त्रावरण से घिरा आकाश, ४३.चलने वाले प्राणी,४४.नहीं चलने वाले प्राणी,४५.कहीं,४६.वर्तमान,विद्यमान,४७.वह,४८. शरीरधारी, ४९. व्यापारी, ५०. मणि के गुण या दाम ।

पद्यार्थ :

जो भूमि, जल, हवा, अग्नि या आकाश नहीं है, जो धोखे में डालनेवाली पाँच तन्मात्राएँ (विषय) नहीं है, जो न त्रयगुण है और न चौदह इन्द्रियाँ ही, जो अव्यक्त-अगम कहानेवाली जड़ात्मिका मूल प्रकृति भी नहीं है, अपितु जो इन सबके परे और परमतत्व स्वरूप है, वही आत्मतत्व है॥१॥

जो न भूमि से उत्पन्न जीव जैसा है और न उष्मा से उत्पन्न, जो न अंडा से उत्पन्न जीव जैसा है और न पेट से उत्पन्न, न विश्वरूप जैसा है और न विष्णु के रूप जैसा, जो न शंकर के रूप जैसा है और न ब्रह्मा के रूप जैसा, बल्कि जो इन सबके परे और परमतत्व स्वरूप है, वही आत्मतत्व है॥२॥

जो न ठोसरूप है और न तरल रूप ही, जो न भाप रूप है और न अंध कार रूप ही, जो न प्रकाश है और न शब्द ही, जिस पर कुछ चिपक सके, ऐसा रूप भी जो नहीं है, बल्कि जो इन सबके परे और परमतत्व स्वरूप है, वही आत्मतत्व है॥३॥

जिसमें न लचकन का गुण है, न सिकुड़ने का और जिसमें कंपन भी नहीं है, जिसमें न गति, न विस्तार है, जिसमें न अणु और न परमाणु है, जिसमें चिह्न भी नहीं है, जिसकी गणना नहीं हो सकती और जिसमें विन्दु भी नहीं है, अपितु जो इन सबके परे और परमतत्व स्वरूप है, वही आत्मतत्व है॥४॥

जो न स्थूल रूप है और न सूक्ष्म रूप, न कारण रूप है और न व्यक्त (प्रकट) रूप, जो न जड़ रूप है और न चेतन रूप, न पिण्ड (शरीर) रूप है और न ब्रह्माण्ड (स्थूल जगत) रूप, अपितु जो इन सबके परे और परमतत्व स्वरूप है, वही आत्मतत्व है॥ ५॥

जो जल और स्थल में व्यापक रहते हुए भी जल या स्थल नहीं है, जो वायु और अग्नि में व्यापक है, पर वायु या अग्नि नहीं है, जो त्रयगुण से बने आकाश में व्यापक है, पर वह त्रयगुण से बना आकाश नहीं है, जो इन्द्रियों में रहता है, पर इन्द्रियों जैसा नहीं होता, बल्कि जो इन सबके परे और परमतत्व स्वरूप है, वही आत्मतत्व है॥ ६॥

जो मूलमाया (जड़ात्मिका मूल प्रकृति) के सब ओर विद्यमान होने के साथ उसमें भी स्थिर रूप से ओतप्रोत है, सज्जनों! उसके बारे में कहिये, कैसे कहा जाय ? वह मूल माया में भरा होने पर भी माया नहीं है, वह अव्यक्त के भी परे परम अव्यक्त कहलाता है। जो सबके परे और परमतत्व स्वरूप है, वही आत्मतत्व है॥ ७॥

ब्रह्मा, महाविष्णु, विश्वरूप, सामान्य विष्णु, शंकर, समस्त देव, दानव, मनुष्य, नाग और किन्नर जहाँ तक जो कुछ स्थावर और जंगम प्राणी हैं, वह (आत्मतत्व) सबमें रहते हुए भी उनके जैसा नहीं है। जो सबके परे और परमतत्व स्वरूप है, वही आत्मतत्व है॥ ८॥

जो मारने से मरता नहीं, काटने से कटता नहीं, सड़ाने से सड़ता नहीं और जलाने से जलता नहीं, जो किसी भी पदार्थ द्वारा कुछ भी सोखा नहीं जा सकता, जो खिसकाये जाने पर कुछ (स्वरुप) भी खिसकता नहीं, जो सबके परे और परमतत्व स्वरूप है, वही आत्मतत्व है॥ ९॥

जिसका जन्म नहीं होता, मृत्यु नहीं होती, जिसको बालपन, यौवन और बुढ़ापा नहीं आता, जिसे जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय; ये चारों अवस्थाएँ नहीं होती, जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णों में कुछ नहीं कहाता, जो इन सबके परे और परमतत्व स्वरूप है, वही आत्मतत्व है॥ १०॥

जो न कभी आता है, न जाता है, जो न बोलने वाला है और न सुननेवाला, जो न करनेवाला (कर्ता) कहा जाता है और न नहीं करनेवाला (अकर्ता), फिर भी जिसके बिना कुछ भी होता हो, ऐसा समझ में नहीं आता । सबके परे जो परमतत्व रूप है, वही आत्मा है॥११॥

जो न कभी निर्गुण है और न सगुण ही, जो न सत-असत् है और न मरणशील या अमर ही, जो सबको ढँकनेवाला है, पर जो किसी से ढँका

नहीं जा सकता, जो न विषयानंद लेने वाला (भोगी) है और न योग करने वाला (योगी) जो न भलाई चाहने वाला है और न बुराई चाहनेवाला। ऐसा जो सबके परे परमतत्व स्वरूप है, वही आत्मतत्व है॥१२॥

जो किसी त्रिपुटी (जैसे-ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय) में नहीं आता, जिसके लिए किसी सापेक्ष भाषा का प्रयोग नहीं किया जा सकता, जो ओंकार शब्दब्रह्म (आदिनाद) से भी श्रेष्ठ है, जो आहत और अनाहत दोनों प्रकार के शब्दों से भी परे है, ऐसा जो सभी के परे परमतत्व स्वरूप है, वही आत्मतत्व है॥१३॥

जो टेढ़े पदार्थों में व्यापक रहकर भी स्वयं टेढ़ा नहीं होता और सीधे पदार्थों में व्यापक रहकर भी सीधा नहीं होता, जो सजीवों में रहते हुए भी जीवित नहीं कहलाता और मृत शरीर में रहते हुए भी मृत नहीं कहलाता, ऐसा जो सबके परे परमतत्व स्वरूप है, वही आत्मतत्व है ॥ १४॥

जैसे आकाश से भरा हुआ घड़ा आकाश में फिरता है, उसी प्रकार आत्मतत्व से भरे सभी प्राणी आत्मतत्व में ही गमन करते हैं। जिसका आरंभ मध्य और अंत नहीं है, ऐसा कोई खाली स्थान नहीं है, जो उसको पूर्णरूप से अपने में रख (अँटा) सके, ऐसा जो सबके परे परमतत्व स्वरूप है, वही आत्मतत्व है॥ १५॥

जैसे घटाकाश, मठाकाश, पटाकाश आदि बहुत से आकाश कहते हैं, लेकिन (घट, मठादि आवरणों के कारण) आकाश टूटता नहीं, एक ही रहता है, वैसे ही असंख्य चर-अचर जीव की आत्मा एक ही है। वह कहीं बहुत घना और कहीं टूटकर (घटकर) बहुत कम हो जाता हो, ऐसा नहीं। सबके परे जो परमतत्व स्वरूप है, वही आत्मतत्व है॥१६॥

जब काल (समय) नहीं था, तब भी वह विद्यमान था। (वर्तमान में वह है और भविष्य में कभी) ऐसा कोई समय नहीं होगा, जबकि वह नहीं रहेगा, बल्कि एक दिन काल का विनाश अवश्य होगा, पर वह नहीं मिटेगा। इन गंभीर बातों को वही जान पाएगा, जिन्होंने सच्चा सद्गुरु पाया है। सबके परे जो परमतत्व स्वरूप है, वही आत्मतत्व है॥१७॥

वह ऐसा अगम है कि (मनुष्य) शरीर धारण करने वाले की बुद्धि भी उसे ग्रहण नहीं कर पाती; ऐसा संत वाणी कहती है। महर्षि मेँहीँ परमहंसजी

महाराज कहते हैं कि मैं उसका पूरा वर्णन कैसे करूँ ? अगर वर्णन करता हूँ तो मेरा वर्णन करना वैसा ही होगा, जैसा कंकड़ के व्यापारी द्वारा मणियों के गुण का बखान करना ॥१८॥

□□□□

(४३)

क्षेत्र[१] क्षर अक्षर के पार में, परमालौकिक[२] जेह[३] ।
मेँहीँ अन्तर वृत्ति[४] करिके, भजहु निशि दिन तेह[५] ॥१॥
युग[६] दृष्टि की एक तीक्ष्ण[७] नोक से, चीरि[८] तेजस[९] विन्दु ।
सुनो अन्दर नाद ही, लखो[१०] सूर्य तारे इन्दु[११] ॥२॥
विहंग[१२] मीनी[१३] चाल चलि ज्यों,सरित[१४] सों सरित समाहिं[१५] ।
त्यों नाद सों नादों में चलि, प्रभु पास भक्तन जाहिं ॥३॥
संतों का मेँहीँ[१६] मार्ग यह, 'मेँहीँ' सुनो दे कान ।
यहि परा भक्ति[१७] प्रसिद्ध मार्गहिं, धारु[१८] हिय[१९] धरि ध्यान[२०] ॥४॥

शब्दार्थ :

१.शरीर,२. अति विलक्षण, जो सांसारिक न हो, ३. जो, ४.चेतनवृत्ति, सुरत, ५.उसको,६.दोनों, ७.तेज,सूक्ष्म,८.चीरकर,भेदकर, ९. ज्योतिर्मय, १०. देखो, ११.चन्द्रमा, १२.पक्षी,१३. मछली की,१४.नदी,१५.समा जाती है, १६. सूक्ष्म, १७. श्रेष्ठभक्ति,१८. धारण करो, १९. हृदय, २०. ध्यान करके।

पद्यार्थ :

सभी शरीरों, अविनाशी और नाशवान पदार्थों के परे परम अलौकिक (अति विलक्षण) जो (परमात्मा) है, अपनी चेतन वृत्ति को सूक्ष्म और अन्तर्मुखी करके दिन-रात उसकी आराधना करो॥१॥ अपनी दोनों दृष्टिधारों से बनी तेज (सूक्ष्म) नोक से ज्योतिर्मय विन्दु को भेदकर सूर्य, तारे और चन्द्रमा को देखो तथा अन्तर्नाद भी सुनो॥२॥ जिस तरह एक नदी दूसरी नदी में समा जाती है, उसी तरह विहंग चाल (शून्य ध्यान-दृष्टियोग) और मीन चाल (सुरत शब्द-योग) द्वारा चलकर (नीचले मंडल के केन्द्रीय) शब्द के सहारे (ऊपरी मंडल के केन्द्रीय) शब्द को पकड़ते हुए भक्त

परमप्रभु परमात्मा के पास जाते हैं॥३॥ महर्षि मेँहीँ परमहंस जी महाराज कहते हैं कि ध्यान देकर सुनो, यह संतों का सूक्ष्म मार्ग है। इस श्रेष्ठ भक्ति के प्रसिद्ध मार्ग को चित्त स्थिर करके हृदय में धारण करो ॥४॥

□□□□

(४४)

अरिल

सन्तमते[१] की बात कहूँ साधक हित लागी ।
कहूँ अरिल पद[२] जोड़ि, जानि[३] करिहैं[४] बड़भागी[५] ॥
बातें हैं अनमोल[६] मोल[७] नहिं एक-एक की ।
अरे हाँ रे 'मेँहीँ' कहूँ जो चाहूँ कहन,
सन्त पद[८] सिर निज टेकी[९] ॥१॥
सतजन[१०] सेवन[११] करत, नित्य सत्य संगति करना ।
वचन अमिय[१२] दे ध्यान श्रवण[१३] करि चित में धरना ॥
मनन[१४] करत नहिं बोध[१५] होइ, तो पुनि[१६] समझीजै[१७] ।
अरे हाँ रे 'मेँहीँ' समझि बोध जो होइ,
रहनि[१८] ता सम[१९] करि लीजै ॥२॥
करि सत्संग गुरु खोज करिय, चुनिये गुरु सच्चा ।
बिनु सद्गुरु का ज्ञान-पंथ सब, कच्चहि कच्चा[२०] ॥
कुण्डलिया[२१] मैं कहूँ, सो सद्गुरु कर पहिचाना ।
अरे हाँ रे 'मेँहीँ' जौं प्रभु दया सों मिलैं,
सेवियै[२२] तजि[२३] अभिमाना ॥३॥

कुण्डलिया

मुक्ती मारग जानते साधन[२४] करते नित्त ॥
साधन करते नित्त सत्त चित[२५] जग में रहते ।
दिन-दिन अधिक विराग प्रेम सत्संग सों करते ॥
दृढ़ ज्ञान समुझाय बोध दे कुबुधि[२६] को हरते ।
संशय दूर बहाय सन्तमत स्थिर करते ॥

'मेँहीँ' ये गुण धर जोई[२७], गुरु सोई सत्चित्त ।
मुक्ती मारग जानते, साधन करते नित्त ॥

अरिल

सत्य सोहाता[२८] वचन कहिय, चोरी तजि दीजै ।
तजिय नशा व्यभिचार तथा हिंसा नहिं कीजै ॥
निर्मल मन सों ध्यान करिय, गुरु मत[२९] अनुसारा ।
अरे हाँ रे 'मेँहीँ' कहूँ सो गुरुमत ध्यान,
सुनो दे चित्त सम्हारा[३०] ॥४॥
धर[३१] गर[३२] मस्तक सीध[३३] साधि[३४], आसन आसीना[३५] ।
बैठि के चखु[३६] मुख मूनि[३७], इष्ट[३८] मानस जप[३९] ध्याना[४०] ॥
प्रेम नेम सों[४१] करत-करत, मन शुद्ध हो ।
अरे हाँ रे 'मेँहीँ' अब आगे को कहूँ,
सुनो दे चित्त सों ॥५॥
जहँ[४२]- जहँ मन भगि जाय[४३], ताहि[४४] तहँ-तहँ से[४५] तत्क्षण[४६] ।
फेरि फेरि ले आइ, लगाइय ध्येय[४७] में आपन ॥
ऐसहि करि प्रतिहार[४८], धारणा[४९] धारण करिके ।
अरे हाँ रे 'मेँहीँ' औरो आगे बढ़िय,
चढ़िय धर[५०] धारा धरिके[५१] ॥६॥
धर धर[५२] धर[५३] की धार[५४], सार[५५] अति चेतना[५६] ।
धर धर धर का खेल, जतन[५७] करि देखना ॥
धर में सुष्मन घाट[५८], दृष्टि ठहराइ[५९] के ।
अरे हाँ रे 'मेँहीँ' यहि घाटे चढ़ि जाव,
धराधर[६०] धाइ[६१] के ॥७॥
तजो पिण्ड चढ़ि जाव, ब्रह्माण्डहिं वीर हो ।
पेलो[६२] सुष्मन दृष्टि, सिस्त[६३] ज्यों तीर हो ॥

बिन्दु नाद अगुआइ, तुमहिं ले जायेंगे ।
अरे हाँ रे 'मेँहीँ' ज्योति मण्डल सह[६४] नाद,
की सैर[६५] दिखायेंगे ॥८॥

ज्योति मण्डल की सैर, झकाझक[६६] झाँकिये[६७] ।
तिल ढिग[६८] जुगनू जोति, टकाटक[६९] ताकिये[७०] ॥
होत बिज्जु[७१] उजियार[७२], नजर थिर ना रहै ।
अरे हाँ रे 'मेँहीँ' सुरत काँपती रहै,
ज्योति दृढ़ क्यों गहै ॥९॥

दृष्टि योग अभ्यास अतिहि, करतहि करत ।
कँपनी सहजहिं[७३] छुटै, प्रौढ़[७४] होवै सुरत ॥
तिल दरवाजा टुटै, नजर के जोर से ।
अरे हाँ रे 'मेँहीँ' लगे टकटकी खूब,
जोर बरजोर[७५] से ॥१०॥

तीनों बन्द[७६] लगाइ देखि, सुनि धरि ध्वनि धारा ।
चलिय शब्द में खिंचत, बजत जो विविध प्रकारा ॥
झिंगुर की झनकार, भँवर गुञ्जार[७७] हो ।
अरे हाँ रे 'मेँहीँ' घण्ट[७८] शङ्ख शहनाइ,
आदि ध्वनि धार हो ॥११॥

तारा सह ध्वनि धार, टेम[७९] दीपक बरे[८०] ।
खुले अजब आकाश, अजब[८१] चाँदनी भरे ॥
पूर अचरजी चन्द, सहित ध्वनि कस लगे ।
अरे हाँ रे 'मेँहीँ' जानै सोई धीर[८२],
वीर साधन पगे[८३] ॥१२॥

साधन में पगि जाइ, अतिहि गम्भीर हो ।
या तन सुधि[८४] नहिं रहे, धीर वर वीर[८५] सो ॥
साँझ भोर दिन रैन, कछू जानै नहीं ।
अरे हाँ रे 'मेँहीँ' बाहर जड़वत्[८६] रहै,
माहिं चेतन[८७] सही ॥१३॥

जा सम्मुख या सूर्य्य, अमित[८८] अन्धार है ।
ऐसो सूर्य्य महान, चन्द हद[८९] पार है ॥
होत नाद अति घोर[९०], शोर[९१] को को कहै ।
अरे हाँ रे 'मेँहीँ' महा नगाड़ा बजै,
घनहु[९२] गरजत रहै ॥१४॥

आगे शून्य समाधि, नाद ही नाद की ।
लहै[९३] सन्त का दास, जाहि सुधि आदि की ॥
मीठी मुरली सुनै, सुरत के कान से ।
अरे हाँ रे 'मेँहीँ' बड़ा कौतुहल[९४] होइ,
ध्वनिन के ध्यान से ॥१५॥

सद्गुरु भेदी[९५] मिलै सैन[९६], ध्वनि ध्यान बतावै ।
अनुपम बदले नाहिं, शब्द सो सार कहावै ॥
सोहू[९७] ध्वनि हो लीन, अध्वनि में जाय के ।
अरे हाँ रे 'मेँहीँ' अध्वनि[९८] अशब्द अनाम,
सन्त कहैं गाय के ॥१६॥

सार शब्द ध्वनि स¯, सुरत हो अकह[९९] में लीनी ।
अध्वनि अशब्द अनाम, परम पद गति की भीनी[१००] ॥
द्वैत द्वन्द्व सों रहित, सो प्रभु पद पाइके ।
अरे हाँ रे 'मेँहीँ' सुरत न लौटइ,
बहुरि[१०१] न जन्मइ आइके ॥१७॥

शब्दार्थ :

१. संतों का मत, २. सोलह मात्राओं का एक छन्द जिसके अंत में दो लघु अथवा एक यगण होता है, परन्तु इसमें जगण का निषेध है। भिखारी दास ने इसके अन्त में मगन माना है। ३.जानने पर,४.बनाएगा, करेगा, ५. बहुत भाग्यवान, ६. अमूल्य, बहुमूल्य, ७.कीमत, ८.चरण, ९.अपना सिर टेककर, १०. सज्जन, संतजन, ११. सेवा,१२.अमृत,१३.सुनना,१४.चिंतन, विचार, १५.ज्ञान,१६.फिर से,१७.समझिए,१८. आचरण, १९.उस जैसा,२०.अधूरा,

२१. एक मायिक छन्द जो एक दोहे के बाद एक रोला छन्द रखने से बनता है। २२. सेवा कीजिए,२३.त्यागकर,२४.साधना,ध्यानाभ्यास,२५. सच्चे (पवित्र) हृदय, २६. बुरे ज्ञान, दोषपूर्ण बुद्धि, २७. जो धारण करते हैं, २८. प्रिय, २९. गुरु के विचार, ३०. एकाग्र करके, ३१. धड़, शरीर का स्थूल मध्य भाग जिसके अन्तर्गत छाती, पीठ और पेट होते हैं। कमर के ऊपर और गर्दन के नीचे का भाग,३२.गर्दन,३३. सीधा,३४.स्थिर रखकर,३५. बैठकर, ३६. आँख, ३७. बंदकर,३८. उपास्य देव, ३९.गुरु प्रदत्त मंत्र का मन-ही-मन आवृति करना, ४०.मानस ध्यान—आँखें बंदकर इष्ट-रूप को मानस पटल पर उतारना, ४१.नियम पूर्वक,४२. जहाँ,४३.भाग जाय,४४.उसे, ४५.वहाँ-वहाँ से,४६.उसी समय,४७.लक्ष्य, उद्देश्य, ४८. प्रत्याहार—मन को बार-बार लौटाकर ध्येय में लगाने की क्रिया,४९. मन का ध्येय पर अल्प टिकाव, ५०.अधर, ५१.पकड़कर,५२.धरिये-धरिये, पकड़िये-पकड़िये, ५३. अधर, ५४.धारा, ५५.सार धारा, ५६. सचेत होकर, ५७. यत्न, युक्ति, ५८.दशमा द्वार, ५९.स्थिर करके,६०.शीघ्रतापूर्वक,६१.दौड़कर, वेग पूर्वक, ६२. प्रवेश कराओ, ६३. लक्ष्य,६४.साथ ही, ६५.भ्रमण, ६६.चमकीला प्रकाश, ६७.देखिये, ६८.नजदीक, ६९.एकटक, ७०. देखिये, ७१. बिजली, ७२.उजाला,७३.स्वाभाविक रूप से, ७४.स्थिर,७५.बलपूर्वक, ७६.आँख, कान और मुँह बंद, ७७. भनभनाहट, ७८. घंटा, ७९. लौ, ८०. जलती है, ८१. विलक्षण, अद्भुत, ८२. धैर्यवान, ८३. निमग्न होता है, डूबता है, ८४. याद, ज्ञान, ८५. श्रेष्ठ वीर, ८६. जड़ के समान निश्चल, ८७. सचेत, ८८. अत्यन्त, ८९. सीमा, ९०. ऊँचे स्वर में, बहुत सघन,९१. तेज ध्वनि, ९२.मेघ,९३.प्राप्त करता है,९४.आश्चर्य,९५. युक्ति जाननेवाले, ९६.संकेत, ९७. वह भी, ९८. शब्दातीत पद,९९.अकथनीय,१००.भिन्न, १०१. फिर से।

अरिल

पद्यार्थ :

साधकों के कल्याण के लिए संतमत की बातें कहता हूँ। ये बातें अरिल पदों की रचना करके कहता हूँ, जिसे (ठीक-ठीक) जान लेने पर (ये बातें साधकों को) बहुत भाग्यवान बनाएगी। ये बातें अनमोल (बहुमूल्य) हैं, एक-एक की कीमत नहीं लगाई जा सकती। महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि मैं संतों के चरणों में अपना सिर टेककर वे बातें कहता हूँ, जो मैं कहना चाह रहा हूँ॥१॥

सज्जनों (संतजनों) की सेवा करते हुए प्रतिदिन उनके साथ सत्संग कीजिए। उनके अमृतमय वचनों को ध्यान देकर सुनिए और मन में धारण कीजिए। उसे मनन (चिंतन) करने पर यदि वह समझ में न आवे, तो उनसे फिर समझ लीजिए। महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि समझ लेने पर जो ज्ञान हो, उसके अनुकूल अपना आचरण बनाइए॥२॥

सत्संग (में ज्ञान प्राप्त) करके गुरु की खोज कीजिए। इस तरह सच्चे गुरु को चुन लीजिए। बिना सद्गुरु के आत्म ज्ञान प्राप्त करने के सभी मार्ग अधूरे-ही-अधूरे हैं। महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि मैं कुण्डलिया छन्द में सद्गुरु की पहचान के लिये कहता हूँ। यदि परम प्रभु परमात्मा की दया से ऐसे सद्गुरु मिल जाएँ, तो अभिमान छोड़कर उनकी सेवा कीजिए॥३॥

कुण्डलिया

जो मोक्ष में जाने का मार्ग जानते हों, प्रतिदिन साधना (ध्यानाभ्यास) करते हों, ऐसा करते हुए संसार में सच्चे (पवित्र) हृदय से रहते हों, जिनका वैराग्य दिनोंदिन अधिकाधिक बढ़ता जाता हो, जो सत्संग से प्रेम करते हों, ठोस सद्ज्ञान समझाकर वा प्रदान कर दोषपूर्ण बुद्धि का हरण करते हों, सभी शंकाओं का समाधान कर संतमत का ज्ञान हमारे अंदर स्थिर करते हों, महर्षि मेँहीँ परमहंस जी महाराज कहते हैं कि जो इन (उपर्युक्त) गुणों को धारण किए हुए हों, वे ही सच्चे (पवित्र) हृदय वाले गुरु हैं।

अरिल

सत्य और प्रिय वचन बोलिये; चोरी, नशा-सेवन और व्यभिचार को त्याग दीजिए तथा हिंसा नहीं कीजिए। गुरु के विचारानुसार (आज्ञानुसार) पवित्र मन से ध्यान कीजिए। महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि गुरु के विचार के अनुकूल ध्यानाभ्यास की बात बतलाता हूँ, चित्त को एकाग्र करके सुनिए॥४॥

धड़, गर्दन और सिर को सीधा स्थिर करके (पवित्र) आसन पर बैठिए। इस तरह बैठने के बाद आँख और मुँह बंदकर अपने इष्ट (उपास्यदेव) के नाम का मानस जप और उनके रूप का मानस ध्यान कीजिए। प्रेम और

नियमपूर्वक ऐसा करते-करते मन शुद्ध हो जाता है। महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि अब मैं आगे की बात कहता हूँ, चित्त देकर सुनिए ॥५॥

मन जिधर-जिधर भाग जाय उसको उसी क्षण उधर-उधर से लौटा-लौटाकर ले आइये और अपने लक्ष्य पर लगाइये। इस प्रकार प्रत्याहार (मन को बार-बार लौटाने की क्रिया) करके धारणा (लक्ष्य पर मन का अल्प टिकाव) धारण कीजिए। महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि अपने अंदर की अधर-धार को पकड़कर ऊपर चढ़िये, फिर और भी आगे बढ़िए ॥६॥

अधर की सार धार को अत्यंत सचेत होकर ग्रहण कीजिए और वहाँ की (प्रकाशमयी) लीलाओं को यत्नपूर्वक देखिए। शरीर में सुषुम्ना घाट है, वहाँ दोनों दृष्टि-धाराओं को स्थिर करके इसी घाट होकर शीघ्रतापूर्वक वेग से ऊपर चढ़ जाइए,ऐसा महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं॥ ७॥

इस तरह साहसी बनकर पिंड को छोड़ ब्रह्माण्ड में चढ़ जाइए। इसके लिये सुषुम्ना में दृष्टि को इस तरह प्रवेश कराइए जैसे वाण अपने लक्ष्य को वेधता है। महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि वहाँ बिन्दु और नाद आगे आकर आपको ऊपर की ओर ले जायेंगे और ज्योति मंडल के साथ शब्दमंडल का भ्रमण कराएँगे ॥८॥

ज्योति मंडल के भ्रमण में चमकीले प्रकाश को देखिए। ज्योर्तिमय विन्दु के पास जुगनू का प्रकाश होता है, उसे एकटक देखिए। वहाँ बिजली का प्रकाश भी होता है, जिसपर दृष्टि स्थिर नहीं रहती। महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि जब तक सुरत काँपती रहेगी दृष्टि उस प्रकाश को दृढ़तापूर्वक (स्थिरतापूर्वक) कैसे पकड़ेगी ॥ ९॥

दृष्टियोग का अत्यधिक अभ्यास करते-करते सुरत का काँपना स्वाभाविक रूप से छूट जाएगा और वह पूरी तरह स्थिर हो जाएगी। महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि अत्यधिक बलपूर्वक टकटकी लगाकर देखने पर दृष्टि-शक्ति के प्रभाव से तिलद्वार (विन्दु-द्वार) टूट जाएगा (खुल जाएगा) ॥१०॥

आँख, कान और मुँह; इन तीनों को बंद करके ज्योतिर्मय विन्दु को देखते हुए ध्वनि की धारा को सुनकर ग्रहण कीजिए और विभिन्न प्रकार के जो शब्द होते हैं, उससे खिंचते हुए एक शब्द से दूसरे शब्द में

चलिए। महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि वहाँ झिंगुर की झंकार, भौंरे की गुंजार तथा घंटे, शंख, शहनाई आदि वाद्य यंत्रों की सी ध्वनि-धार निकलती है ॥११॥

तारे दीखने के साथ ध्वनियों की धार प्रकट होती है, दीपक की लौ जलती है, अद्भुत चांदनी से पूर्ण दिव्य आकाश प्रत्यक्ष होता है। महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि आश्चर्यमय पूर्ण चंद्रमा दिखाई पड़ने के साथ-साथ, वहाँ होने वाली ध्वनियाँ कैसी लगती है, यह कोई धैर्यवान और साहसी जानता है, जो अन्तस्साधना में निमग्न होता है ॥१२॥

अति गंभीरतापूर्वक (शांत होकर) जो साधना में डूब जाता है, उसे अपने स्थूल शरीर का ज्ञान नहीं रहता। ऐसा साधक धैर्यवान और अति साहसी है। महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि ऐसे (अन्तर्मुख) साधक को शाम-सुबह या दिन-रात का कुछ ज्ञान नहीं रहता है। वह बाहर से तो जड़ पदार्थ की तरह (निश्चेष्ट) रहता है, पर अंदर से सचेत रहता है ॥१३॥

जिसके सामने यह बाहर का सूर्य अत्यन्त अंधकारवत् है, ऐसा महान आंतरिक सूर्य चन्द्रमंडल के पार (त्रिकुटी में) अवस्थित है। महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि अंदर में ऊँचे स्वर में जो अनेक ध्वनियाँ होती हैं, उसके बारे में कौन वर्णन कर सकता है ? वहाँ महानगाड़ा बजने की और मेघ-गर्जन की आवाज होती रहती है ॥१४॥

आगे जहाँ शब्द-ही-शब्द है, वहाँ कोई ऐसा संत का दास शून्य-समाधि प्राप्त करता है, जिसे अपने आदि-घर प्राप्ति की अभिलाषा होती है। महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि साधक सुरत के कान से मुरली (बंशी) की सुरीली ध्वनि सुनता है। इस प्रकार की ध्वनियों के ध्यान से बड़ा कुतूहल होता है (यानी उत्तरोत्तर सरस ध्वनियों के सुनने की उत्कण्ठा होती है।)

जब युक्ति जानने वाले सद्गुरु मिलते हैं, तो वे नाद ध्यान (शब्द योग) करने का संकेत बतलाते हैं। जो उपमा-रहित है और कभी बदलता नहीं, वह सार-शब्द कहलाता है। वह सार-शब्द भी अध्वनि (निःशब्द) में जाकर विलीन हो जाता है। महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि उस अध्वनि को संत लोग (अपने पद्यों में) अशब्द, अनाम आदि कहकर गाते हैं॥१६॥

सार शब्द के संग चलकर सुरत अकथनीय लोक (परमपद) में लीन हो जाती है। यह परमपद ही अध्वनि, अशब्द, अनाम आदि कहा जाता है। इसकी गति बिल्कुल भिन्न है। महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि द्वन्द्व और द्वैत से रहित उस परमप्रभु परमात्मा के पद को पाकर सुरत (जीव) पुनः संसार में लौटकर नहीं आती अर्थात् फिर उसे संसार में आकर जन्म नहीं लेना पड़ता है ॥१७॥

□□□□

(४५)

मंगल

पाँच नौबत[१] बिरतन्त[२] कहौं सुनि लीजिये ।
भेदी भक्त विचारि सुरत रत[३] कीजिये ॥१॥
स्थूल सूक्ष्म सन्धि बिन्दु पर परथम[४] बाजई ।
दुसर कारण सूक्ष्म सन्धि पर नौबत गाजई[५] ॥२॥
जड़ प्रकृति अरु विकृति सन्धि जोइ जानिये ।
महाकारण अरु कारण सन्धि सोइ मानिये ॥३॥
तिसरि नौबत यहि सन्धि पर सब छन बाजती ।
महाकारण कैवल्य की सन्धि विराजती[६] ॥४॥
शुद्ध चेतन जड़ प्रकृति सन्धि यहि है सही ।
यहँ की धुनि को चौथि नौबत हम गुनि[७] कही ॥५॥
निर्मल चेतन केन्द्र और ऊपर अहै ।
परा प्रकृति कर[८] केन्द्र सोइ अस बुधि कहै ॥६॥
अत्यन्त अचरज[९] अनुपम यहँ से बाजती ।
पंचम नौबत 'मेँहीँ' संसृति बिसरावती[१०] ॥७॥

शब्दार्थ :

१. पांच केन्द्रीय शब्द रूप आंतरिक मधुर ध्वनि,२.वृतान्त, वर्णन, ३.लीन, ४. प्रथम, ५.गरजती है, ६.विद्यमान है,७. विचारकर, ८. का,९. आश्चर्य, १०. भुला देती है, छुड़ा देती है ।

पद्यार्थ :

पाँच केन्द्रीय शब्द रूप आंतरिक मधुर ध्वनि (नौबत) का वृतान्त (वर्णन) कहता हूँ,इसे सुन लीजिए । सुरत शब्द-योग का भेद जाननेवाले, ऐ भक्तजन! इसे विचारकर इन ध्वनियों में अपनी सुरत को लीन कीजिए ॥१॥ स्थूल और सूक्ष्म मंडल के मिलन बिन्दु पर प्रथम नौबत केन्द्रीय ध्वनि बजती है तथा कारण और सूक्ष्म मंडल के मिलन बिन्दु पर दूसरी नौबत केन्द्रीय ध्वनि गरजती है ॥२॥ साम्यावस्था-धारिणी जड़ात्मिका मूल प्रकृति और प्रथम विकृति मंडल की जो संधि है, उसे ही महाकारण और कारण की संधि माननी चाहिए ॥३॥ तीसरी नौबत (केन्द्रीय ध्वनि) इसी संधि पर प्रति-क्षण (सतत्) बजती रहती है । (अपने अंदर) महाकारण और कैवल्य मंडल की संधि भी विद्यमान है ॥ ४॥ वस्तुतः यही (जड़ विहीन) शुद्ध चेतन मंडल और जड़ प्रकृति की संधि है। यहाँ होने वाली ध्वनि को मैं विचार करके चौथी नौबत कहा हूँ ॥ ५॥ निर्मल चेतन मंडल का केन्द्र (शब्दातीत परमपद) इसके ठीक ऊपर है। वही परा प्रकृति मंडल का केन्द्र है, ऐसा मेरी बुद्धि कहती है ॥ ६॥ महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि यहाँ अत्यन्त आश्चर्यमय, उपमा-रहित पाँचवी नौबत (केन्द्रीय ध्वनि) बजती है, जिसमें सुरत लीन करनेवाले साधक का आवागमन वह छुड़ा देती है ॥७॥

टिप्पणी :

नौबत = वैभव या मंगल सूचक वाद्य, विशेषतः शहनाई और नगाड़ा जो देव मंदिरों या बड़े आदमियों के द्वार पर बजता है। अन्तः साधना के साधक को साधना काल में अपने अंदर पाँच मंडलों के पाँच केन्द्रीय शब्द मिलते हैं। संतों ने उन पाँच केन्द्रों को पाँच नौबत की संज्ञा दी है,वे हैं-कैवल्य, महाकारण, कारण सूक्ष्म और स्थूल'।

कैवल्य मंडल का केन्द्र स्वयं परम प्रभु परमात्मा है। महाकारण का केन्द्र-कैवल्य और महाकारण की सन्धि है। कारण का केन्द्र-महाकारण और कारण की सन्धि है। सूक्ष्म का केन्द्र कारण और सूक्ष्म की सन्धि है। स्थूल का केन्द्र-सूक्ष्म और स्थूल की सन्धि है ।

□□□□

(४६)

सृष्टि के पाँच हैं केन्द्रन सज्जन जानिये ।
सब से होते नाद हैं नौबत मानिये ॥१॥
यहि विधि[१] नौबत पाँच बजै सब राग में ।
परखहिं[२] हरषहिं[३] धसहिं[४] जो अन्तर भाग में ॥२॥
अपरा परा द्वै प्रकृति दुहुन केन्द्र दो अहैं[५] ।
कारण सूक्ष्म स्थूल के केन्द्रन तीन हैं ॥३॥
निर्मल चेतन परा कहिय केवल सोई ।
महाकारण अव्यक्त जड़ात्मक प्रकृति जोई ॥४॥
विकृति प्रथम जो रूप ताहि कारण कहैं ।
'मेँहीँ' परखि तू लेय[६] अपन घट ही महैं[७] ॥५॥

शब्दार्थ :

१.इस प्रकार,२.पहचानते हैं,३.आनंदित होते हैं,४. प्रवेश करते हैं, ५. हैं, ६. लीजिये, ७. में।

पद्यार्थ :

हे सज्जनो! सृष्टि के (पाँच मंडलों के) पाँच केन्द्र हैं, इन्हें जानिए । इन पाँचों केन्द्रों से (अलग-अलग तरह की पाँच) ध्वनियाँ होती हैं, जिन्हें नौबत कहना चाहिए।।१।। इस भांति सभी प्रकार के रागों में पांच नौबतें बजती (ध्वनित होती) रहती हैं । जो साधक अपने शरीर के आंतरिक भाग में प्रवेश करते हैं, वे उन ध्वनियों को पहचानकर (सुरत द्वारा श्रवणकर) आनंदित होते हैं ।।२।। अपरा (जड़) प्रकृति और परा (चेतन) प्रकृति दोनों ही के दो केन्द्र हैं। इसीप्रकार कारण, सूक्ष्म और स्थूल; इन तीन मंडलों के तीन केन्द्र हैं ।।३।। मात्र निर्मल चेतन मंडल (कैवल्य मंडल) को ही परा प्रकृति मंडल कहना चाहिए, जो जड़ात्मिका मूलप्रकृति है, वही महाकारण और अव्यक्त कहलाती है ।।४।। महाकारण मंडल की विकृति का जो प्रथम रूप है, उसी को कारण कहा जाता है। महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि आप अपने शरीर में ही इन्हें (पाँच मंडलों और उनके पाँच केन्द्रीय शब्दों को) पहचान लीजिए।।५।।

□□□□

(४७)

उपदेश (चौपाई)

सुनिये सकल[१] जगत के वासी ।
यह जग नश्वर[२] सकल विनाशी ॥१॥
यह जग धूम धाम[३] रे भाई ।
यह जग जानो छली[४] महाई[५] ॥२॥
सबहिं कहा यहि अगमापाई[६] ।
तुम पकड़ा यहि जानि सहाई[७] ॥३॥
मृग तृष्णा जल सम सुख याकी[८] ।
तुम मृग ललचहु देखि एकाकी[९] ॥४॥
याते भव दुख सहहु महाई ।
बिनु सतगुरु कहो कौन सहाई ॥५॥
यहि सराइ[१०] महँ निज नहिं कोई ।
सुत पितु मातु नारि किन होई[११] ॥६॥
भाई बन्धु कुटुम परिवारा ।
राजा रैयत[१२] सकल पसारा[१३] ॥७॥
सातो स्वर्गहु* केर निवासी ।
दिव्य देव सब अमित विलासी[१४] ॥८॥
कोई न स्थिर सबहिं बटोही[१५] ।
सत्य शान्ति एक स्थिर वोही ॥९॥
शान्ति स्वरूप सर्वेश्वर जानो ।
शब्दातीत कहि सन्त बखानो[१६] ॥१०॥
क्षर अक्षर के पार हैं येही ।
सगुण अगुण पर सकल सनेही[१७] ॥११॥
अलख अगम अरु नाम अनामा ।
अनिर्वाच्य[१८] सब पर सुखधामा ॥१२॥

ये सब मन पर गुण इनके ही।
पड़े महा दुख संशय जेही ॥१३॥
यहि तुम्हरा निज प्रभु रे भाई।
जहाँ तहाँ तब[१९] सदा सहाई ॥१४॥
इन्ह की भक्ति करो मन लाई।
भक्ति भेद सतगुरु से पाई ॥१५॥
सतगुरु इन्ह में अन्तर नाहीं।
अस[२०] प्रतीत[२१] धरि रहु गुरु पाहीं[२२] ॥१६॥
गुरु सेवा गुरु पूजा करना।
अनट बनट[२३] कछु मन नहिं धरना ॥१७॥
अनासक्त[२४] जग में रहो भाई।
दमन[२५] करो इन्द्रिन दुखदाई ॥१८॥
काम क्रोध मद मोह को त्यागो।
तृष्णा तजि गुरु-भक्ति में लागो ॥१९॥
मन कर सकल कपट अभिमाना।
राग द्वेष अवगुण विधि नाना ॥२०॥
रस-रस तजो तबहिं कल्याणा।
धरि गुरु मत तजि मन-मत खाना[२६] ॥२१॥
पर-त्रिय[२७] झूठ नशा अरु हिंसा।
चोरी लेकर पाँच गरिंसा[२८] ॥२२॥
तजो सकल यह तुम्हरो घाती[२९]।
भव-बन्धन कर जबर[३०] संघाती[३१] ॥२३॥
दारु गाँजा भाँग अफीमा।
ताड़ी चण्डू मदक कोकीना ॥२४॥
सहित तम्बाकू नशा हैं जितने।
तजन योग्य तज डारो[३२] तितने[३३] ॥२५॥

मांस मछलिया भोजन त्यागो।
सतगुण[३४] खान पान में पागो[३५] ॥२६॥
खान पान को प्रथम सम्हारो।
तब रस-रस[३६] सब अवगुण मारो ॥२७॥
नित सतसंगति करो बनाई।
अन्तर बाहर द्वै[३७] विधि भाई ॥२८॥
धर्म कथा बाहर सत्संगा।
अन्तर सत्संग ध्यान अभंगा[३८] ॥२९॥
नैनन मूँदि ध्यान को साधन।
करो होइ दृढ़ बैठि सुखासन[३९] ॥३०॥
मानस नाम जाप गुरु केरा[४०]।
मानस रूप ध्यान उन्हि केरा ॥३१॥
यहि अवलम्ब[४१] ध्यान कछु होई।
पुनः दृष्टि बल कीजै सोई ॥३२॥
सुखमन बिन्दु को धरो दृष्टि से।
सुरत छुड़ाओ पिण्ड सृष्टि से ॥३३॥
धर कर बिन्दु सुनो अनहद ध्वनि।
विविध भाँति की होती पुनि पुनि[४२] ॥३४॥
ध्वनि सुनि चढ़ती सूरति जाई।
अन्तर पट[४३] टूटै दुखदाई ॥३५॥
छाड़ि पिण्ड तम देश[४४] महाई।
ज्योति देश[४५] ब्रह्माण्ड में जाई ॥३६॥
ध्वनि धरि याहू[४६] पार चढ़ाई।
सुरत करै अब सुनै अघाई[४७] ॥३७॥
राम नाम धुन सतधुन सारा।
सार शब्द जेहि सन्त पुकारा ॥३८॥

सो ध्वनि निर्गुण निर्मल चेतन ।
सुरत गहो तजि चलो अचेतन[४८] ॥३९॥
यहु ध्वनि लीन अध्वनि में होई ।
निर्गुण पद के आगे सोई ॥४०॥
मण्डल शब्द केर छुटि जाई ।
अधुन अशब्द में जाइ समाई ॥४१॥
अधुन अशब्द सर्वेश्वर कहिये ।
शान्ति स्वरूप याहि को लहिये[४९] ॥४२॥
अस गति होय सो सन्त कहावै ।
जीवन्मुक्त सो जगहिं चेतावै[५०] ॥४३॥
सन्तमता कर भेद रे भाई ।
गाइ गाइ दीन्हा समुझाई ॥४४॥
जो जानै सो करै अभ्यासा ।
सत चित[५१] करि करै जग में वासा ॥४५॥
विरति[५२] पन्थ महँ बढ़े सदाई ।
सत्संग सों करै प्रीति महाई ॥४६॥
तोहि बोधे[५३] दृढ़ ज्ञान बताई ।
सब संशय तब देइ छोड़ाई ॥४७॥
ताको मानो गुरु सप्रीती[५४] ।
सेवो[५५] ताहि संत की नीती[५६] ॥४८॥
गुरु से कपट कछू नहिं राखो ।
उनके प्रेम अमिय[५७] को चाखो ॥४९॥
मीठी बोल बोलियो[५८] उनसे ।
अहंकार से सब कछु बिनसे[५९] ॥५०॥
सो उनसे कभुँ[६०] करियो नाहीं ।
नहिं तो रहिहौ भव ही माहीं ॥५१॥

शब्दार्थ :

१. समस्त, सम्पूर्ण, २.नाशवान, ३.धुएँ का महल, ४. छलने वाला, भ्रम में डालनेवाला, ५. महा, अत्यन्त, ६.क्षणभंगुर, नाशवान, ७.सहायक, ८. इसकी, ९.अकेला, १०. धर्मशाला, ११. किसकी हुई है, १२. प्रजा, १३. फैलाव, १४.भोगों में डूबा रहनेवाला, १५. पथिक, १६.वर्णन करते हैं, १७. प्रेमी, १८.अवर्णनीय, १९.तुम्हारा, २०.ऐसा, २१. विश्वास, २२.पास, सान्निध्य में, २३.अनाप-शनाप, अनावश्यक बातें, २४.आसक्ति-रहित, २५. रोकना, दबाना, २६.मनमुखी बातों का खजाना, २७.परायी स्त्री, २८.महापाप, २९.घातक, हानिकारक, ३०.बलवान, ३१.समूह, ३२.डालो, ३३.उन सबको, ३४. सात्विक गुण, दैवीय गुण, ३५. लगो, संलग्न होओ, ३६.धीरे-धीरे, ३७. दो, ३८.न टूटनेवाला, ३९.धड़, गर्दन और सिर को एक सीध में करके सुखपूर्वक बैठे जाने योग्य आसन, ४०. का, ४१. सहायता, ४२. फिर-फिर, बारंबार, ४३. अंदर के आवरण, ४४. अंधकार मंडल, ४५.प्रकाश मंडल, ४६. इसके, ४७. तृप्त होकर, ४८.जड़ात्मक मंडल, ४९. प्राप्त कीजिए, ५०. सचेत करते हैं, जगाते हैं, ५१.पवित्र हृदय, ५२.वैराग्य, ५३. ज्ञान दे, ज्ञानवर्द्धन करे, ५४.प्रेम सहित, ५५.सेवा करो, ५६.भावना करके, ५७.अमृत, ५८.बोलिए, बोलो, ५९. विनष्ट होता है, ६०.कभी भी ।

पद्यार्थ :

हे समस्त संसार वासियो! सुनो, यह संसार नाशवान है, सब कुछ विनष्ट होने वाला है॥ १॥ हे भाई! यह संसार धुएँ के महल की तरह है। इस संसार को महा छली (भ्रम में डालनेवाला) जानना चाहिए ॥२॥ सभी (विचारवान लोगों) ने इसे क्षणभंगुर, नाशवान कहा है, किन्तु तुम इसे सत्-सहायक जानकर पकड़े हुए हो॥३॥ संसार का सुख मृगतृष्णा के जल के समान (झूठा) है। तुम इसे देखकर अकेला मृग की तरह ललचते (उसे पाने के लिए विकल होते) हो ॥४॥ इसीलिए जन्म-मरण रूप महान दुःख सहते हो। कहो, सद्गुरु के अतिरिक्त तुम्हारा सच्चा सहायक कौन हो सकता है? (॥ ५॥) संसार रूपी इस धर्मशाला में तुम्हारा अपना कोई नहीं है। पुत्र, पिता, माता और पत्नी आदि किसकी हुई है? (॥६॥) भाई, बंधु, संबंधी,

* सात स्वर्ग — पुराणानुसार भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपः लोक तथा ब्रह्मलोक ।

परिवार के लोग, राजा और प्रजा आदि सभी संबंध भ्रम के फैलाव हैं॥७॥ सातों स्वर्गों में निवास करनेवाले सभी दिव्य देवतागण भोगों में अत्यन्त डूबे रहनेवाले हैं॥८॥ यहाँ कोई स्थिर नहीं है, सबके सब पथिक (आने-जाने वाले) हैं । सत्य और शांति-स्वरूप परमात्मा ही एक मात्र स्थिर है॥९॥ परमात्मा को शांति-स्वरूप जानना चाहिए। उन्हें संत लोग शब्दातीत कहकर वर्णन करते हैं ॥१०॥ परमात्मा ही सभी नाशवान-अविनाशी और सगुण-निर्गुण के परे हैं तथा सभी जीवों से प्रेम करने वाले हैं॥११॥ वे नहीं देखे जाने वाले और बुद्धि से परे हैं। उनका नाम अनाम (अर्थात् शब्दातीत या निःशब्द) है। वे अवर्णनीय, सबसे श्रेष्ठ और सुखों के घर हैं॥१२॥ वे सभी के मन से परे हैं, परन्तु त्रयगुण इनके अधीन है। जिसे (इनके संबंध में) संशय रहता है, वह (जन्म-मरण के) महादुःख में पड़ता है॥१३॥ हे भाई! परमात्मा ही तुम्हारे अपने स्वामी हैं, जो सभी स्थानों पर सदा तुम्हारी सहायता करते हैं॥१४॥ भक्ति करने की युक्ति सद्गुरु से प्राप्त करके तुम मन लगाकर इनकी भक्ति करो॥१५॥ सद्गुरु और परमात्मा में कोई अंतर नहीं है, ऐसा विश्वास करके गुरु के सान्निध्य में रहो॥१६॥ कुछ भी अनावश्यक बातों को मन में न लाकर गुरु की सेवा और भक्ति (आराधना) करो ॥१७॥ हे भाई! इस संसार में आसक्ति-रहित होकर रहो और दुःखदायिनी इन्द्रियों का दमन करो (अर्थात् उन्हें विषयों में जाने से रोको)॥१८॥ काम, क्रोध, अहंकार, मोह और तृष्णा (लालच) को छोड़कर गुरु की भक्ति में लग जाओ॥१९॥ मन के सब कपट, अभिमान, राग- द्वेष आदि अनेक प्रकार के अवगुणों को धीरे-धीरे त्याग दो, तभी तुम्हारा कल्याण होगा । तुम स्वेच्छाचारी बनना छोड़कर गुरु-आज्ञाकारी बनो अर्थात् गुरु के विचारों (उपदेशों) को हृदय में धारण करो॥२०-२१॥ परायी स्त्री से प्रेम करना, झूठ बोलना, नशा सेवन, हिंसा करना और चोरी करना; इन पाँच महापापों का परित्याग करो। ये सभी तुम्हारे घातक (हानि पहुँचाने वाले) हैं। संसार के बंधनों में डालने वाले ये सभी बलवान समूह हैं ॥२२-२३॥ दारू,गाँजा, भाँग, अफीम, ताड़ी, चण्डू, मदक, कोकीन और तम्बाकू सहित जितने त्यागने योग्य नशीले पदार्थ हैं, उन सबको त्याग दो॥२४-२५॥ माँस-मछली का भोजन त्याग कर सतोगुणी (पवित्र) खान-पान में लगो॥२६॥ सबसे पहले अपने खान-पान को सुधारो, तब धीरे-धीरे अन्य सभी अवगुणों को दूर करो ॥२७॥ प्रतिदिन अंदर और बाहर दो प्रकार से अच्छी तरह सत्संग किया करो॥२८॥ धर्म के विषय में कहना-सुनना बाहरी सत्संग है और अभंग ध्यान (सार-शब्द

का ध्यान) आंतरिक सत्संग है॥२९॥ सुखासन में स्थिरतापूर्वक बैठकर आँखें बंद करके ध्यान की साधना करो॥३०॥ गुरुनाम का मानस जप (मन-ही-मन जप) करो और उन्हीं के स्थूल रूप का मानस ध्यान (मानस पटल पर उनके रूप को स्थिर कर उसका ध्यान) करो।॥३१॥ इन दोनों क्रियाओं की सहायता से ध्यान (एकाग्रता) में कुछ प्रगति होगी। फिर दृष्टि की शक्ति से ध्यान (दृष्टियोग की क्रिया) करो॥३२॥ दृष्टियोग के द्वारा सुषुम्ना में ज्योतिर्मय बिन्दु को ग्रहण करो और अपनी सुरत को पिंड (स्थूल शरीर और स्थूल जगत) से अलग कर लो॥३३॥ ज्योतिर्मय बिन्दु को ग्रहणकर अंदर में होने वाली विविध प्रकार की अनहद ध्वनियों को सुनो॥३४॥ ध्वनियों को सुनती हुई सुरत ऊपर की ओर गमन करती है, जिससे अंदर के दुःखदायी आवरणों का भेदन होता है॥३५॥ पिण्डरूपी महा-अंधकारमय मंडल को छोड़कर सुरत ब्रह्माण्ड के ज्योतिर्मय मंडल में जाती है॥३६॥ फिर (सूक्ष्म मंडल के केन्द्रीय) ध्वनि को पकड़कर सुरत इस प्रकाश मंडल के पार (शब्द मंडल में) चढ़ाई करती है और वहाँ विभिन्न शब्दों को सुनकर तृप्त होती है॥३७॥

जो ध्वनि रामनाम, सतध्वनि, सारध्वनि और सारशब्द आदि कहकर संतों द्वारा पुकारा जाता है, उस निर्गुण, निर्मल और चेतन ध्वनि को सुरत द्वारा ग्रहणकर अचेतन (जड़ात्मक) मंडलों को छोड़ आगे चलो॥३८-३९॥

यह सारध्वनि भी उस शब्दातीत पद (अर्थात् निःशब्द) में जाकर लीन हो जाती है, जो निर्गुण पद (कैवल्य मंडल) से आगे है॥४०॥ इस-प्रकार शब्द मंडल छूट जाता है और सुरत अध्वनि-अशब्द (शब्दातीत पद) में जाकर समा जाती है॥४१॥ इसी अध्वनि या अशब्द को परमात्मा कहना चाहिए। इस शांति स्वरूप (परमात्म-पद) को प्राप्त करो ॥४२॥ जिसकी ऐसी आंतरिक चढ़ाई हो जाती है, वे ही संत कहलाते हैं । ऐसे जीते-जी मुक्त हुए महापुरुष संसार के लोगों को सचेत करते हैं। (अर्थात् अज्ञान-निद्रा से जगाते हैं)॥४३॥ हे भाइयो! संतमत के रहस्यों को (गंभीर बातों को) मैंने (इस पद्य में) गा-गाकर तुम्हें समझा दिया॥४४॥ जो इन बातों को जानते हैं, वे इनका अभ्यास करे और अपने हृदय को पवित्र रखते हुए संसार में वास करे॥ ४५॥ वैराग्य के मार्ग पर सदा आगे बढ़े और सत्संग से अत्यन्त प्रेम करते रहे॥४६॥ जो तुम्हें यथार्थ ज्ञान बताकर तुम्हारा ज्ञानवर्द्धन करे, तुम्हारी सभी शंकाओं को दूर कर दें, उन्हें प्रेमपूर्वक अपना गुरु मान लो और उनमें संत की भावना करके (उन्हें संत जानकर) उनकी सेवा

करो ॥ ४७-४८॥ अपने गुरु से कुछ भी कपट (दुराव) नहीं रखो । उनके प्रेम रूपी अमृत का पान करो॥४९॥ गुरु से सदा मधुर वचन बोलना। अहंकार करने से अपना सब (कल्याण) विनष्ट हो जाता है ॥ ५०॥ इसलिए उनसे कभी अहंकारपूर्वक व्यवहार नहीं करना, अन्यथा जन्म-मरण के चक्र में ही पड़े रह जाओगे ॥ ५१॥

□□□□

(४८)

चैत

अधर डगर[१] को सद्‌गुरु भेद बतावै ॥ १ ॥
कज्जल केन्द्र[२] सूई अग्र[३] दर[४] होई,
दृष्टि रथ चढ़ि स्रुति धावै ॥ २ ॥
प्रकाश मण्डल तजि शब्द समावै,
अचल[५] अमर घर पावै ॥ ३ ॥
'मेँहीँ' दास आस[६] सद्‌गुरु की,
हरदम शीश नवावै[७] ॥ ४ ॥

शब्दार्थ :

१. अन्तराकाश का मार्ग, २. अंधकार-मंडल का केन्द्र, ३. अगला (नोक), ४. द्वार, ५. स्थिर, निश्चल,६.आशा,भरोसा, ७. सिर झुकाता है, प्रणाम करता है।

पद्यार्थ :

सद्‌गुरु अन्तराकाश के मार्ग का रहस्य बतलाते हैं॥१॥ अंधकार मंडल के केन्द्र में सूई की नोक के समान जो (सुषुम्ना का) द्वार है, सुरत उसी होकर दृष्टि रूपी रथ पर सवार होकर वेग से चलती है ॥ २॥ सुरत फिर प्रकाश मंडल को पारकर शब्द मंडल में प्रवेश करती है । (पुनः और आगे निःशब्द में जाकर) निश्चल और अमर लोक (परमात्म-धाम) को प्राप्त करती है ॥ ३॥ महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि मुझ दास (सेवक) को (अपने उद्धार के लिए एक मात्र) सद्‌गुरु का ही भरोसा है, इसलिए मैं उन्हें बारंबार प्रणाम करता हूँ ॥ ४॥

□□□□

(४९)

आहो भाई होउ गुरु आश्रित[१] हो, बिना गुरु अंधकार,
सूझए न कछु सार[२], होऊ गुरु आश्रित हो ॥ १ ॥
आहो भाई गुरु सेवी[३] भेद लेहु हो, स्थूल दृश्य पिण्ड तोर[४],
भरा अंधकार घोर, तिल[५] पैसी[६] पार होउ हो ॥ २ ॥
आहो भाई ब्रह्म जोति पार करु हो, कमल सहस दल,
जोति करे झलमल, त्रिकुटी में सूर्य्य उगे हो ॥ ३ ॥
आहो भाई जोति छाड़ी गहु शब्द हो, गहीले[७] अनूप[८] धुन्न[९],
टपु सुन्न महासुन्न, भँवर गुफाहु टपु[१०] हो ॥ ४ ॥
आहो भाई शब्द में सुरत मेली[११] हो, ब्रह्माण्डहिं पार होउ,
सत्य में समाय[१२] रहु, भव न परउ[१३] पुनि हो ॥ ५ ॥
आहो भाई गुरु भेद गुप्त यही हो, गुरु सेवै जन जोई,
सतपथ[१४] पावै सोई, 'मेँहीँ' न दोसर लहे हो ॥ ६ ॥

शब्दार्थ :

१. निर्भर, २. यथार्थ, ३. सेवा करके, ४. तुम्हारा, ५. ज्योतिर्मय बिन्दु, ६. प्रवेशकर, ७. ग्रहण करो, ८. उपमा-रहित, अनुपम, ९. ध्वनि, १०. पार करो,११. लीनकर, मिलाकार, १२. समाकर, १३. पड़ोगे, १४. सच्चा मार्ग ।

पद्यार्थ :

हे भाई! गुरु पर निर्भर होओ, क्योंकि बिना गुरु-कृपा के जीवन अंधकारमय बना रहता है, व्यक्ति को यथार्थ ज्ञान नहीं होता । इसलिए गुरु आश्रित होओ ॥१॥ हे भाई! गुरु की सेवा करके उनसे भक्ति की युक्ति प्राप्त करो। तुम्हारा दिखाई पड़ने वाला, स्थूल शरीर घने अंधकार से भरा हुआ है। (दृष्टियोग क्रिया के द्वारा) ज्योतिर्मय बिन्दु में प्रवेश करके (उस अंधकार से) पार हो जाओ॥२॥

हे भाई! (अंधकार के बाद) ब्रह्मज्योति को भी पार करो। सहस्त्रदलकमल में प्रकाश झिलमिल करता है और त्रिकुटी में सूर्योदय होता है॥३॥ हे भाई! प्रकाश को छोड़कर शब्द को ग्रहण करो। शब्द में भी जो अनुपम (सारशब्द) है, उसे ग्रहण कर शून्य, महाशून्य और भँवरगुफा को भी पार कर जाओ॥४॥ हे भाई! इसतरह से केन्द्रीय शब्दों में सुरत को लीन कर ब्रह्माण्ड को पार कर जाओ और सतपद (परमपद) में समा जाओ। फिर तुम जन्म-मरण के चक्र में नहीं पड़ोगे॥ ५॥ महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि हे भाई! गुरु से प्राप्त होने योग्य यह रहस्य बहुत गुप्त है। जो व्यक्ति गुरु की सेवा करता है, वही भक्ति के सच्चे मार्ग को प्राप्त करता है, दूसरे को प्राप्त नहीं होता ॥६॥

□□□□

(५०)

शब्द

गुरु के शरण गहु[१], धन धन[२] गुरु कहु, सुखमन सुरत समाइ,
तिसर तिल हेरहु[३] रे की॥ की आहो सन्तो हो ॥टेक॥
बिन्दु चमकि आवै, पँच रंग ऊगि आवै,
बिजली छटक अति तेज, सहस्त्रदल पैठहु[४] रे की ॥१॥की०॥
दीपक बरत[५] जोत, जगमग तारे होत,
चाँदनी पूरन[६] चन्द लखत, जी जुड़ावई[७] रे की ॥२॥की०॥
सुरत त्रिकुटी चढ़े, सूर्य ब्रह्म देखी अड़े[८],
बड़ ही अजब[९] ब्रह्मलोक, तजिये दशमा द्वारियो रे की ॥३॥की०॥
शब्द धँसिये[१०] सूर्त[११], तजत अनृत[१२] नृत्य[१३],
मिटत सकल दुख द्वन्द्व मिलिये सतनामियो रे की ॥४॥की०॥
भेद असल[१४] सार, परम सरल आर[१५],
बाबा देवी साहब प्रकासिये, जीव उबारत[१६] रे की ॥५॥की०॥
'मेँहीँ' युगल कर[१७], जोड़ी नवत सर,
धन गुरु परम दयाल, कहल भल[१८] भेदियो[१९] रे की ॥६॥की०॥

शब्दार्थ :

१. ग्रहण करो, २. धन्य-धन्य, गुणगान करना, ३. खोजो, ४. प्रवेश करो, ५. जलता है, ६. पूर्ण, ७. हृदय तृप्त होता है, ८. रुकता है, ९. अद्‌भुत, १०. धँसता है, प्रवेश करता है, ११. सुरत, १२. मायिक, झूठा, १३. लीला, १४. सच्चा, १५. और, १६. उद्धार करते हैं, १७. दोनों हाथ, १८. हितकारी, कल्याणकारी, १९. रहस्य, युक्ति।

पद्यार्थ :

हे साधु पुरुषो! गुरु की शरण ग्रहण करो, उनका गुणगान करो और सुषम्ना (आज्ञाचक्र) में सुरत को प्रवेश कराकर तीसरा तिल-ज्योतिर्मय बिन्दु को खोजो ॥टेक॥

वहाँ बिन्दु की चमक दीखेगी और (पाँच स्थूल तत्वों के) पाँच प्रकाश* प्रकट होंगे। बिजली की अत्यंत तेज छटा देखते हुए सहस्त्रदलकमल में प्रवेश कर जाओ॥१॥ वहाँ दीपक की ज्योति जलती है और तारेगण जगमग करते हैं। पूर्ण चंद्रमा और उसकी चाँदनी को देखकर तुम्हारा हृदय तृप्त हो जाएगा॥२॥ इसके बाद सुरत त्रिकुटी में चढ़ती है और वहाँ सूर्यब्रह्म (की शोभा) को देखकर रुक जाती है। हे साधु पुरुषो! ब्रह्मलोक (त्रिकुटी) का सौन्दर्य बड़ा अद्‌भुत है, जिसकी अनुभूति दशम द्वार को छोड़कर आगे बढ़ने से होती है॥३॥ शब्द मंडल में प्रवेश करने के बाद सुरत मायिक लीलाओं (रंग-रूपों) को छोड़ देती है और सतनाम (सार शब्द) से मिलने पर साधक के सभी दुःख-द्वंद्व समाप्त हो जाते हैं॥४॥

महर्षि 'मेँहीँ' परमहंसजी महाराज कहते हैं कि बाबा देवी साहब भक्ति की सच्ची, सार और अत्यन्त सरल युक्ति का प्रचार कर जीवों का उद्धार कर रहे हैं। मैं दोनों हाथों को जोड़कर सिर नवाता (झुकाता) हूँ। हमारे परम दयालु गुरुदेव धन्य हैं, जिन्होंने कल्याणकारी भक्ति की युक्ति बतलाई ॥५-६॥

□□□□

* पृथ्वी का पीला, जल का लाल, अग्नि का काला, वायु का हरा और आकाश का उज्जवल।

(५१)

मंगल

खोजो पन्थी[१] पन्थ[२] तेरे घट[३] भीतरे ।
तू अरु तेरो पीव भी घट ही अन्तरे ॥१॥
तू यात्री पिव घर को चलन[४] जो चाहहू ।
तो घटही में राह निहारु[५] विलम्ब न लाबहू[६] ॥२॥
तिमिर प्रकाश वो शब्द निशब्द की कोठरी ।
चारो कोठरिया अहइ[७] अन्तर घट कोट[८] री ॥३॥
तू उतरि परयो[९] तम माहिं[१०] पीव निःशब्द में ।
याहि ते[११] पड़ि गयो दूर चलो निःशब्द में ॥४॥
पीव हैं सब ही ठाईं[१२] परख[१३] आवैं नहीं ।
जौं निःशब्द गम[१४] होइ परख पावो सही ॥५॥
अन्ध कोठरिया माहिं सुखमना हेरहू[१५] ।
तीसर तिल तहाँ पाइ के पन्थ निबेरहू ॥६॥
जोति कोठरि को द्वार केवाड़ इह खोलिके ।
रमि चलु जोति के माँहिं गुरु गुन बोलिके ॥७॥
यहँ से धुन की तार[१६] पकड़ि शब्द कोठरी ।
सुरत पैठि कै दाहु[१७] गुणन[१८] की मोटरी[१९] ॥८॥
निरशब्दी[२०] धुन पाइ निशब्द में गमि[२१] करो ।
तहवाँ पीव को पावि सगुणागुण[२२] परिहरो[२३] ॥९॥
देवि साहब की शिक्षा मंगल एह[२४] है ।
इन्ह पद 'मेँहीँ' के अर्पित धन मन देह है ॥१०॥

शब्दार्थ :

१. पथिक,यात्री,२.पथ,रास्ता, ३. शरीर,४. चलना, ५.देखो,६.लाओ,७. हैं, ८. किला, गढ़, ९.पड़े हो,१०.में,११.इसीलिए,१२.स्थान,जगह,१३. पहचान, १४. गमन, १५. खोजो, १६. ध्वनि की धार,१७. जलाओ, १८. गुणों,

त्रिगुण — सत्व, रज और तम इन तीनों गुणों का समूह, १९. पोटली, गठरी, २०. निःशब्द से निःसृत,२१. गमन, २२. सगुण और अगुण, २३. परित्याग करो, २४. यह ।

पद्यार्थ :

हे पथिक! परमात्मा तक जाने का रास्ता तेरे शरीर के अंदर ही है। क्योंकि तुम और तुम्हारे स्वामी (परमात्मा) शरीर के अंदर ही हैं । इसलिए उसे (परमात्मा को) अपने अंदर ही खोजो ॥१॥ हे पथिक! तुम यदि अपने स्वामी के घर जाना चाहते हो तो अपने शरीर में ही रास्ता खोजो, देर न करो ॥२॥ अंधकार मंडल, प्रकाश मंडल, शब्द मंडल और निःशब्द मंडल; ये चारो तुम्हारे शरीर रूपी किले के भीतर हैं॥३॥ तुम्हारे स्वामी निःशब्द (शब्दातीत पद) में रहते हैं और तुम वहाँ से उतरकर अंधकार मंडल में आ गए हो। इसीलिए अपने स्वामी से दूर हो गए हो। अब पुनः वहाँ (निःशब्द में) चलो॥ ४॥ तुम्हारे स्वामी सब जगह विद्यमान हैं,लेकिन वे पहचान में नहीं आते हैं। यदि निःशब्द में तुम्हारा गमन हो जाए, तो सचमुच तुम उन्हें पहचान पाओगे ॥ ५॥ तुम अंधकार मंडल में सुषुम्ना को खोजो और उसमें तीसरा तिल (ज्योतिर्मय बिन्दु) को पाकर आगे का रास्ता तय करो॥ ६॥ ज्योति मंडल के द्वार पर लगे (अंधकार रूपी) किवाड़ को खोलकर (युक्ति बताने वाले) गुरु का गुणगान करते हुए ज्योति में प्रवेश करते चलो ॥७॥ यहाँ से केन्द्रीय शब्द की धार पकड़कर सुरत द्वारा शब्द मंडल में प्रवेश करो और त्रयगुणों की पोटली को जला डालो॥८॥ फिर निःशब्द से निःसृत ध्वन्यात्मक सारशब्द को प्राप्तकर निःशब्द में गमन करो और वहाँ सगुण-निर्गुण को त्यागकर अपने स्वामी को प्राप्त कर लो ॥ ९॥ महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि ये ही बाबा देवी साहब की कल्याणकारी शिक्षाएँ हैं । इनके (बाबा साहब के) चरणों में मेरा धन, मन और शरीर तीनों समर्पित है ॥ १०॥

(५२)

मंगल

खोजो पंथी[१] पंथ तेरे घट भीतरे ।
तू अरु तेरो पीव भी घट ही अन्तरे ॥१॥
पिउ[२] व्यापक सर्वत्र परख आवै नहीं ।
गुरुमुख[३] घट ही माहिं परख पावै सही ॥२॥
तू यात्री पीव घर को चलन[४] जो चाहहू ।
तो घट ही में पन्थ निहारु[५] विलम्ब न लाबहू ॥३॥
तम प्रकाश अरु शब्द निःशब्द की कोठरी ।
चारो कोठरिया अहइ[६] अन्दर घट कोट[७] री ॥४॥
तू उतरि परयो तम माहिं पीव निःशब्द में ।
यहि तें परि गयो दूर चलो निःशब्द में ॥५॥
नयन कँवल तम[८] माँझ[९] से पंथहिं धारिये[१०] ।
सुनि धुनि जोति निहारि के पन्थ सिधारिये[११] ॥६॥
पाँचो नौबत बजत खिंचत चढ़ि जाइये ।
यहि ते भिन्न उपाय न दिल बिच लाइये ॥७॥
सन्तन कर भक्ति-भेद अन्तर पथ चालिये ।
'मेँहीँ' मेँहीँ[१२] धुनि धारि[१३] सो पन्थ पधारिये[१४] ॥८॥

शब्दार्थ :

१.पथिक,यात्री,२.पीव, स्वामी,३.गुरु से युक्ति पाए हुए,४.चलना, ५.खोजो, ६. हैं, ७. किला, गढ़, ८. अंधकार मंडल, ९. मध्य, बीच, १०. धारण करो, पकड़ो, ११. गमन करो, १२. सूक्ष्म, १३. ग्रहण कर, १४. पहुँचो ।

पद्यार्थ :

हे पथिक! परमात्मा की ओर जाने का रास्ता तेरे शरीर के अंदर ही है। क्योंकि तुम और तुम्हारे स्वामी (परमात्मा) शरीर के अंदर ही हो, इसलिए उसे (परमात्मा को) अपने अंदर ही खोजो॥१॥

परमात्मा सब जगह व्यापक हैं, किन्तु पहचान में नहीं आते हैं । जो गुरु से युक्ति पाए हुए हैं, वे अपने शरीर के अंदर ही परमात्मा के सत्य स्वरूप को पहचान सकते हैं ॥२॥ हे पथिक! यदि तुम अपने स्वामी के घर चलना चाहते हो तो अपने शरीर के अंदर ही रास्ता खोजो, देर न करो ॥३॥ अंधकार मंडल, प्रकाश मंडल, शब्द मंडल और निःशब्द मंडल; ये चारो मण्डल-रूप कोठरियाँ तुम्हारे शरीर रूपी किले के अंदर हैं ॥४॥ तुम्हारे स्वामी निःशब्द (शब्दातीत पद) में रहते हैं और तुम वहाँ से उतरकर अंधकार मंडल में आ गए हो। इसी कारण तुम अपने स्वामी से दूर हो गए हो। पुनः निःशब्द की ओर चलो ॥५॥ नयनाकाश में अंधकार मंडल के मध्य से रास्ता पकड़ो । फिर ज्योति को देखते हुए और ध्वनि को सुनते हुए रास्ते पर आगे गमन करो ॥६॥ (शरीर के अंदर) पाँचो मंडलों से नौबतें (पाँच केन्द्रीय शब्द) बजती हैं। उनसे आकर्षित होते हुए आगे बढ़ते जाओ। इसके अतिरिक्त भी कोई युक्ति है, ऐसा विचार मन में नहीं लाओ ॥७॥ महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि संतों द्वारा बतलाया गया ईश्वर भक्ति का रहस्य यही है कि अपने आंतरिक पथ पर चलो और सूक्ष्म ध्वनि को ग्रहण कर उसी रास्ते से (परमात्मा तक) पहुँचो ॥८॥

□□□□

(५३)

योग हृदय केन्द्र बिन्दु[१] में युग[२] दृष्टियों को जोड़िकर ।
मन मानसों[३] को मोड़ि[४] सब आशा निराशा छोड़िकर ॥१॥
ब्रह्म ज्योति ब्रह्म ध्वनि धार धरि आवरण सारे तोड़िकर ।
सुरत चला प्रभु मिलन को विषयों से मुख को मोड़िकर ॥२॥
झूठ चोरी नशा हिंसा और जारी[५] छोड़िकर ।
गुरु-ध्यान अरु सत्संग-सेवन में स्वमति[६] को जोड़िकर ॥३॥
जीवन बिताओ स्वावलम्बी[७] भरम भाँड़े[८] फोड़िकर ।
सन्तों की आज्ञा हैं ये 'मेँहीँ' माथ धर[९] छल छोड़िकर ॥४॥

शब्दार्थ :

१. आज्ञाचक्र केन्द्र बिन्दु, दशम द्वार,२. दोनों, ३. मन की वृत्तियों,४.मोड़कर,

उलटाकर, ५. व्यभिचार, ६. अपनी बुद्धि को, ७. जीवन निर्वाह के लिए अपने आप पर निर्भर व्यक्ति, ८.भ्रम का बर्त्तन, ९.सिर पर रखो, शिरोधार्य करो, अपनाओ ।

पद्यार्थ :

सांसारिक सुखों की आशा और भक्ति-पथ पर होने वाली निराशा को त्याग कर आज्ञाचक्र के केन्द्र बिन्दु (दशमा द्वार) में दोनों दृष्टिधारों को जोड़कर मन की वृत्तियों को अन्तर्मुख करो ॥१॥

(सांसारिक विषयों से मुँह मोड़ने के बाद) अंतःप्रकाश और अन्तर्नाद की धारा को पकड़कर (अंधकार, प्रकाश और शब्द रूप) सारे आवरणों को पार करते हुए सुरत को परमप्रभु परमात्मा से मिलाने के लिये चलाओ॥२॥ (इस सूक्ष्म साधना के लिये) झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार (इन पँच पापों) को त्याग कर गुरु रूप के मानस ध्यान एवं सत्संग-सेवन में अपनी बुद्धि को जोड़ो॥३॥ भ्रम रूपी बर्तन को फोड़कर (अर्थात् भ्रम को त्याग कर) स्वावलंबी जीवन बिताओ । महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि यही संतों की आज्ञा (आदेश) है, जिसे कपट छोड़कर (अर्थात् सच्चाईपूर्वक) शिरोधार्य करो (अपनाओ) ॥४॥

□□□□

(५४)

निज तन में खोज सज्जन, बाहर न खोजना ।
अपने ही घट में हरि हैं, अपने में खोजना ॥१॥
दोउ नैन नजर जोड़ि के, एक नोक बना के ।
अन्तर में देख सुन-सुन, अन्तर में खोजना ॥२॥
तिल द्वार तक के सीधे, सुरत को खैंच ला ।
अनहद धुनों को सुन-सुन, चढ़-चढ़ के खोजना ॥३॥
बजती हैं पाँच नौबतें, सुनि एक-एक को ।
प्रति एक पै चढ़ि जाय के, निज नाह[1] खोजना ॥४॥
पंचम बजै धुर घर[2] से, जहाँ आप विराजैं ।
गुरु की कृपा से 'मेँहीँ', तहँ पहुँचि खोजना ॥५॥

शब्दार्थ :

१. नाथ, स्वामी, २. आदिघर, ३. शब्दातीत पद ।

पद्यार्थ :

हे सज्जनो! अपने शरीर के अंदर ही परमात्मा की खोज करो, बाहर नहीं खोजो। परमात्मा अपने शरीर में ही हैं, इसलिए अपने में खोजो ॥१॥

दोनों आँखों की दृष्टिधारों (चेतनधारों) को जोड़कर एक नोक बनाओ अर्थात् बिन्दु पर स्थिर करो । (इस प्रकार दृष्टिधारों को स्थिर करने के बाद) अन्तःप्रकाश को देखते हुए फिर अन्तर्नादों को सुनते-सुनते अपने अंदर परमात्मा की खोज करो ॥२॥

इन्द्रियों में फैली हुई सुरत की धारों को खींचकर (समेटकर) सीधे दशम द्वार तक लाओ, फिर अनहद ध्वनियों को सुनते हुए, अंदर के मंडलों पर चढ़ते हुए परमात्मा को खोजो ॥३॥

शरीर के अंदर पाँचो मंडलों की पाँच नौबतें (केन्द्रीय ध्वनियाँ) बजती हैं। उन्हें (सुरत-द्वारा) एक-एक कर सुनते हुए प्रत्येक मंडल के केन्द्र पर चढ़ जाओ और इस तरह अपने स्वामी की खोज करो ॥४॥

पाँचवी नौबत (सारशब्द) आदि घर (शब्दातीत पद) से बजती है। यहाँ परमात्मा स्वयं निवास करते हैं। महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि सद्गुरु की कृपा प्राप्त करके वहाँ तक पहुँचो और परमात्मा को प्राप्त करो॥ ५॥

□□□□

(५५)

घट पट तिहू के पर में साईं[1] बसै हिय अन्तरे[2] ।
जौं मिलन को चाहता चटपट[3] से कर संग सन्त रे ॥१॥
खटपट[4] सभी मद मान को तज ले गुरु के मन्तरे[5] ।
पूरे गुरु का मन्त[6] यहि झटपट[7] निरख अभिअन्तरे[8] ॥२॥
बन्द कर पलकों को वो कर मन की छटपट[9] अन्त रे ।
मध्य सुखमन बिन्दु झलके[10] लख ले वहँ से पन्थ रे ॥३॥
घट पट तिहू के पार जाने का असल यहि पन्थ रे ॥

माया की लटपट[११] सब छुटे यहि राह से कहैं सन्त रे ॥४॥
थिर होके चल यहि राह पर तम जोत तटपट[१२] अन्त रे ।
करके धुन पट छट पिलो[१३] या टपके[१४] पावो कन्त रे ॥५॥
देवि साहब की हिदायत[१५] मान ले गुणवन्त रे ।
'मेँहीँ' कहै सुख शान्ति मिलिहैं भव का होइहैं अंत रे ॥६॥

शब्दार्थ :

१. स्वामी, परमात्मा,२. हृदय के अंदर,३. शीघ्र, जल्दी से,४. उलझन, झंझट, ५. मंत्र, ६. सलाह, ७.शीघ्र, ८. अभ्यंतर में, अंदर में, ९.चंचलता, १०. दिखाई पड़ता है, ११. उलझन, बंधन, १२. सीमांत आवरण, १३. शीघ्र तत्पर हो, १४. पार करके, १५. निर्देश, आज्ञा ।

पद्यार्थ :

शरीर के अंदर (अंधकार, प्रकाश और शब्द रूप) तीनों आवरणों के पार तुम्हारे हृदय में स्वामी (परमात्मा) निवास करते हैं। यदि तुम उनसे मिलना चाहते हो तो शीघ्र संतों का संग (सत्संग) करो।॥१॥ गुरु से मंत्र प्राप्त कर अहंकार और सम्मान की इच्छा से उत्पन्न सभी उलझनों को त्याग दो । जो पूर्ण गुरु होते हैं, उनका यही मत (सलाह) है कि अविलंब अपने अंदर देखो (अर्थात् ब्रह्मज्योति और ब्रह्मनाद को अनुभव करो)॥ २॥ दोनों पलकों को बंद करके मन की चंचलता को दूर करो, तो सुषुम्ना के मध्य में ज्योतिर्मय बिन्दु दिखाई पड़ेगा। उसी बिन्दु होकर आगे के मार्ग को देखो (पकड़ो) ॥३॥ शरीर के अंदर स्थित त्रयावरण से पार जाने का यही सच्चा पथ है। संतों का कहना है कि इस मार्ग पर चलने से माया के सभी बंधन छूट जाते हैं ॥४॥ इस आंतरिक राह पर दृढ़ होकर चलने से अंधकार और प्रकाश के सीमांत आवरणों का अंत हो जाता है। फिर शब्द-आवरण को शीघ्र तत्पर होकर पार करो और अपने स्वामी—परमात्मा को प्राप्त कर लो ॥५॥ महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि हे गुणवान पुरुषो! बाबा देवी साहब की इस आज्ञा को मान लो तो तुम्हें सुख-शांति की प्राप्ति होगी और आवागमन के दुःख का अंत हो जाएगा ।

(५६)

चैत

घट बिच अजब तमाशा[१] ॥ टेक ॥
अधर भूमि पर सुरत जमा के देखो अजब प्रकाशा ॥१॥
लखतहिं[२] बने ना कहि सुनि मिले करु निज घट की तलाशा[३] ॥२॥
घटही में सरगुण घटही में निरगुण घटही में सत पद वासा ॥३॥
नहिं परतीत[४] तो गुरु हरि सेवो आपा[५] अरपि[६] बनो दासा ॥४॥
जाहिर[७] जहूर[८] सतगुरु देवि साहब भेद बतावयँ खासा[९] ॥५॥
'मेँहीँ' कहत सुनो जो शरण गहैं लहैं[१०] निज घट के विलासा[११] ॥६॥

शब्दार्थ :

१. लीला,दृश्य,२.देखते ही, ३.खोज,४. विश्वास, ५. अहंकार, ६. सौंपकर, ७. प्रकट, ८. प्रकाश, ९. खास, विशेष, १०. प्राप्त करते हैं, ११. आनंद ।

पद्यार्थ :

शरीर के अंदर आश्चर्यमयी लीलाएँ होती हैं।टेक॥ अन्तराकाश में स्थान विशेष पर अपनी सुरत को स्थिर करके अद्भुत प्रकाश को देखो ॥१॥ कहने-सुनने से वह (प्रकाश) नहीं मिलेगा। (गुरुयुक्ति द्वारा) देखते रहने से तुम्हारा काम बनेगा। अपने शरीर के अंदर ही खोज करो ॥२॥ शरीर में ही सगुण पद (अपरा या जड़ प्रकृति) और निर्गुण पद (परा या चेतन प्रकृति) है। साथ ही शरीर में ही सतपद (शब्दातीत परमपद) भी स्थित है।॥३॥ यदि (इन बातों में) विश्वास नहीं हो तो परमात्म-स्वरूप सद्गुरु की सेवा करो और अपने अहंकार को (उनके चरणों में) सौंपकर उनका दास बन जाओ ॥ ४॥ प्रकाश स्वरूप (ज्ञान-स्वरूप) सद्गुरु बाबा देवी साहब प्रकट हैं, जो (साधना संबंधी) विशेष-युक्ति बतलाते हैं ॥ ५॥ महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि सुनो! जो उनकी शरण ग्रहण करते हैं, वे अपने शरीर के अंदर ही (अलौकिक) आनंद प्राप्त करते हैं ॥ ६॥

(५७)

घट बीच अजब तमाशा, हे साधो, घट बीच अजब तमाशा ॥
घट की <u>काली घटा</u>[1] में स्थिर, तड़ित[2] जड़ित[3] परकाशा[4], हे साधो ॥
घट में घट ता माहीँ घट है, तेहु घट में घट पासा[5], हे साधो ॥
सगुण जड़ क्षर घट चारि चौथ[6] में, चेतन अगुण तन खासा, हे साधो ॥
'मेँहीँ' शब्द अनाहत सह[7] प्रभु, घट-घट व्यापक पासा, हे साधो ॥

शब्दार्थ :

१. अंधकार रूप बादल, २. बिजली की कौंध, ३. युक्त,४.प्रकाश, ५. प्रविष्ट, घुसा हुआ, ६. चौथा, चौथे, ७. सहित ।

पद्यार्थ :

हे साधु पुरुषो! इस शरीर के अंदर आश्चर्यमयी लीलाएँ होती हैं।। शरीर में अंधकार रूपी बादल के भीतर बिजली की कौंध (तेज चमक) से युक्त प्रकाश शोभित है।। प्रथम शरीर (स्थूल) के अंदर दूसरा (सूक्ष्म) शरीर है और उस (सूक्ष्म) शरीर के अंदर, तीसरा शरीर (कारण) है। फिर उस तीसरे (कारण) शरीर के अंदर चौथा शरीर (महाकारण) प्रविष्ट (घुसा हुआ) है ।। ये चारो शरीर सगुण, जड़ और नाशवान हैं। चौथे (महाकारण) शरीर में एक अन्य विशेष चेतन, निर्गुण (कैवल्य) शरीर है।। महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि अनाहत नाद (सार-शब्द) के सहित परमप्रभु परमात्मा प्रत्येक शरीर में प्रविष्ट होकर एक समान फैले हुए हैं ।।

□□□□

(५८)

प्रथमहिं धारो[1] गुरु को ध्यान ।
हो स्त्रुति[2] निर्मल हो बिन्दु ज्ञान ॥ १ ॥
दोउ नैना बिच सन्मुख देख ।
इक बिन्दु मिलै दृष्टि दोउ रेख ॥ २ ॥
सुखमन झलकै तिल तारा ।

निरख[3] सुरत दशमी द्वारा ॥ ३ ॥
जोति मण्डल में अचरज जोत ।
शब्द मण्डल <u>अनहद शब्द</u>[4] होत ॥ ४ ॥
अनहद में <u>धुन सत</u>[5] <u>लौ लाय</u>[6] ।
भव जल तरिबो[7] यही उपाय ॥ ५ ॥
'मेँहीँ' युक्ति सरल साँची ।
लहै जो गुरु सेवा राँची[8] ॥ ६ ॥

शब्दार्थ :

१. धरो, करो, २. सुरत, ३. देखो, ४. जड़ात्मक मंडलों की अनगिनत ध्वनियाँ, ५. सतध्वनि, सारशब्द, ६. ध्यान लगाओ, ७. तरने का, ८.अनुरक्त होता है, लीन होता है ।

पद्यार्थ :

पहले सद्‌गुरु (के स्थूल रूप) का मानस ध्यान करो। इससे सुरत पवित्र हो जाएगी और ज्योतिर्मय बिन्दु का ज्ञान होगा।।१।। (पलकों को बंद कर) दोनों आँखों के बीच सामने देखो। इससे तुम्हारी दोनों दृष्टिधारें एक बिन्दु पर मिल जाएँगी।।२।। इस तरह दशम द्वार (सुषुम्ना) की ओर सुरत से देखते रहने से तुम्हें ज्योतिर्मय विन्दु और तारे दिखलाई पड़ेंगे।।३।। प्रकाश मंडल में आश्चर्यमय प्रकाश होता है तथा शब्द मंडल में अनहद (जड़ात्मक मंडल की अनगिनत) ध्वनियाँ होती हैं।।४।। उन अनहद ध्वनियों के बीच जो सतध्वनि (सारशब्द) है, उसमें ध्यान लगाओ। संसार रूपी सागर से पार होने के ये ही उपाय हैं।।५।। महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि भक्ति की इस सरल और सच्ची युक्ति को वही प्राप्त करता है, जो सद्‌गुरु की सेवा में अनुरक्त (लीन) होता है।

□□□□

(५९)

सुखमन झल झल[१] बिन्दु झलकै ।
लख ले भैया बन्द पलके ॥१॥
तीसर तिल में दृष्टि धरे ।
पिण्ड त्यागि ब्रह्माण्ड चले ॥२॥
खुले[२] आकाश भरे तारा ।
दीप टेम[३] हरे[४] अँधियारा ॥३॥
अनुपम चाँदनि जोति बरे[५] ।
तरुण सूर्य[६] दिव[७] जोति करे ॥४॥
अनहत अनहद धुन मीठी ।
सुरत[८] गहे करि दिव दीठी[९] ॥५॥
धरि अस शब्द सुरत डोरी ।
सुरत[१०] चलो घर सत[११] को री ॥६॥
'मेँहीँ' भेद कहा यह सार ।
गुरु सेवी पावे निरधार[१२] ॥७॥

शब्दार्थ :

१. झिलमिला, २.प्रकट होता है, ३.दीपक की लौ, ४. हरण करता है, ५. जलता है, ६. मध्याह्न (दोपहर) कालीन सूर्य, ७.दिव्य, ८.चेतन धार ९.दिव्य दृष्टि, १०. जीवात्मा ११. सत्यधाम, परमात्मधाम, १२. निराधार, परमात्मा ।

पद्यार्थ :

सुषुम्ना (आज्ञाचक्र के केन्द्र) में झिलमिलाता ज्योतिर्मय बिन्दु दिखलाई पड़ता है। हे भाई! पलकों को बंद करके उसे देख लो।।१।। तीसरे तिल (सुषुम्ना या आज्ञाचक्र के केन्द्र) में जो (साधक) दृष्टिधारों को स्थिर करता है, वह पिंड को छोड़ कर ब्रह्माण्ड में चला जाता है।।२।। उसके सामने तारों से भरा (आच्छादित) आकाश प्रकट होता है और दीपक की लौ प्रकाशित होकर अंधकार का हरण करती है।।३।। चाँदनी का-सा अतुलनीय प्रकाश फैलता (जलता) है। मध्याह्न (दोपहर) कालीन सूर्य दिव्य (अलौकिक) ज्योति बिखेरता है।।४।। सुरत दिव्यदृष्टि प्राप्त करके

मधुर अनाहत (सारशब्द) और अनहद ध्वनियों को ग्रहण करती है।।५।। हे जीवात्मा! तुम ऐसी ध्वनियों को सुरत रूप डोरी (सिमटी हुई सुरत) से ग्रहण कर सत्यधाम (परमात्मधाम/शब्दातीत पद) को चलो।।६।। महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि मैंने परमात्मधाम जाने का रहस्य सार रूप में कह दिया । जो सद्गुरु की सेवा करते हैं, वे निराधार (परमात्मा) को प्राप्त करते हैं ।।७।।

□□□□

(६०)

अध: ऊर्ध्व[१] अरु दायें बायें, पिच्छु[२] पाँचो त्यागि ।
षष्ट बीचो बिच एक निशान[३], दृष्टि की लागि ॥१॥
उदित तेजस्[४] बिन्दु में, पिलि चलो चाल विहंग[५] ।
तहाँ अनहद नाद धरि चढ़ि, चलो मीनी[६] ढंग ॥२॥
विहंग मीनी मार्ग दोउ से, चलो रे मन मीत[७] ।
मन हो उनमुन[८] चढ़ि सुरत सुन, उठत ध्वनि उद्गीथ ॥३॥
स्फोट ओम् उद्गीथ सत् ध्वनि, प्रणव नाद अखण्ड ।
सृष्टि की ध्वनि आवरण में, गुप्त गुंज प्रचण्ड[९] ॥४॥
नाद से नादों में चलि धरु, प्रणव सत ध्वनि सार ।
एक ओम् सतनाम ध्वनि धरि, 'मेँहीँ' हो भव[१०] पार ॥५॥

शब्दार्थ :

१. नीचे-ऊपर, २. पीछे, ३. चिह्न, बिन्दु, ४. ज्योतिर्मय, ५. पक्षी, ६. मछली का, ७. मित्र, ८. संकल्प-विकल्पहीन, ९. तीव्र, १०. संसृति, जन्म-मरण का चक्र ।

पद्यार्थ :

नीचे, ऊपर, दायें, बायें और पीछे; इन पाँचो तरफ को छोड़कर छठी ओर (सामने) बीच में दोनों दृष्टिधारों के द्वारा एक चिह्न अंकित करो (अर्थात् विन्दु उत्पन्न करो) ।।१।। उस उदित ज्योतिर्मय विन्दु में प्रवेशकर (अन्तराकाश में) पक्षी की तरह गमन करो। वहाँ अनहद नाद को पकड़कर मछली की तरह (भाठे से सीरे की ओर) चढ़ते चलो ।।२।। हे मित्र मन! तुम विहंग

मार्ग (दृष्टियोग) और मीन मार्ग (सुरत शब्द-योग) इन दोनों के सहारे चलो। (इस यात्रा में) मन जब संकल्प-विकल्पहीन हो जाता है,तब सुरत आगे चलती है और उद्‌गीथ ध्वनि (सारशब्द) को सुनती है ॥३॥ वह स्फोट,ओम्,उद्‌गीथ, सतध्वनि, प्रणवध्वनि आदि नामों से कही जाने वाली अव्यक्त अखण्ड ध्वनि सृष्टि के शब्द मंडल में तीव्र रूप से गुंजायमान हो रही है ॥४॥ महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि नीचले मंडल के केंद्रीय नाद (ध्वनि) के सहारे चलकर, क्रमशः ऊपरी मंडलों के केंद्रीय नाद (ध्वनि) को पकड़ते हुए, उस प्रणव ध्वनि, सतध्वनि या सारध्वनि को पकड़ो और उस ओम् या सतनाम ध्वनि को पकड़कर जन्म-मरण के चक्र से परे चले जाओ ॥५॥

□□□□

(६१)

खोज करो अन्तर उजियारी,
दृष्टिवान[1] कोइ देखा है ॥टेक॥
गुरु भेदी का चरण सेव कर,
भेद भक्त पा लेता है ।
निशि दिन[2] सुरत अधर[3] पर कर कर,
अंधकार फट जाता है ॥१॥
पीली नीली लाल सफेदी,
स्याही[4] सन्मुख आता है ।
छट-छट-छट-छट बिजली छटकै,
भोर[5] का तार[6] दिखाता है ॥२॥
चन्दा उगत उदय हो रविहू[7],
धूर शब्द[8] मिल जाता है ।
गुरु सतगुरु के चरण अधीनन,
अगम भेद यह पाता है ॥३॥
विविध भाँति[9] के कर्म जगत में,
जीवन घेरि फँसाता है ।
बाबा देवि कहैं कह 'मेँहीँ',
सतगुरु गुरु ही बचाता है ॥४॥

शब्दार्थ :

१.अन्तर्दृष्टि वाला, जिसने अन्तर्दृष्टि पाई,२. रात-दिन, दिन-रात,३.आज्ञाचक्र का केन्द्र, ४. रंग, रोशनाई, काला, ५. प्रातःकाल, ६. तारा, ७. सूर्य भी, ८. आदिशब्द, सारशब्द, ९. अनेक प्रकार, विभिन्न ।

पद्यार्थ :

अपने (शरीर के) अंदर की ज्योति की खोज करो। जिसने (अन्तस्साधना द्वारा) अन्तर्दृष्टि पाई, उसने उस ज्योति को देखा है ॥ टेक ॥

परमात्म-प्राप्ति की युक्ति जानने वाले गुरु के चरणों की सेवा करके भक्त उस युक्ति को प्राप्त कर लेता है। जब वह दिन-रात अपनी सुरत को आज्ञाचक्र के केन्द्र पर स्थिर करने का अभ्यास करता है तो (ऐसा करते-करते एक दिन) उसके नयनाकाश का अंधकार फट जाता है ॥१॥ (साधना के आरंभ में) पीले, नीले, लाल, सफेद और काले (पाँच तत्व के पाँच) रंग साधक के सामने आते हैं, तेजपूर्ण प्रकाश से बिजली चमकती है और प्रातःकाल का तारा देखने में आता है ॥२॥ अन्तराकाश में चन्द्रोदय होता है, फिर सूर्योदय भी होता है और साधक आदि-शब्द (सार-शब्द) प्राप्त करता है। सतस्वरूप परमात्मा को जानने वाले गुरु (सत्‌गुरु) के शरणागत होकर भक्त इस अति गुप्त रहस्य को प्राप्त करता है ॥३॥ (अनेक जन्मों के) विभिन्न कर्मफल जीवों को संसार में फँसाकर (बाँधकर) रखते हैं। महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज से (उनके गुरुदेव) परमसंत बाबा देवी साहब कहते हैं कि आदि गुरु परमात्मा और संत सद्‌गुरु ही जीवों को (शरीर और संसार के) बंधन से छुटकारा दिलाते हैं ॥४॥

□□□□

(६२)

सुखमनियाँ * में मोरी नजर[1] लागी ॥१॥
अगल बगल कहुँ दृष्टि न डोलै,
सन्मुख बिन्दु पकड़ लागी ॥२॥

* शरीरस्थ बहत्तर करोड़ नाड़ियों में एक सौ एक नाड़ियाँ मुख्य हैं। उनमें जो सर्व श्रेष्ठ नाड़ी है, वह सुषुम्ना कहलाती है। इसकी बायीं ओर इड़ा और दाहिनी ओर पिंगला विराजती है।

ब्रह्म जोति खुलि गई अन्तर में,
निसि अँधियारी हदस[२] भागी ॥३॥
दिव्य जोति को सूर[३] प्रगट भा[४],
सूरत सार शबद लागी ॥४॥
बाबा देवी कहैं 'मेँहीँ' सों,
ऐसहि कर निसदिन जागी[५] ॥५॥

शब्दार्थ :

१. दृष्टि, २. डरकर, ३. सूर्य, ४. हुआ, हो आया, ५. सचेत होकर ।

पद्यार्थ :

मेरी दृष्टि (की युगल धारें) सुषुम्ना (आज्ञाचक्र के केन्द्र) में स्थिर हो गई।॥१॥ अगल-बगल किसी भी ओर नहीं हिलती हुई दृष्टि सामने के ज्योतिर्मय विन्दु को पकड़कर वहीं टिक गई॥२॥ (इस तरह दृष्टि स्थिर होने से) अंदर में ब्रह्म ज्योति प्रकट हो गई और नयनाकाश का रात्रि-सा अंधकार डरकर भाग गया॥३॥ दिव्य (अलौकिक) ज्योति से पूर्ण सूर्य प्रकट हो आया। (अंततः) मेरी सुरत सारशब्द में लग गई (संलग्न हो गई)। महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज से (उनके सद्गुरु) बाबा देवी साहब कहते हैं कि सचेत होकर दिन-रात इसी तरह (ज्योति और नाद की) साधना करते रहो॥ ५॥

□□□□

(६३)

सुष्मनियाँ * में नजरिया[१] थिर होइ, बिन्दु लखी तिल की ॥ टेक ॥
झक-झक[२] जोती जगमग होती, चकमक-चकमक-सी ।
मोती हीरा ध्रुव सा तारा, विद्युत[३] हू[४] चमकी ॥ १ ॥
बरे जोति ध्वनि होति अनाहत, यन्त्र[५] ताल[६] बिन ही[७] ।
लखत सुनत स्रुत[८] चलत नेह[९] भरि, नाह[१०]- राह थिरकी[११] ॥ २ ॥
मर्मी[१२] सज्जन सत्य भक्त सों, अन्तर मग[१३] एही ।
चलत-चलत ध्वनि सार गहे ले, मेटि[१४] जरनि[१५] जी[१६] की ॥ ३ ॥

* सुषुम्ना (देखें पृष्ठ ११८)

सार शब्द ही नाह मिलावै और नहीं कोई ।
'मेँहीँ' कही जो सन्तन भाषी[१७] बात नहीं निज की[१८] ॥ ४ ॥

शब्दार्थ :

१.दृष्टि, २.प्रकाशमान, तेज, प्रकाश,३. बिजली, ४.भी, ५.वाद्य यंत्र, बाजा, ६. मँजीरा, ७.बिना ही, ८. सुरत, ९. प्रेम, १०.स्वामी, परमात्मा, ११.मस्त होकर चलती है, १२. भक्ति की युक्ति जानने वाले, १३. मार्ग, १४. मिटाते हैं, नष्ट करते हैं, १५. जलन, संताप,१६. हृदय, प्राण,१७.कहा,उपदेश किया, १८. व्यक्तिगत, अपनी ।

पद्यार्थ :

सुषुम्ना में दृष्टिधारें स्थिर होने पर तीसरे तिल का ज्योतिर्मय विन्दु दिखाई पड़ता है ॥ टेक॥ वहाँ तेज प्रकाश चकमकाता हुआ जगमग करता है। मोती, हीरे और ध्रुव तारा-सा प्रकाश होता है और बिजली भी चमकती है ॥१॥ विभिन्न ज्योतियाँ जलने के साथ बिना मँजीरे या अन्य वाद्ययंत्रों के अनाहत ध्वनि (बिना ठोकर से प्रकट ध्वनि) गूंजती है। विभिन्न ज्योतियों को देखती और ध्वनियों को सुनती हुई सुरत प्रेम में मस्त होकर स्वामी परमात्मा (से मिलने) के मार्ग पर चलती है ॥२॥ युक्ति जाननेवाले, सदाचारी सच्चे भक्त इसी मार्ग पर चलते हुए सार ध्वनि (सारशब्द) को पकड़ते हैं और हृदय की जलन (संताप) को मिटाते हैं ॥३॥ एक मात्र सारशब्द ही स्वामी (परमात्मा) से मिलाता है । अन्य कोई शब्द नहीं। महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि संतों ने जो उपदेश किया है, उसी को मैंने भी कहा, यह मात्र मेरी व्यक्तिगत राय नहीं है ॥४॥

□□□□

(६४)

सुखमन[१] के झीना[२] नाल[३] से अमृत की धारा बहि रही ।
मीन[४] सूरत धार धर भाठा से सीरा[५] चढ़ि रही ॥ १ ॥
गुरु-मंत्र जप गुरु-ध्यान कर गुरु-सेव कर अति प्रीति[६] कर ।
गुरु की आज्ञा मान प्यारे कर सदा गुरु की कही ॥ २ ॥

उस नाल का झीना दुआरा[७] गुरु तुझे देंगे बता ।
दोउ नैन नासा मध्य सन्मुख सूई अग्र[८] दर[९] ले लही[१०] ॥३॥
तम फटे जोती भरे आकाश का तू सैर[११] कर ।
शब्द अनहत सार में मिल लह ले[१२] सतपद[१३] को सही ॥४॥
दुःख दर्द भव के सब मिटैं सतगुरु चरण नित सेइये[१४] ।
गुरु-भक्ति बिन कछु ना बने 'मेँहीँ' सकल[१५] सन्तन कही ॥५॥

शब्दार्थ :

१.सुषुम्ना, २. सूक्ष्म, ३.नलिका, छिद्र,४. मछली, ५.जल प्रवाह की उलटी दिशा, नीचे से ऊपर की ओर,६.प्रेम, ७.द्वार,८.सूई का अगला भाग, नोक, ९. प्रमाण, १०.ग्रहण करो,११.भ्रमण, १२.प्राप्त करो, ग्रहण करो,१३.शब्दातीत पद, परमपद, १४. सेवा करो, १५. सभी ।

पद्यार्थ :

सुषुम्ना की सूक्ष्म नलिका (दशम द्वार, ब्रह्मरंध्र) से (ज्योति और नादरूप) अमृत की धारा बह रही है। सुरत रूप मछली उस धारा को पकड़कर उसके प्रवाह की उलटी दिशा में अर्थात् उसके उद्गम की ओर चढ़ती जाती है।।१।। अत्यन्त प्रेमपूर्वक गुरु की सेवा करो, गुरु-प्रदत्त मंत्र का मानस जप करो और गुरु के स्थूल रूप का मानस ध्यान करो। हे प्यारे! गुरु की आज्ञा मानकर सदा उनकी कही बातों को करते रहो (आचरण में उतारते रहो)।।२।। गुरु तुम्हें सुषुम्ना की नलिका का सूक्ष्म-द्वार बतला देंगे । वह स्थान दोनों आँखों के बीच नाक के सामने सूई की नोक की तरह सूक्ष्म है। उसे ग्रहण करो ।।३।। (ऐसा करने से) तुम्हारे नयनाकाश का अंधकार मिट जाएगा, तुम ज्योति से आपूरित आकाश में भ्रमण करोगे । (अंततः) तुम अनाहत—सारशब्द में लीन होकर सतपद (शब्दातीत परम पद) को प्राप्त करोगे ।।४।। इसतरह तुम्हारे सभी सांसारिक दुःख-दर्द समाप्त हो जाएँगे । पर, इसके लिए नित्यप्रति सद्गुरु के चरणों की सेवा करो । सभी संतों ने कहा है कि गुरु-भक्ति के बिना कुछ भी (परमात्म-भक्ति) नहीं बनेगी।। ५।।

(६५)

गंग जमुन जुग[१] धार मधहि[२] सरस्वति बही ।
फुटल मनुषवा के भाग[३] गुरु गम[४] नाहिं लही ॥१॥
सतगुरु सन्त कबीर नानक गुरु आदि कही ।
जोइ ब्रह्माण्ड सोइ पिण्ड अन्तर कछु अहइ[५] नहीं ॥२॥
पिंगल[६] दहिन गंग[७] सूर्य इंगल[८] चन्द जमुन[९] बाईं ।
सरस्वति सुषमन बीच चेतन जलधार नाईं[१०] ॥३॥
सतगुरु को धरि ध्यान सहज स्त्रुति[११] शुद्ध करी ।
सनमुख बिन्दु निहारि सरस्वति न्हाय[१२] चली ॥४॥
होति जगामगि जोति सहसदल पीलि[१३] चली ।
अद्भुत त्रिकुटी की जोति लखत स्त्रुति सुन्न रली[१४] ॥५॥
सुन मद्धे[१५] धुन सार सुरत मिलि चलति भई ।
महा सुन्य गुफा भँवर होइ सतलोक गई ॥६॥
अलख अगम्म[१६] अनाम सो सत पद सूर्त[१७] रली ।
पाएउ पद निर्वाण सन्तन सब कहत अली[१८] ॥७॥
छूटेउ दुख को देश गुरु गम पाय कही ।
सतगुरु देवी साहब दया 'मेँहीँ' गाइ दई ॥८॥

शब्दार्थ :

१. युगल, दोनों, २. मध्य, बीच, ३. भाग्य, ४. गुरु से प्राप्त होने योग्य, ५. हैं, ६. पिंगला नाड़ी, ७. गंगा, ८. इड़ा नाड़ी, ९. यमुना, १०.की तरह, ११. सुरत, १२. नहाकर, स्नान कर,१३. प्रवेश कर, पारकर, १४. मिली, मिल जाती है,१५.मध्य में, बीच में,१६.अगम, जहाँ इन्द्रियाँ न पहुँचे,१७. सुरत, १८. सखी ।

पद्यार्थ :

शरीर के अंदर गंगा और यमुना की युगल धाराओं के बीच सरस्वती बहती है। उस मनुष्य का भाग्य फूटा हुआ है (अर्थात् उसका दुर्भाग्य है), जिसने गुरु से प्राप्त होने योग्य इस ज्ञान को ग्रहण नहीं किया ।।१।। संत

कबीर साहब और गुरु नानकदेव आदि सद्‌गुरुओं ने कहा है कि जो ब्रह्माण्ड (बाह्य जगत) में है, वही पिंड (शरीर) में है। दोनों में (तत्वतः) कुछ भी अंतर नहीं है॥२॥ दायीं ओर की पिंगला नाड़ी गंगा या सूर्य नाड़ी भी कहलाती है और बायीं ओर की इड़ा नाड़ी यमुना या चन्द्र नाड़ी। इन दोनों के बीच सुषुम्ना नाड़ी या सरस्वती चेतन जलधारा की तरह बहती है॥३॥ सद्‌गुरु के स्थूल रूप का ध्यान करके सुरत स्वाभाविक रूप से अपने को पवित्र करती है और सामने के ज्योतिर्मय विन्दु में दृष्टिधारें स्थिर करती है, मानो सरस्वती में स्नान करके आगे बढ़ती है॥४॥ फिर सहस्त्रदल कमल, जहाँ जगमग ज्योति होती रहती है, उसे पारकर सुरत आगे चलती है और त्रिकुटी की आश्चर्यमयी ज्योति को देखती हुई शून्य में मिल जाती है॥५॥ शून्य मंडल के मध्य में सुरत सारध्वनि से मिलकर आगे चलती है और महाशून्य, भँवर गुफा को पार करके सतलोक (परमात्मधाम) पहुँच जाती है॥६॥ अलख, अगम, अनाम और सतपद कहलाने वाले इस लोक में सुरत समा जाती है। हे सखी! सभी संत कहते हैं कि इसतरह जीवात्मा निर्वाण पद (मोक्ष) को प्राप्त करती है॥७॥ इसप्रकार दुःख का देश (माया मंडल) छूट जाता है। महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि सद्‌गुरु बाबा देवी साहब की कृपा से मैंने उनसे (गुरुदेव से) प्राप्त ज्ञान को गाकर कह दिया॥८॥

□□□□

(६६)

गंग युमन सरस्वती संगम पर सन्ध्या[१] करु नित भाई ॥
दृष्टि युगल कर अंगुल द्वादश[२] पर दृढ़ थिर धरु ठहराई ।
प्राण स्पन्द[३] बन्द होइ जाई, मनहु तजइ चंचलाई ॥
अणुहू से अणुरूप[४] ब्रह्म स¯ , सहजहिं सुरति मिलाई ।
सुखदायिनी ध्वनि सहज गायत्री[५], हो तहँ सुनहु समाई ॥
ध्वन्यात्मक गायत्री[६] ध्याना, जो जन करइ सदाई[७] ।
'मेँहीँ' तासु ताप[८] सब नासै, मुक्ति दिशा सो जाई ॥

शब्दार्थ :

१. ईश्वरोपासना, ध्यानाभ्यास, २. बारह, ३. प्राण की गति, ४. श्वास-

प्रश्वास, ४. अणु से भी छोटा, सूक्ष्माति सूक्ष्म, ५. अनहद नाद, अजपा जप*, ६. ध्वन्यात्मक सारशब्द, ७. सदा, सतत्, ८. दुःख; दैहिक, दैविक और भौतिक दुःख।

पद्यार्थ :

हे भाई! गंगा, यमुना और सरस्वती के संगम पर अर्थात् इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना के मिलन-स्थान पर प्रतिदिन ईश्वरोपासना (ध्यानाभ्यास) करो। दोनों दृष्टिधारों को बारह अंगुल की दूरी पर (सामने आज्ञाचक्र के केन्द्र में) दृढ़तापूर्वक स्थिर करके ठहराओ। ऐसा करने से प्राण (श्वास-प्रश्वास) की गति बंद हो जाएगी और मन भी अपनी चंचलता त्याग देगा॥१॥ ब्रह्म के अणु से भी छोटे (सूक्ष्माति सूक्ष्म) रूप-ज्योतिर्मय विन्दु में सुरत को स्वाभाविक रूप से लीन कर वहाँ हो रही सहज सुखदायिनी गायत्री ध्वनियों (अनहद नादों) को तन्मयतापूर्वक सुनो॥२॥ महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि जो भक्त नियमित रूप से ध्वन्यात्मक गायत्री (सारशब्द) का ध्यान करते हैं, उनके (दैहिक, दैविक और भौतिक) सभी ताप अर्थात् दुःख विनष्ट हो जाते हैं और वे मुक्ति की दिशा में गमन करते हैं॥३॥

टिप्पणी :

गायत्री — एक वैदिक छन्द का नाम। एक पवित्र मंत्र का नाम जिसे सावित्री भी कहते हैं। वैदिक धर्म में यह मंत्र बड़े महत्त्व का माना जाता है। मनु का कथन है कि प्रजापति ने अकार, उकार और मकार वर्णों, भूः, भुवः और स्वः तीन व्याहृतियों तथा सावित्री मंत्र के तीनों पादों को ऋक। यजुः और सामवेद से यथाक्रम निकाला है। सावित्री मंत्र यह है—

'तत्सवितु- वरेण्यं। भर्गो देवस्य धीमहि। धियो योनः प्रचोदयात्'

(विशेष जानकारी के लिये पढ़िये वेद दर्शन-योग पृष्ठ-२१) सगुण साकार ब्रह्म के श्रीमुख से निःसृत वर्णात्मक सगुण नाम को 'गीता' कहते हैं और निर्गुण निराकार ब्रह्म से निःसृत ध्वन्यात्मक निर्गुण नाम को 'गायत्री' कहते हैं। इसकी विशेष जानकारी के लिये देखिये पृष्ठ ९।

□□□□

* 'जाप अजपा हो सहज ध्वनि, परखि गुरुगम धारिये
होत ध्वनि रसना बिना, करमाल बिन निरवारिये।' (संत कबीर साहब)
'अनहद अपने साथ है, अजपा ताको नाम।
अमल करो अपनाइ के, अमर नाम घर ठाम॥' (परमहंस लक्ष्मीनाथ)

(६७)

नोकते सफेद[१] सन्मुख झलके[२] झला झली[३] ।
शहरग[४] में नजर थिर कर[५] तज मन की चंचली[६] ॥१॥
सन्तों ने कही राह यही शान्ति की असली[७] ।
शान्ति को जो चाहता तज और जो नकली[८] ॥२॥
यह जानता कोइ राजदाँ[९] गुरु की शरण जो ली ।
इनके सिवा न आन[१०] जो मद[११] मान[१२] चलन[१३] ली ॥३॥
अति दीन[१४] होके जिसने सत्संग सुमति[१५] ली ।
अपने को सोई 'मेँहीँ' गुरु शरण में कर ली[१६] ॥४॥

शब्दार्थ :

१. सफेद नुक्ता, श्वेत बिन्दु, २. दिखाई पड़ता है, ३. चमकता हुआ, ४. सुषुम्ना, आज्ञाचक्र, ५. स्थिर कर, ६. चंचलता, ७. सच्चा, ८. झूठा, असार, ९. युक्ति (भेद) जानने वाले, १०. अन्य, दूसरा, ११. अहंकार, १२. प्रतिष्ठा, १३. आचरण, १४. नम्र, १५. सुबुद्धि, १६. कर लिया ।

पद्यार्थ :

अन्तस्साधना के साधक को (नयनाकाश में) सामने एक श्वेत विन्दु चमकता हुआ दिखलाई पड़ता है। शहरग (सुषुम्ना) में दृष्टि स्थिर करके मन की चंचलता को मिटा दो ॥१॥ संतों ने शांति प्राप्त करने का सच्चा मार्ग यही कहा है। अतः जो शांति प्राप्त करना चाहता है, वह इसके अतिरिक्त अन्य झूठे (असार) मार्गों को त्याग दे ॥२॥ इस मार्ग को वही जानता है, जिसने सद्‌युक्ति जानने वाले सद्‌गुरु की शरण ली है। इसके अलावा दूसरे ऐसे लोग इस मार्ग को नहीं जान पाते, जिन्होंने अहंकार और प्रतिष्ठा-प्राप्ति का आचरण अपनाया है॥३॥ महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि जिन्होंने अत्यन्त नम्रता के साथ सत्संग करके सुबुद्धि प्राप्त की है, उन्होंने अपने को गुरु की शरण में कर लिया है॥४॥

□□□□

(६८)

यहि विधि जैबै भव पार मोर[१] गुरु भेद[२] दिए ॥टेक॥
दृष्टि युगल कर लेवै सुखमनियाँ हो,
देखबै अजब रंग रूप ॥१॥
तममा[३] जे फुटि[४] फुटि ऐतै[५] पँच रंगवा हो,
बिजली चमकि ऐतै तार[६] ॥२॥
सुरति जे चढ़ि चढ़ि चन्द निहारतै हो,
लखतै सुरज ब्रह्म रूप ॥३॥
सुन्न धँसिये स्त्रुति शब्द समैते हो,
पहूँचि मिलिये जैतै सत्त[७] ॥४॥
सन्तन केर[८] यह भेद छिपल छल[९],
बाबा कयल[१०] परचार[११] ॥५॥
तोहर कृपा से बाबा आहो[१२] देवी साहब,
'मेँहीँ' जग फैली गेल भेद ॥६॥

शब्दार्थ :

१. मेरे, २. युक्ति, ३. अंधकार, ४. फटकर, ५. आएगा, प्रकट होगा, ६. तारा, ७. सतपद, परमपद, ८. का, ९. छिपा हुआ था, १०. किया, ११. प्रचार, १२. हे ।

पद्यार्थ :

मेरे गुरुदेव ने मुझे जो युक्ति बतलायी है, उसी के अनुसार (आचरण करके) मैं जन्म-मरण के चक्र से परे चला जाऊँगा ॥टेक॥ मैं अपनी दोनों दृष्टिधारों को सुषुम्ना में संयुक्त कर लूँगा (जोड़ लूँगा) और (ज्योति के) आश्चर्यमय रंग-रूपों को देखूँगा ॥१॥ (नयनाकाश का) अंधकार फट-फटकर (पाँच तत्वों का) पाँच रंग प्रकट होगा और बिजली की चमक के साथ तारे भी दिखलाई पड़ेंगे ॥२॥ सुरत आगे चढ़ते-चढ़ते (सहस्त्रदल कमल में) चन्द्रमा को निहारेगी और (त्रिकुटी में) सूर्यब्रह्म के रूप का दर्शन भी करेगी ॥३॥ सुरत शून्य में धँसकर शब्द मंडल में प्रवेश करेगी और अन्त में सतपद (परम पद) में पहुँचकर उसमें समा जाएगी ॥४॥

संतों द्वारा उपदिष्ट ये युक्तियाँ गुप्त थीं। बाबा देवी साहब ने (जन सामान्य में) इसका प्रचार किया। महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि हे (सद्गुरु) बाबा देवी साहब! आपकी कृपा से यह गुप्त भेद (रहस्य) संसार भर में फैल गया ॥५॥

□□□□

(६९)

कजली

सूरति दरस करन[१] को जाती, तकती[२] तीसरि तिल खिड़की[३] ॥ टेक ॥
जोति बिन्दु ध्रुवतार[४] इन्दु[५] लखि, लाल भानु[६] झलकी[७] ।
बजत विविध विधि[८] अनहद शोरा[९], पाँच मण्डलों की ॥ १ ॥
सन्तमते का सार भेद यह, बात कही उनकी ।
समझा 'मेँहीँ' लखा नमूना, बात है सत[१०] हित[११] की ॥ २ ॥

शब्दार्थ :

१. दर्शन करने, २. देखती है, निहारती है, ३. खिड़की, छिद्र, ४. ध्रुवतारा, ५. चन्द्रमा, ६.सूर्य, ७. दिखलाई पड़ता है, ८.अनेक प्रकार, ९. शोर, ध्वनि, १०. सच्ची, ११. कल्याण।

पद्यार्थ :

परमात्म-दर्शन के लिए चली हुई सुरत पहले तीसरे तिल की खिड़की (सुषुम्ना, आज्ञाचक्र के केन्द्र) को निहारती है ।।टेक।। (ऐसा करने से) ज्योतिर्मय विन्दु, ध्रुवतारा और चन्द्रमा देखने के बाद लाल सूर्य भी दिखलाई पड़ता है। साथ ही सृष्टि के पाँच मण्डलों की अनेक प्रकार की अनहद ध्वनियाँ बजती (हुई सुनाई पड़ती) हैं ।।१।। महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि संतमत में भक्ति की युक्ति का यह सार है। यहाँ मैंने उन संतों की बातें कही है। मैंने उनकी बातों को समझा और (अपने अंदर) उसका नमूना देखा है (अर्थात् उस ज्ञान का प्रत्यक्षीकरण किया है)। ये बातें सच्ची और कल्याणकारी हैं ।।२।।

□□□□

(७०)

कजली

भाई योग हृदय वृत[१] केन्द्र बिन्दु, जो चमचम[२] चमकै ना ॥ टेक* ॥
नजर जोड़ि तकि[३] धँसै ताहि में, धुनि सुनि पावै ना ।
सुरत शब्द की करै कमाई[४], निज घर[५] जावै ना ॥ १ ॥
निज घर में निज प्रभु को पावै, अति हुलसावै[६] ना ।
'मेँहीँ' अस[७] गुरु सन्त उक्ति[८], यम-त्रास[९] मिटावै ना ॥ २ ॥

शब्दार्थ :

१. सुषुम्ना, आज्ञाचक्र, २. तेज प्रकाश युक्त, *गीत का पहला पद। ३. देखते हुए, ४. धनोपार्जन, ५. अपना घर, परमात्म-धाम, ६.उल्लसित होता है,७. ऐसा, ८.कथन, वचन, ९. मृत्यु-भय।

पद्यार्थ :

हे भाई! योग हृदय वृत्त (सुषुम्ना, आज्ञाचक्र) का जो केन्द्र बिन्दु है, वह तेज प्रकाश से युक्त होकर चमकता है ॥ टेक ॥ जब साधक दोनों दृष्टिधारों को जोड़कर उसे देखते हुए उसमें प्रवेश करता है, तो वह अन्तर्नाद सुन पाता है। जब वह सुरत शब्द-योग (नादानुसंधान) रूप धनोपार्जन करता है तो अंततः अपने घर (परमात्म-धाम) को चला जाता है ।।१।। अपने घर में अपने प्रभु-परमात्मा को पाकर वह बहुत उल्लसित होता है। महर्षि मेँहीँ परमहंस जी महाराज कहते हैं कि इस प्रकार (की साधना से) मृत्यु का भय समाप्त हो जाता है, ऐसा गुरु और संतों का कथन है ।।२।।

□□□□

(७१)

ऐन महल[१] पट बन्द कै, चलु सुखमन घाटी[२] हो ॥ धुआ ॥
दृष्टि डोरि[३] स्थिर रहे, तम बिचहि में फाटी हो ।
खुले राह असमान[४] की, टूटय भ्रम टाटी[५] हो ॥१॥
ज्योति मण्डल धँसि धाय के[६], निरखत वैराटी[७] हो ।
धुर धुन[८] गहि[९] लहि[१०] परम पद, बन्धन लेहु काटी हो ॥२॥
सन्तन की यह राज[११] रही, भेख[१२] भर्म[१३] से पाटी हो ।
'मेँहीँ' देवी साहब दया, दीन्हीं भ्रम काटी हो ॥३॥

शब्दार्थ :

१. नयन रूपी भवन, २. सुषुम्ना घाट, ३. सिमटी हुई दृष्टि, ४. आसमान, आकाश, ५. दीवार, ६. शीघ्रतापूर्वक प्रवेशकर, ७. ब्रह्माण्ड की लीलाएँ, ८.आदि नाद, सारशब्द, ९. ग्रहण कर, पकड़कर, १०.प्राप्त करो, ११. रहस्य, भेद, १२. वेश-भूषा, १३. भ्रम, अज्ञानता ।

पद्यार्थ :

नयन रूपी भवन के (पलक रूप) कपाट को बंद करके सुषुम्ना घाट की ओर चलो ॥ धुआ ॥ वहाँ यदि सिमटी हुई दृष्टि स्थिर रह जाए तो अंधकार बीच से फट जाता है। आंतरिक आकाश का द्वार (दशम द्वार) खुल जाता है और भ्रम की दीवार गिर जाती है ॥१॥ साधक ज्योतिमंडल में शीघ्रतापूर्वक प्रवेश कर ब्रह्माण्ड की लीलाओं को देखता है। (इस तरह की साधना करके) आदिनाद (सारशब्द) को पकड़कर परमात्म-पद प्राप्त करो और (शरीर एवं संसार के) बंधनों को काट डालो ॥२॥ महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि संतों (की साधना) का यह भेद वेश-भूषा और अज्ञानता (जनित आडम्बरों) से ढँका हुआ था। बाबा देवी साहब ने दया करके इन भ्रमों को मिटा दिया ॥३॥

□□□□

(७२)

आओ वीरो[१] मर्द बनो अब,
जेल तुम्हें तजना होगा ।
मन-निग्रह[२] के समर क्षेत्र[३] में,
सन्मुख[४] थिर डटना होगा ॥१॥
गुरुपद[५] धर कर ध्यान से शूरो,
दृष्टि अड़ा दो[६] सुषमन में ।
मन की चंचलताई से,
बल कर-करके[७] बचना होगा ॥२॥
वक्त[८] नहीं है ऐ वीरो अब,
गाफिल[९] होकर सोने का ।
बिन्दु राह से निकल बहादुर,
तम मण्डल टपना[१०] होगा ॥३॥
दामिनि[११] दमकै चन्दा चमकै,
सूर्य तपै[१२] जोती मण्डल ।
इस मण्डल से आगे वीरो,
और तुम्हें बढ़ना होगा ॥४॥
शब्द मण्डल में सार शब्द ध्वनि,
गुरु गम[१३] होकर धर लेना ।
जगत-जेल को इसी युक्ति से,
सुन 'मेँहीँ' तजना होगा ॥५॥

शब्दार्थ :

१. पुरुषार्थ, साहसी, २. मनोनिरोध, मन को विषयों में जाने से रोकने की क्रिया, ३. युद्ध-भूमि, ४. सामने, ५. गुरु के चरणकमल, ६. स्थिर करो, ७.पूरी शक्ति लगाकर, ८. समय, ९. बेपरवाह, १०.पार करना,११. बिजली, १२. तपता हुआ, तेजोमय, १३. गुरु निर्देशित मार्ग ।

पद्यार्थ :

ऐ बहादुरो! आओ! अब पुरुषार्थी बनकर (शरीर और संसार रूपी)

जेल से तुम्हें निकलना पड़ेगा। अतः मनोनिग्रह (मनोनिरोध) की युद्ध-भूमि में सामने (आज्ञाचक्र के केन्द्र पर) दृढ़तापूर्वक स्थिर हो जाओ॥१॥

गुरु के चरणकमल का मानस ध्यान करके दोनों दृष्टिधारों को सुषुम्ना में स्थिर करो। इसके लिए मन की चंचलता (मन का बाह्य विषयों में भागना) को पूरी शक्ति लगाकर रोकना होगा॥२॥

ऐ वीरो! (दुर्लभ मनुष्य शरीर मिल जाने पर) अब बेपरवाह होकर (विषयों में) पड़े रहने का समय नहीं है। बिन्दु राह (दशमा द्वार) से निकलकर अंधकार-मंडल को पार करना होगा॥३॥

(अंधकार मंडल पार करने पर) प्रकाश मंडल में तुम बिजली की छटक, चमकता हुआ चन्द्रमा और तेजोमय सूर्य देखोगे, पर इस प्रकाश मंडल से भी और आगे तुम्हें बढ़ना होगा (अर्थात् शब्द मंडल में जाना होगा)॥४॥

वहाँ शब्द मंडल में गुरु-निर्देशित मार्ग पर चलकर तुम सार-शब्द को पकड़ लेना। महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि ऐ वीरो! सुनो, इसी युक्ति से जगत रूपी जेल का त्याग करना होगा॥५॥

□□□□

(७३)

साँझ[१] भये[२] गुरु सुमिरो भाई, सुरत अधर ठहराई।
गुरु हो सुरत अधर ठहराई॥१॥
सुषमन सुरति लगाइ के सुमिरो, मुखतें रहहु चुपाई[३]।
बाहर के पट[४] बन्द करो हो, अन्तर पट खोलो भाई॥२॥
सूर चन्द[५] घर एके लावो, सन्मुख दृष्टि जमाई[६]।
ब्रह्म जोति को करो उजेरो[७], अन्धकार मिटि जाई॥३॥
सूक्ष्म सुरत सुषमन होइ शब्द में, दृढ़ से धरो ठहराई।
सार शब्द परखो[८] विधि एही, भव बन्धन जरि जाई[९]॥४॥
बुद्धि परे चिन्तन से न्यारा, अगम अनाम कहाई।
रह 'मेँहीँ' गुरु सेवा लीना[१०], तब ही होइ रसाई[११]॥५॥

शब्दार्थ :

१. संध्या*, २. हुई, हो गई, ३. मौन, ४. कपाट, ५. सूर्यनाड़ी और चन्द्रनाड़ी, पिंगला और इड़ा नाड़ी, ६. स्थिर कर, ७. प्रकाशित, ८. पहचान करो, ९. जल जाएँगे, १०. लीन, अनुरक्त, ११. पहुँच।

पद्यार्थ :

हे भाई! संध्या हो गई, सुरत को अधर (अन्तराकाश) में स्थिर करके गुरु की उपासना करो॥१॥ सुषुम्ना में अपनी सुरत को संलग्न करके जब तुम उपासना करो तो मुँह को मौन रखो, बाहर के अन्य कपाटों (आँख, कान आदि) को भी बंद रखो और अंतर के (अधंकार, प्रकाश और शब्द रूप) आवरणों को हटाओ॥२॥ (अन्तराकाश में) सामने दृष्टिधारों को स्थिर करके सूर्यनाड़ी और चन्द्रनाड़ी (अर्थात् पिंगला और इड़ा नाड़ी) को एक ही सुषुम्ना रूप घर में केन्द्रित करो। ऐसा करके ब्रह्मज्योति प्रकाशित करो, जिससे कि (सामने का) अंधकार नष्ट हो जाए॥३॥ सिमटी हुई सुरत को सुषुम्ना होकर शब्द मंडल में ले जाओ और वहाँ दृढ़तापूर्वक टिकाओ। इस प्रकार सारशब्द (आदिनाद) की पहचान करो। ऐसा करने से संसार के सारे बंधन जल जाएँगे (नष्ट हो जाएँगे)॥४॥ महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि गुरु की सेवा में लीन (अनुरक्त) रहो, तभी बुद्धि और चिन्तन शक्ति से परे जो अगम, अनाम कहलाने वाला परमात्म-पद है, उसमें तुम्हारी पहुँच हो सकेगी॥५॥

□□□□

* (वैदिक धर्म में त्रिकाल सन्ध्या होती है, वे हैं-प्रातः, मध्याह्न और सायं।) संध्या = संधि काल, मिलन-काल; रात्रि और दिन का मिलन-काल (प्रातः), पूर्वाह्न और अपराह्न का मिलन-काल (दोपहर) तथा दिन और रात्रि का मिलन-काल (संध्या)।

(७४)

कजली

मन तुम बसो तीसरो नैना[१] महँ[२] तहँ[३] से चल दीजो रे ॥ टेक ॥
स्थूल नैन निज धार दृष्टि दोउ सन्मुख जोड़ो रे ।
जोड़ि जकड़ि[४] सुष्मन में पैठो[५] गगन उड़ीजो रे ॥ १ ॥
तन संग त्यागि त्यागि उड़ि लीजो धार[६] धरीजो रे ।
'मेँहीँ' चेतन जोति शब्द की सो पकड़ीजो रे ॥ २ ॥

शब्दार्थ :

१. तीसरा नेत्र, दशम द्वार, २. में, ३. वहाँ, तहाँ, ४. दृढ़तापूर्वक, ५. प्रवेश करो, ६. चेतन धार ।

पद्यार्थ :

ऐ मेरे मन! तुम तीसरे नेत्र (दशम द्वार) में निवास करो और वहाँ से (आंतरिक यात्रा के लिए) आगे चलो ॥ टेक॥

अपनी स्थूल आँखों की दोनों दृष्टिधारों को (नयनाकाश में) सामने मिलाओ । फिर दृढ़तापूर्वक सुषुम्ना में प्रवेश कर जाओ और आंतरिक आकाश में ऊपर उड़ो (उठो) ॥१॥

महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि (अन्तस्साधना के अभ्यास से) स्थूल-सूक्ष्मादि शरीरों का संग त्याग करते हुए आगे उड़ो और उस आंतरिक चेतन धारा को पकड़ो, जो ज्योति और नाद* (शब्द) रूप में है ॥२॥

□□□□

---

* 'ब्रह्म प्रणव संधानं नादो ज्योतिर्मय: शिव:। स्वमाविर्भवेदात्मा मेघापायेऽ शुमानिव।।'
–नाद बिन्दूपनिषद् (ऋग्वेद का)

प्रणव-ब्रह्म के योग (नादानुसन्धान-योग) से वह नाद प्रकट होता है, जो ज्योतिर्मय और कल्याणकारी है; और वह बादल के छिन्न-भिन्न हो जाने पर जैसे सूर्य चमकता है, वैसे ही आत्मा स्वयं प्रकाशित होता है।

(७५)

जहाँ सूक्ष्म नाद ध्वनि आज्ञा[१] आज्ञाचक्र करो डेरा[२] ।
द्वार सूक्ष्म सुष्मन तिल खिड़की पील[३] करो पारा ॥ १ ॥
नयन कान दोउ जोड़ि छोड़ि करि मन मानस[४] सकलो[५] ।
टुक[६] टिको[७] सामने प्रेम नेम[८] करि अधर डगर धर लो ॥ २ ॥
जगमग जोति होति ध्वनि अनहद गैब[९] का बज बाजा ।
ध्वनि सुनि सुनि चढ़ना सत ध्वनि धरना 'मेँहीँ' सर[१०] काजा[११] ॥ ३ ॥

शब्दार्थ :

१. अनुमति की ध्वनि, २. निवास, ३. पिल, प्रवेश कर, ४. मन के संकल्प-विकल्प, गुणावन, ५. सभी, ६. थोड़ी देर, अल्प समय, ७. रुको, ८. नियम, विधि, ९. परमात्मा, १०. सिद्ध होना, पूर्ण होना, ११. कार्य ।

पद्यार्थ :

जिस आज्ञाचक्र के केन्द्र से सूक्ष्म नाद के रूप में अंत:प्रवेश की आज्ञा-ध्वनि (अनुमति की ध्वनि) नि:सृत हो रही है, वहाँ अपना निवास बनाओ । सुषुम्ना या तिल खिड़की कहलाने वाले उस सूक्ष्म द्वार में प्रवेश कर (अंधकार मंडल से) पार हो जाओ ॥१॥

आँख और कान को बंद करके मन के सभी संकल्प-विकल्पों (गुणावनों) को त्याग दो। विधिपूर्वक प्रेम से (नयनाकाश में) सामने थोड़ी देर भी रुको और अन्तराकाश के मार्ग को पकड़ लो ॥२॥

(तुम्हारे अंदर) ज्योति जगमग करती है, (जड़ात्मक मंडलों की) अनहद ध्वनियाँ होती है और परमात्मा का बाजा (सत् ध्वनि, सारशब्द) बजता है। महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि केन्द्रीय ध्वनियों को क्रमश: सुनते हुए ऊपर चढ़ते जाना और अंतत: सतध्वनि (सारशब्द) को ग्रहण कर लेना । इस तरह तुम्हारा (परमात्म-भक्ति रूप) कार्य सिद्ध (पूर्ण) हो जाएगा ॥३॥

□□□□

(७६)

भैरवी

योग हृदय वृत्त[१] केन्द्र बिन्दु सुख सिन्धु[२] की खिड़की अति न्यारी ।
स्थूल धार खिन्नहु[३] से खिन्नहु जेहि होइ कबहुँ न हो पारी ॥१॥
मन सह चेतन धार सुरत ही केवल पैठ[४] सकै जामें ।
जेहि हो गमनत[५] छुटत पिण्ड ब्रह्माण्ड खण्ड[६] सुधि[७] हो जामें ॥२॥
अपरा परा पर क्षर अक्षर पर सगुण अगुण पर जामें हो ।
चलि पहिचानति[८] सुरति परम प्रभु भौ दुःख[९] टरि चलि[१०] जामें हो ॥३॥
जामें पैठत सुनिय अनाहत शब्द की खिड़की याते[११] जो ।
ब्रह्म ज्योति भी जामें झलकत ज्योति द्वार हू याते जो ॥४॥
दृष्टि जोड़ि एक नोक बना जो ताकै देखे याको[१२] सो ।
'मेँहीँ' अति मेँहीँ[१३] ले द्वारा[१४] सतगुरु कृपा पात्र हो सो ॥५॥

शब्दार्थ :

१. आज्ञाचक्र, सुषुम्ना, २. सुख का समुद्र, परमात्म-पद, ३. सूक्ष्म, ४. प्रवेश, ५. गमन करने से, ६. स्तर, ७. ज्ञान, ८. पहचानती है, ९. जन्म-मरण का दुःख, १०. टलता है, मिटता है, ११. इसलिए, १२. इसको, १३. सूक्ष्म, १४. द्वार प्राप्त करता है ।

पद्यार्थ :

आज्ञाचक्र का केन्द्र विन्दु, सुख-सिन्धु (परमात्म-पद) में जाने का विलक्षण द्वार है। (शरीर में फैली हुई) स्थूल चेतनधार कितना भी सूक्ष्म-से-सूक्ष्म क्यों हो, उस द्वार से कभी भी गमन नहीं कर सकती है ॥१॥

मात्र मन के साथ (सिमटी हुई) चेतनधार अर्थात् सुरत ही उसमें प्रवेश कर सकती है, जिस होकर गमन करने पर पिण्ड (शरीर) छूटता है और ब्रह्माण्ड के सभी खंडों (स्तरों) का ज्ञान हो जाता है॥२॥

इस तरह सुरत जड़ (अपरा प्रकृति) और चेतन (परा प्रकृति) नाशवान और अविनाशी तथा सगुण और निर्गुण के परे पहुँचकर परम प्रभु परमात्मा की पहचान करती है, जिससे जन्म-मरण का दुःख मिट जाता है॥३॥

आज्ञाचक्र में प्रवेश करके ही अनाहत शब्द (सारशब्द) सुना जाता है, इसलिए आज्ञाचक्र को 'शब्द की खिड़की' कहते हैं और इसी में ब्रह्मज्योति भी दिखलाई पड़ती है, इसलिए यह 'ज्योति का द्वार' भी कहलाता है ॥४॥

दोनों दृष्टिधारों को एक विन्दु पर जोड़कर जो सुरत से वहाँ निहारता है, यानी उस द्वार को एकटक देखता है, महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि वही इस अत्यन्त सूक्ष्म द्वार को प्राप्त करने वाला साधक सद्गुरु का कृपा-पात्र होता है ॥५॥

(७७)

संकीर्त्तन

भजो सत्तनाम[१], सत्तनाम, सत्तनाम ए ॥१॥
सत्तनाम के आधार, पर ही थिर[२] है संसार ।
जानै सन्तन विचार ॥भजो०॥२॥
सत्तनाम धार[३] सार, सभी घट में पसार ।
पावै बेधै[४] असार[५] ॥भजो०॥३॥
धुन अनहत अपार[६], परम पुरुष को अकार[७] ।
सत्तनाम सोई सार ॥भजो०॥४॥
सत्तनाम परम नाद[८], सभी घट में बिसमाद[९] ।
मिलै सतगुरु परसाद[१०] ॥भजो०॥५॥

शब्दार्थ :

१. आदिनाम, सारशब्द, २. स्थिर, टिका, ३. चेतनधार, ४. बेधता है, छेदता है, ५. सारहीन, जड़ात्मक मंडल, ६. बहुत फैलाव वाला, सर्वव्यापक, ७. स्वरूप, आकार, ८. सर्वश्रेष्ठ नाद, ९. विस्मय, आश्चर्यमय, १०. कृपा ।

पद्यार्थ :

हे लोगो! सत्तनाम (आदिनाम, सारशब्द) का भजन (ध्यान) करो ॥१॥
इस सत्तनाम के आधार पर ही सारा संसार टिका हुआ है। इसका

तात्त्विक विचार संतजन जानते हैं॥२॥ सत्तनाम रूप सारधार यानी चेतनधार सभी शरीरों में व्यापक (फैला हुआ) है। इसे वे ही प्राप्त करते हैं, जो असार यानी जड़ात्मक प्रकृति मंडल को बेधकर-पार कर कैवल्य में प्रतिष्ठित होते हैं॥३॥ अनाहत ध्वनि सर्वव्यापक है और वह परमप्रभु परमात्मा का स्वरूप है। वही सारशब्द और सत्तनाम भी (कहलाता) है॥४॥ सत्तनाम ही परमनाद अर्थात् सर्वश्रेष्ठ नाद है, जो सभी शरीरों में आश्चर्यमय रूप से अवस्थित है और सद्गुरु की कृपा से प्राप्त होता है॥५॥

□□□□

(७८)

सतनाम[१] सतनाम सतनाम भज सतनाम,
भजो हो सत सतनाम, पूरन काम[२] ॥ १ ॥
सार शब्द सत्त शब्द चुम्बक धुन[३],
सोइ सतनाम प्रमाण, पूरन काम ॥ २ ॥
ओत प्रोत[४] सब घट-घट रमता[५],
याते राम अस नाम, पूरन काम ॥ ३ ॥
परा पश्यन्ती मध्यमा बैखरी,*
ये नहिं हैं सतनाम, पूरन काम ॥ ४ ॥
ध्वन्यात्मक निःअक्षर[६] सो है,
अआहत[७] अनाहत नाम, पूरन काम ॥ ५ ॥
अनहद अनाहत विमल[८] विलक्षण,
आकर्षक सो महान, पूरन काम ॥ ६ ॥
अति झीना[९] अति मधुर अनूपम[१०],
परम मोक्ष सुख धाम, पूरन काम ॥ ७ ॥
जो पावै पूरन प्रभु पावै,
जन्म न धारय[११] आन[१२], पूरन काम ॥ ८ ॥
अन्तर मुख होइ चढ़ै ब्रह्माण्ड में,
सोइ पावै सतनाम, पूरन काम ॥ ९ ॥

गुरु सेवी[१३] पावै यह 'मेँहीँ',
और न कोउ सक[१४] जान, पूरन काम ॥ १० ॥

शब्दार्थ :

१. आदिनाम, सारशब्द, २. कामनाओं को पूर्ण करनेवाला, ३. अपनी ओर आकर्षित करने वाली ध्वनि, ४. घुला-मिला, ५. व्याप्त, ६. जो अक्षरों के मेल से नहीं बना हो, ७.आहत नहीं, ८. निर्मल, पवित्र, ९. सूक्ष्म, १०.उपमा-रहित, ११. धारण करे, १२. दूसरा, अन्य, १३. गुरु-सेवा करनेवाला, १४. सके।

पद्यार्थ :

सतनाम (आदिनाम, सारशब्द) का भजन (ध्यान) करो, जो सभी कामनाओं को पूर्ण करनेवाला है॥१॥ जो सारशब्द और सतशब्द भी कहलाता है, जिस ध्वनि में अपनी ओर आकर्षित करने का गुण है, उस सतनाम की यह प्रामाणिकता है। यह सभी कामनाओं को पूर्ण करनेवाला है॥२॥ यह सतनाम सभी शरीरों में ओतप्रोत होकर (घुल-मिलकर) रमण करता है (व्याप्त है) इसलिए इसका नाम राम भी है। यह सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला है॥३॥ परा, पश्यन्ती, मध्यमा और बैखरी — ये चारों वाणियाँ सतनाम नहीं है। सतनाम सभी कामनाओं को पूर्ण करनेवाला है॥४॥ यह अक्षरों के मेल से बना हुआ नहीं है, बल्कि ध्वनिमय है। यह ठोकर से उत्पन्न (आहत) नाम भी नहीं है, बल्कि अनाहत नाम है। यह सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला है॥५॥ अनहद ध्वनियों के बीच यह निर्मल और दिव्य अनाहत ध्वनि है, जो अत्यन्त ही आकर्षक है। यह सभी कामनाओं को पूर्ण करनेवाला है॥६॥ यह नाम अत्यधिक सूक्ष्म, बहुत ही मधुर तथा उपमा-रहित, परम मुक्ति (कैवल्य मुक्ति) दिलानेवाला और सुख का भंडार है। यह सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला है॥७॥ जो साधक इसे प्राप्त कर लेता है, वह सर्वसमर्थ परमात्मा को पाता है और वह दूसरा जन्म धारण नहीं करता। यह सभी कामनाओं को पूर्ण करनेवाला है॥८॥ जो अपनी वृत्तियों को अन्तर्मुख करके (पिण्ड को त्याग) ब्रह्माण्ड में चढ़ता है, वही इस सतनाम को पाता है। यह सभी कामनाओं को पूर्ण करनेवाला है॥९॥ महर्षि मेँहीँ परमसहंजी महाराज कहते हैं कि गुरु की

सेवा करके व्यक्ति इस सतनाम को प्राप्त करता है, अन्य कोई इसे नहीं जान पाता। यह सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला है॥१०॥

***टिप्पणी :**

भारतीय अध्यात्मशास्त्रों में वाणी के चार प्रकार माने गये हैं — परा, पश्यन्ती, मध्यमा, और बैखरी । नाभि से उठने वाले नाद को 'परा' कहते हैं। जब वह हृदय में पहुँचता है, तब वह 'पश्यन्ती' कहलाता है। वहाँ से आगे बढ़ने, कंठ में आने पर 'मध्यमा' होता है और उससे ऊपर मुख में आने पर जब वह सबके सुनने योग्य होता है, तब उसे 'बैखरी' कहते हैं ।

'नाभि मध्य वाणी परा, हिय पश्यन्ती सुख्य ।
कण्ठ मध्यमा जानिये, कहूँ बैखरी मुख्य॥'

(संतचरण दासजी)

□□□□

(७९)

जय-जय राम[1], जय-जय राम, जय-जय राम कहु जय-जय राम,
जयति[2] जयति जय राम, हो राम राम ॥१॥
सबमें व्यापक सब तें न्यारा[3],
सब घट एकहि राम, हो राम राम ॥२॥
मेंहदी में लाली घीउ दूध में,
फूल में वास[4] समान, हो राम राम ॥३॥
रूप न रस नहिं, नहिं गन्ध परसन[5],
नहीं शब्द नहिं नाम, हो राम राम ॥४॥
एक अनीह[6] अरूप[7] अनामा[8],
अज[9] अव्यक्त[10] सो राम, हो राम राम ॥५॥
मन बुद्धि इन्द्रिन को गम[11] नाहीं,
आत्म-गम्य[12] सो राम, हो राम राम ॥६॥
पिण्ड में गुप्त ब्रह्माण्ड में गुप्त सो,
अत्यन्त विलक्षण राम, हो राम राम ॥७॥
पिण्ड ब्रह्माण्ड परे प्रत्यक्ष[13] सो,
सरब[14] परे पर धाम[15], हो राम राम ॥८॥

गुरु भगती करि गुरु गुर[16] लहि भजि[17],
'मेँहीँ' पाइये राम, हो राम राम ॥९॥

शब्दार्थ :

१. कण-कण में रमण करनेवाला, परमात्मा राम, २. जय हो, ३. भिन्न, विलक्षण, ४. गंध, ५. स्पर्श, ६. इच्छा-रहित, ७. रूप-रहित, ८. नाम-रहित, ९. अजन्मा, १०. अप्रकट, ११. गम्य, प्राप्य, प्राप्त होने योग्य, १२. आत्मा से प्राप्त होने योग्य, १३. साक्षात, दर्शन के योग्य, १४. सबसे, १५. श्रेष्ठ स्थान, १६. युक्ति, १७. भजन करके, उपासना करो ।

पद्यार्थ :

हे प्यारे लोगो! राम की जय, राम की जय, राम की जय कहो। (एक बार-दो बार ही नहीं) बारम्बार परमात्मा राम की जयजयकार करो॥१॥ वह राम समस्त प्रकृति मंडल में व्यापक रहते हुए भी सबसे भिन्न (विलक्षण) है। सभी शरीरों में वही एक परमात्मा राम विद्यमान है॥२॥ जिस प्रकार मेंहदी में लाली, दूध में घृत और फूल में सुगंध व्यापक है, उसी तरह वह राम सबमें व्यापक है॥३॥ वह रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द; इन पाँचों में कोई विषय नहीं है और उसका कोई नाम भी नहीं है॥४॥ जो एक, इच्छा-रहित, रूप-रहित, नाम-रहित, अजन्मा और अप्रकट है, वही वस्तुतः राम है॥ ५॥ मन, बुद्धि तथा अन्य इन्द्रियों के द्वारा भी वह प्राप्त होने योग्य नहीं है, बल्कि आत्मा के द्वारा जो ग्रहण होने योग्य है, वह राम है॥६॥ पिण्ड (शरीर) के साथ-साथ वह ब्रह्माण्ड (ब्राह्य जगत) में भी छिपा हुआ है, वह ऐसा विलक्षण (अलौकिक) है॥७॥ पिंड और ब्रह्माण्ड के परे जाने से तब उस परमात्मा राम के दर्शन होते हैं। (परमात्मा का) वह श्रेष्ठ स्थान सबसे परे है॥८॥ महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि गुरु की भक्ति करके उनसे युक्ति प्राप्त करो और फिर तद्नुकूल उपासना करो, तभी परमात्मा-राम को पाओगे ॥९॥

□□□□

(८०)

जय जय रामा जय जय राम कहु राम ॥१॥
राम कहु राम कहु राम कहु प्यारे हो,
राम कहु राम कहु रामा ॥ जय जय० ॥२॥
त्रिकुटी[१] परे शब्द-सरिता[२] पार में,
प्रत्यक्ष विराजैं[३] रामा ॥ जय जय० ॥३॥
अव्यक्त अगोचर भव पीड़ा[४] हर[५],
द्वन्द्व द्वैत बिन रामा ॥ जय जय० ॥४॥
अविगत[६] अन्त अन्त अन्तर पट[७],
सुरति पहुँचि लहे रामा ॥ जय जय० ॥५॥
सुरति शब्द सों चढ़िय अगम घर[८],
घट अन्तर पुजि[९] रामा ॥ जय जय० ॥६॥
'मेँहीँ' दास दया सतगुरु की,
पाइय पद निरवाना[१०] ॥ जय जय० ॥७॥

शब्दार्थ :

१. अन्तःसाधना के क्रम में मिलने वाला एक स्थान, जहाँ सूर्य-दर्शन होता है। २. शब्दों की नदी, शब्द-मंडल, ३. विद्यमान है, ४. जन्म-मरण का दुःख, ५. हरने वाले, दूर करने वाले, ६. कहीं से रिक्त नहीं, सर्वव्यापक, ७. अंधकार, प्रकाश और शब्दरूप आंतरिक आवरण, ८. परमात्मधाम, ९. उपासना करके, १०. मोक्ष, कैवल्य-मुक्ति।

पद्यार्थ :

हे प्यारे लोगो! राम की जय, राम की जय, राम की जय कहो। उनकी जय-जयकार करते हुए बारम्बार उनका (परमात्मा-राम का) नाम लो ॥१-२॥ त्रिकुटी के ऊपर शब्द मंडल के परे (शब्दातीत पद में) परमात्मा-राम प्रकट रूप में विद्यमान हैं॥३॥ वे अव्यक्त (अप्रकट), इन्द्रियों से नहीं जानने योग्य, जन्म-मरण के दुःख को हरने वाले तथा द्वंद्व और द्वैत से रहित हैं॥४॥ शरीर के अंदर स्थित (अंधकार, प्रकाश और शब्द मंडल रूप) आवरणों के अंत तक पहुँचने पर सुरत सर्वव्यापक परमात्मा

राम को प्राप्त करती है॥५॥ महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि सुरत शब्द-योग (नादानुसंधान) के द्वारा अपने अंदर ही परमात्मा-राम की उपासना करके अगम घर (परमात्म धाम) पहुँच जाओ। सद्गुरु की दया (से सद्युक्ति) प्राप्त कर इस प्रकार (साधना के द्वारा) निर्वाण (मोक्ष) पद प्राप्त करो ॥६-७॥

□□□□

(८१)

राम नाम अमर[१] नाम भजो भाई सोई।
सोई सत धुन सब घट-घट होई ॥१॥
परा न पश्यन्ति न, मधिमा[२] न बैखरि न,
वर्णात्मक[३] हतधुन[४] नहिं कोई ॥२॥
अनहत अनाहत परसावे[५] सत पद,
पहुँचि जहाँ पुनि, भव[६] नहिं होई ॥३॥
गुरु भेद धरि-धरि, दिव्य दृष्टि करि-करि,
तीन बन्द* बन्द करि, भजो नाम सोई ॥४॥
'मेँहीँ' मेँहीँ[७] धुनि, अन्तर अन्त सुनि,
सुरत रमे गुरु आश्रित[८] होई ॥५॥

शब्दार्थ :

१.जो मरे नहीं, अविनाशी, २.मध्यमा, ३.वर्णमय, वर्णरूप, ४.आहत ध्वनि, आघात से उत्पन्न ध्वनि, ५. स्पर्श कराती है, प्राप्त कराती है, ६. जन्म, ७. अति सूक्ष्म, सूक्ष्मतम, ८. निर्भर।

पद्यार्थ :

हे भाई ! राम नाम (आदिनाम, सारशब्द) अविनाशी नाम है, उसी का ध्यान करो। वह सतध्वनि सभी शरीरों में हो रही है॥१॥ वह ध्वनि परा, पश्यन्ति, मध्यमा, और बैखरी (देखें पृष्ठ-१३७) ; इन चारों ध्वनियों में कोई नहीं है। वह कोई वर्णात्मक शब्द भी नहीं है और न कोई आहत (आघात से उत्पन्न) शब्द ही ॥२॥ अनहत या अनाहत कहलाने

वाली वह ध्वनि सतपद (परमपद) को प्राप्त कराती है, जहाँ पहुँचने पर पुन: (संसार में) जन्म नहीं होता ॥३॥ सद्‌गुरु की युक्ति को हृदय में धारण करो और (दृष्टियोग अभ्यास द्वारा) दिव्य दृष्टि प्राप्त करके आँख, मुँह और कान; तीनों को बंद करो । तत्पश्चात परमात्मा के आदिनाम — सारशब्द का ध्यान करो।।४।। महर्षि मेँहीँ परमहंस जी महाराज कहते हैं कि अपने अंदर के अंतिम स्तर (कैवल्य मंडल) तक पहुँचने पर सुरत सूक्ष्मतम ध्वनि (सारशब्द) में लीन हो जाती है, लेकिन इसके लिए सद्‌गुरु पर निर्भर रहना आवश्यक है ।।५।।

*** टिप्पणी :**

यहाँ तीन बन्द कहने का तात्पर्य हठयोग में व्यवहृत मूल बन्ध, जालन्धर बन्ध और उडियान बन्ध से नहीं है, अपितु राजयोग का - आँख, कान और मुख बन्द करने से है। देखिए श्री गीतायोग प्रकाश अध्याय — छह । इसकी चर्चा अन्य संतों की वाणियों में भी हम पाते हैं, यथा —

आँख, कान, मुख बन्द कराओ । अनहद झींगा शब्द सुनाओ ॥
दोनों तिल एक तार मिलाओ । तब देखो गुलजारा है ॥
(संत कबीर साहब)

तीन बन्द लगाय के सुन अनहद टंकोर ।
नानक सुन्न समाधि में नहीं सांझ नहीं भोर ॥
(गुरु नानक देव)

तीनों बंद लगाय के अनहद सुनै टकोर ।
सहजो सुन्न समाधि में नहीं सांझ नहीं भोर ॥
(परम भक्तिन सहजो बाई)

* बन्द शब्द का व्यवहार एक ही स्थल पर लगातार दो बार किया गया है। इसका कारण यह है कि जब तक नादानुसन्धान के अभ्यास करने की गुरु आज्ञा न हो- केवल मानस जप, मानस ध्यान और दृष्टियोग के अभ्यास करने की गुरु आज्ञा हो तब तक दो ही बन्द (आँख बन्द और मुँह बन्द) लगाना चाहिये। नादानुसन्धान करने की गुरु आज्ञा मिलने पर आँख, कान और मुँह; तीनों बन्द लगाना चाहिए। (देखिए सत्संग योग भाग चतुर्थ पारा ९३)

(८२)

सब भव[१] भय भंजन[२], अघ गन[३] गंजन[४],
केवल प्रभु को नाम ॥ १ ॥
तम मोह[५] निकन्दन[६], खण्डन[७] फन्दन[८],
नाशन दुखमय काम ॥ २ ॥
सत धुन अनहत, घट घट बिन हत[९],
सार नाम सोइ नाम ॥ ३ ॥
सो नाम निरक्षर, सब वाणिन[१०] पर[११],
परम मोक्ष सुखधाम ॥ ४ ॥
सो धुन सत सारा, सन्त पुकारा,
सोइ निर्मल सतनाम ॥ ५ ॥
अति मधुर सो वाणी, सन्तन जानी[१२],
सुनि स्रुति[१३] लह[१४] विश्राम ॥ ६ ॥
चढ़ु होइ सुषमन, ब्रह्माण्ड महल मन,
यहीं गहो प्रभु नाम ॥ ७ ॥
धुनि अत्यन्त झीना[१५], सत भक्त चीना[१६],
सार[१७] यही प्रभु नाम ॥ ८ ॥
एक रस[१८] सब छन[१९], बजत रहे धुन,
'मेँहीँ' भजो यही नाम ॥ ९ ॥

शब्दार्थ :

१. संसृति, जन्म-मरण, २. तोड़नेवाला, मिटानेवाला, ३. पाप समूह, ४. पराजित करनेवाला, नष्ट करनेवाला, ५. मोह रूप अंधकार, अज्ञानान्धकार, ६. नाश करनेवाला, ७. तोड़नेवाला, ८. बंधन, ९. आहत, आघात, १०. वाणियों, ११. परे, श्रेष्ठ, १२. पहचाना, १३. सुरत, १४. प्राप्त करती है, १५. सूक्ष्म, १६. पहचाना, १७. सच्चा, १८. एक समान, १९. क्षण ।

पद्यार्थ :

जन्म-मरण संबंधी सभी भयों को मिटानेवाला और पाप समूह को

नष्ट करनेवाला एक मात्र परमप्रभु परमात्मा का (ध्वन्यात्मक) नाम है॥१॥ वह नाम मोह (अज्ञान) रूप अंधकार को नाश करनेवाला (शरीर) और संसार रूप बंधन को तोड़नेवाला और दुष्ट कर्मों को नष्ट करने वाला है॥२॥ प्रत्येक शरीर में बिना किसी आघात के अनाहत — सतध्वनि होती रहती है। उसी का नाम सारशब्द है॥३॥ वह नाम अक्षर-रहित, (परा, पश्यन्ति, मध्यमा और बैखरी इन) सभी वाणियों से परे और परम मोक्ष रूप सुख के घर (शब्दातीत पद) में ले जाने वाला है॥४॥ उसी निर्मल (पवित्र) सतनाम को संतों ने सतध्वनि और सारशब्द कहकर घोषित किया है॥५॥ उस अत्यन्त मधुर (मीठी) ध्वनि को संतों ने पहचाना है। उसे सुनकर सुरत शांति को प्राप्त करती है॥६॥ हे मन! तुम सुषुम्ना होकर ब्रह्माण्ड महल (शब्द मंडल) में चढ़ो और यहाँ ही प्रभु के (ध्वन्यात्मक) नाम को पकड़ो॥७॥ उस अत्यन्त सूक्ष्म ध्वनि की सच्चे भक्तों ने (साधना द्वारा) पहचान की है। प्रभु के अनेक नामों में यही (ध्वन्यात्मक निर्गुण नाम) सच्चा नाम है॥८॥ यह ध्वनि (सभी शरीरों में) प्रतिक्षण एक समान बजती रहती है। महर्षि मेँहीँ परमहंस जी महाराज कहते हैं कि इसी नाम का ध्यान करो ॥९॥

□□□□

(८३)

भजो हो गुरु चरण कमल, भव भय[१] भ्रम टारनं[२] ॥१॥
अति कराल[३] काल[४] ब्याल[५], विषम विष निवारणं[६] ॥२॥
दीन बन्धु[७] प्रेम सिन्धु[८], ज्ञान खड्ग[९] धारणं ॥३॥
महा मोह कोह[१०] आदि, दानव संघारणं[११] ॥४॥
सर्वेश्वर रूप गुरु, भगतन को तारणं[१२] ॥५॥
'मेँहीँ' जपो गुरु गुरु, गुरु गुरु मन मारनं[१३] ॥६॥

शब्दार्थ :

१. संसृति, जन्म-मरण, २.टालने वाले,३.भयंकर,४.यम, ५.सर्प, ६.दूर करनेवाले, नष्ट करनेवाले,७.असहाय के सहायक, ८.समुद्र,९.तलवार, १०. क्रोध,११.संहार करने वाले,१२.उद्धार करने वाले,१३.मारने,वश में करने।

पद्यार्थ :

हे भाई! जन्म-मरण संबंधी भयों और (अज्ञानता जनित) भ्रमों को टालने वाले गुरुदेव के कमल सदृश चरणों की भक्ति करो॥१॥ वे अत्यन्त भयंकर सर्प सदृश यम के कठिन विष को नष्ट करने वाले हैं ॥२॥ वे असहायों के सहायक, प्रेम के समुद्र और (अज्ञानान्धकार के नाश के लिए) ज्ञान रूप तलवार धारण करने वाले हैं॥३॥ गुरुदेव भयानक मोह और क्रोध रूप दानवों (राक्षसों) का संहार करने वाले हैं॥४॥ महर्षि मेँहीँ परमहंस जी महाराज कहते हैं कि गुरुदेव परमप्रभु परमात्मा के साकार रूप हैं, वे भक्तों का उद्धार करते हैं। अतः (विषयासक्त) मन को वश में करने वाले गुरु-मंत्र का सदा जप करो ॥५॥

□□□□

(८४)

भजु मन सतगुरु दयाल[१], काटैं जम जाला ॥१॥
प्रणतपाल[२] अति कृपाल, प्रेम को अगाधि ताल[३],
हरत सकल द्वन्द्व जाल, शम दमादि शाला[४] ॥२॥
पाँचो अघ[५] दैत्य साल[६], पाँच को कराल[७] काल[८],
पंच कोष[९] दहन[१०] ज्वाल[११], प्रीतम[१२] हियमाला[१३] ॥३॥
टालन[१४] भव खेद[१५] जाल, जालन[१६] भ्रम भेद[१७] काल,
कालन को[१८] अति कराल, समरथ[१९] गुरु दयाला ॥४॥
'मेँहीँ' कहै हो दयाल, तुमहीं जन[२०] रच्छपाल[२१],
सबके तुम मुकुट माल[२२] मोको प्रतिपाला[२३] ॥५॥

शब्दार्थ :

१. दयालु, २. दीनों के पालक, आश्रितों के रक्षक, ३. अथाह सरोवर, ४. शम (इन्द्रिय निग्रह) और दम (मनोनिग्रह) में निपुण, ५.पाप, ६.सालने-वाला, दुःखदायक, ७. भयंकर, ८. यम, ९. अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनंदमय कोष, १०. जलाने के लिये, ११. ज्वाला, १२. प्रेमपात्र, १३. हृदय का हार, १४. टालने वाले, १५. सांसारिक दुःख, १६. जलानेवाले, १७. द्वैत, १८. काल के लिए, १९. समर्थ, सब कुछ करने

में सक्षम, २०. भक्तजन, २१. रक्षा और पालन करने वाले, २२. माला का सुमेरू, २३. पालन, भरण-पोषण।

पद्यार्थ :

अरे मन! यम के फंदे को काटने वाले दयालु सद्गुरु की आराधना करो॥१॥ शरणागतों की रक्षा करने वाले, अत्यन्त कृपालु गुरुदेव प्रेम रूप जल के अथाह सरोवर हैं। द्वंद्व और उलझनों को मिटानेवाले सद्गुरु शम (इन्द्रिय निग्रह) और दम (मनोनिग्रह) में निपुण हैं॥२॥ दुःखदायक पँच पाप (झूठ,चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार) और पंच विषय (रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द) रूप दानव (को नष्ट करने) के लिए वे भयंकर काल रूप और पँच कोषों को जलाने के लिए ज्वाला सदृश हैं। लेकिन प्रेम पात्र भक्तों के लिए वे हृदय के हार के समान हैं॥३॥ सांसारिक दुःखों के जाल को नष्ट करने वाले सद्गुरु भ्रम और द्वैत को जलाने हेतु काल रूप हैं। काल के लिए वे अत्यंत भयंकर काल हैं। दयालु गुरुदेव सब कुछ करने में सक्षम हैं॥४॥ महर्षि मेँहीँ परमहंस जी महाराज कहते हैं कि हे दयालु गुरुदेव! आप भक्तजनों का पालन और रक्षण करने वाले हैं। आप सबके लिए माला के सुमेरू की तरह सर्वश्रेष्ठ (अर्थात् पूज्य) हैं। आप ही मेरा भी पालन करते हैं॥५॥

□□□□

(८५)

भजु मन सतगुरु दयाल, गुरु दयाल प्यारे ॥१॥
गुरु पद को बड़[१] प्रताप[२], भक्तन को हरत ताप[३],
अति कराल[४] काल काँप, अस प्रभाव न्यारे ॥२॥
गुरु गुरु अति सुखद जाप, जापक[५] जन हरत ताप,
गुरु ही सुख रूप आप, अमित[६] गुणन[७] धारे ॥३॥
गुरु गुरु सब जाप भूप[८], अनुपम[९] सत शान्ति रूप,
उपमा[१०] में अति अनूप[११], दायक फल चारे[१२] ॥४॥
गुरु गुरु जप गुरु दयाल, गुरु दयाल गुरु दयाल,
निश दिन गुरु गुरु दयाल, 'मेँहीँ' उर[१३] धारे ॥५॥

शब्दार्थ :

१. बड़ा, बहुत,२.महिमा,३.दुःख — दैहिक, दैविक और भौतिक, ४. भयंकर, ५. जप करने वाला, ६. असीम, ७. गुणों को, ८. राजा, ९. उपमा रहित, १०. एक वस्तु की तुलना किसी दूसरे से करना, ११. उपमा रहित, उपमा से हीन, १२. चार फल — अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष, १३. हृदय।

पद्यार्थ :

हे प्यारे मन! दयालु सद्गुरु की आराधना करो॥१॥ गुरु के चरण कमलों (के ध्यान) की बड़ी महिमा है। वे भक्तों के (दैहिक, दैविक और भौतिक) तापों का हरण करते हैं। उनका ऐसा विलक्षण प्रभाव है कि अत्यंत भयंकर काल भी उनसे काँपता है॥२॥ गुरु मंत्र का जप करना अत्यन्त सुखदायक है। जप करने वालों के कष्टों को यह हरण करता है। गुरु स्वयं सुखस्वरूप हैं और असीम सद्गुणों को धारण किए हुए हैं॥३॥ गुरुमंत्र का जप सभी जपों का राजा है। वह उपमा से परे और सच्ची शांति का प्रतिरूप है। उपमा देने के प्रयास में वह उपमा से अत्यन्त हीन (अर्थात् अद्वितीय) प्रमाणित होता है और (अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष इन) चार फलों को देने वाला है॥४॥ महर्षि मेँहीँ परमहंस जी महाराज कहते हैं कि गुरु दयालु हैं, गुरु दयालु हैं, अतः गुरु मंत्र का जप किया करो। गुरु (मूर्ति) को अपने हृदय में धारण करके दिन-रात गुरु मंत्र जपते रहो॥५॥

□□□□

(८६)

भजो हो मन गुरु उदार[१], भव अपार[२] तारणं ॥१॥
ज्ञानवान अति सुजान[३], प्रेम पूर्ण हृदय ध्यान,
विगत[४] मान सुख निधान, दास भाव धारणं ॥२॥
रहे जहाँ सतसंग नित्त, सुजन[५] जन सों नेह[६] हित्त[७],
शब्द तार[८] धरे सार, प्रकृति पार उतारणं ॥३॥
छन-छन मन ध्यान रत्त, स्नुति[९] रमे धुन राम सत,
प्रेम मगन जग में भ्रमण, करि करि जन तारणं ॥४॥

पलहू[१०] नहिं अनत[११] चैन, सतसंग में दिवस रैन,
सरब[१२] जगत सुक्ख दैन, भक्तजन उधारनं ॥५॥
जग में गुरु ही अधार[१३], 'मेँहीँ' नहिं आन[१४] सार,
गुरु बिनु सब अंधकार, सूर्य चन्द्र तारनं[१५] ॥६॥

शब्दार्थ :

१.विशाल हृदय वाले,२.अंतहीन,३.श्रेष्ठ ज्ञान धारण करनेवाले,४. रहित, ५. सज्जन, ६. प्रेम, ७. हित, मैत्रीभाव, ८.धारा, ९. सुरत, १०.एक पल भी, ११. अन्यत्र, १२.सम्पूर्ण, सभी,१३. आधार,१४. दूसरी जगह,अन्यत्र,१५. तारे ।

पद्यार्थ :

हे मन! संसार रूप अंतहीन सागर से पार करने वाले उदार (विशाल हृदय) गुरुदेव की आराधना करो॥१॥ वे अत्यन्त श्रेष्ठ ज्ञान (ब्रह्मज्ञान) धारण करने वाले ज्ञानी हैं। वे प्रेमपूर्ण हृदय से ध्यान करते हैं। वे मान-रहित और सुख के भंडार हैं तथा दास्य (सेवक) भाव धारण किये रहते हैं॥२॥ वे जहाँ रहते हैं, वहीं प्रतिदिन सत्संग करते हैं और सज्जन लोगों से प्रेम तथा मैत्रीभाव रखते हैं। वे स्वयं सारशब्द की धारा को पकड़े रहते हैं और दूसरे को (जड़-चेतन) प्रकृतियों के पार पहुँचाते हैं॥३॥ उनका मन प्रतिक्षण ध्यान में लीन रहता है। उनकी सुरत राम नाम या सतध्वनि (सारशब्द) में रमण करती है। वे स्वयं ईश्वर-प्रेम में निमग्न रहते हैं और संसार में यहाँ-वहाँ भ्रमण कर (ज्ञानोपदेश द्वारा) लोगों को संसार सागर से पार उतारते हैं॥४॥ वे दिन-रात (आंतरिक और बाह्य इन दोनों प्रकार से) सत्संग में सुख पाते हैं,उन्हें पलभर भी अन्यत्र चैन नहीं मिलता। वे सम्पूर्ण संसार को सुख पहुँचाते हैं और भक्त लोगों का उद्धार करते हैं॥५॥ महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि संसार में (कल्याणमय सुख के लिए) एक मात्र गुरु ही आधार-स्वरूप हैं। उनके अतिरिक्त अन्यत्र कहीं (ग्रहण करने योग्य) सार पदार्थ नहीं है। सूर्य,चन्द्रमा और तारों का प्रकाश होने पर भी गुरु के बिना (जीवन में) सब कुछ अंधकारमय* है॥६॥

* 'जे सउ चन्दा उगवहि सूरज चड़हि हजार ।
एतै चानण होदिआ गुरु बिनु घोर अंधार॥''
(गुरु नानक देवजी, आसा दीवार, महला-२)

(८७)

भजो भजो गुरु नाम हो प्यारे, भजो भजो गुरु नामा हो ॥१॥
तन धन दारा[१] सपन[२] है सारा, अन्त न आवै कामा हो ॥२॥
घट में तेरे घोर अन्धेरा, सोई भरम[३] को जामा[४] हो ॥३॥
सतगुरु पद[५]-नख-बिन्दु निरखि के, त्यागि चलो तम धामा[६] हो ॥४॥
घट भीतर गुरु जोति अचरजी[७], निरखि गहो सतनामा हो ॥५॥
सत्य नाम धुन राम सार सो, गुरु नाम पूरण कामा हो ॥६॥
परखि सुरत सों नाम निर्मल यह,लहु 'मेँहीँ' विश्रामा[८] हो ॥७॥

शब्दार्थ :

१. स्त्री, पत्नी, २. स्वप्न, ३. अज्ञानता, ४. वेश, रूप, ५. चरण, ६. अंधकार मंडल, ७. आश्चर्यमयी, ८. शांति ।

पद्यार्थ :

हे प्यारे लोगो! आदि गुरु परमात्मा के (ध्वन्यात्मक-निर्गुण) नाम का भजन करो॥१॥ तुम्हारा शरीर, तुम्हारी सम्पत्ति, स्त्री आदि सबकुछ स्वप्नवत् (मिथ्या) है। संसार से जाने के समय ये सब तुम्हारे कुछ काम नहीं आएँगे॥२॥ तुम्हारे शरीर के अंदर (नयनाकाश में) घना अंधेरा छाया हुआ है। वह अज्ञानता का प्रतिरूप है॥३॥ सद्गुरु के पद-नख रूप विन्दु को निहारते हुए (सूक्ष्म-सगुण-साकार उपासना — बिन्दुध्यान के द्वारा) अंधकार मंडल को छोड़कर आगे चलो॥४॥ शरीर के अंदर आदि गुरु-परमात्मा की आश्चर्यमयी ज्योति (ब्रह्मज्योति) विराजती है। उसे देखो और अंततः सत्तनाम को पकड़ो॥५॥ वही सत्तनाम राम ध्वनि या सारशब्द है। आदि गुरु परमात्मा का वह (ध्वन्यात्मक-निर्गुण) नाम सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला है॥६॥ महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि अपनी सुरत द्वारा उस पवित्र नाम को पहचानकर (शब्दातीत पद में जाओ और) चिर शांति प्राप्त करो॥७॥

(८८)

भजु गुरु नामा, लहु विश्रामा,
बिनु गुरु भजन न चैन रे ॥
भजु गुरु नाम, भजु गुरु नाम,
भजो गुरू पद पूरण काम ॥
राम आदि अवतार, देव मुनि सन्त आर,
गुरुपद भजते, अहमति[१] तजते,
करते गुरु - पद ध्यान रे ॥ १ ॥ भजु०॥
घट तम कूप में, जुग- जुग जीव भ्रमे,
ले गुरु भेद, जा तम छेद,
गुरु-पद-नख बिन्दु देख रे ॥ २ ॥ भजु०॥
पद नख बिन्दु लख, एक टक दृष्टि रख,
सो बिन्दु तिल तारा दशम दुआरा,
जगमग मणि गुरु जोति रे ॥ ३ ॥ भजु०॥
सहस्त्र कमल दल, झलमल झलमल,
पूर्ण विधु[२] गुरुरूपा अतिहि अनूपा,
लखि जुड़वत[३] हिय नैन रे ॥ ४ ॥ भजु०॥
त्रिकुटी महल चढ़ दुरगम[४] गुरु गढ़,
जहाँ ब्रह्म दिवाकर[५] रूप गुरु धर,
करैं परम परकाश रे ॥ ५ ॥ भजु०॥
सुन्न अरू महासुन्न, भँवर गुफाहु गुन,[६]
तहाँ सत धुन धारा, गुरु रूप सारा,
धरि स्रुति मिलु सतनाम रे ॥ ६ ॥ भजु०॥
अलख[७] अगम[८] सत, अनीह[९] अनाम[१०] अकथ,[११]
गुरु मूल सरूपा, 'मेँहीँ' अनूपा,
भजि मिलि हो भव पार रे ॥ ७ ॥ भजु०॥

शब्दार्थ :

१. अहंकार, २.चन्द्रमा, ३. तृप्त होता है, ४. दुर्गम, जहाँ कठिनाई से पहुँचा जाय, ५. सूर्य, ६. सगुण, ७. जो देखा न जा सके, अरूप, ८. मन बुद्धि से परे, ९. इच्छा-रहित, १०. नाम-रहित, ११. अवर्णनीय ।

पद्यार्थ :

गुरुनाम का सुमिरन (जप) करो और शान्ति प्राप्त कर लो । गुरुनाम के सुमिरन के बिना शान्ति नहीं मिल सकती । बारम्बार गुरुनाम का सुमिरन करो और गुरु के चरण कमलों की सेवा करो । तुम्हारी कामनाएँ पूर्ण होंगी । राम आदि अवतारी पुरुष, देवगण, मुनि और संतजन सभी अहंकार को त्यागकर गुरु चरणों की सेवा और उनका मानस ध्यान करते हैं।।१।। युग-युगों से यह जीवात्मा शरीर के अंदर अंधकार मंडल रूप कुएँ में पड़ा चक्कर काट रहा है। इससे निकलने के लिए गुरु से युक्ति प्राप्त करो और इस अंधकार मंडल का भेदन कर गुरु के पद नख में उनके विन्दु रूप के दर्शन करो ।।२।। उस विन्दु पर अपनी दोनों दृष्टिधारों को टिकाकर एकटक देखते रहो। वह विन्दु जिसे तिल या तारा की संज्ञा भी दी जाती है, दशम द्वार में मणि की तरह प्रकाशित होता है । यह ब्रह्मज्योति गुरु का ज्योतिरूप है ।।३।। सहस्रदल कमल में प्रकाश झिलमिल करता है । वहाँ गुरु अत्यन्त विलक्षण पूर्ण चन्द्र रूप में विराजते हैं, जिसे देखकर हृदय का नेत्र तृप्त हो जाता है ।।४।। फिर गुरु के दुर्गम गढ़ (किला) रूप त्रिकुटी महल में चढ़ जाओ। वहाँ गुरु सूर्य ब्रह्म का रूप धारण कर तीव्र प्रकाश फैलाते हैं ।।५।। शून्य, महाशून्य और भँवरगुफा सगुण है वहाँ से आगे बढ़ो। यानी सुरत द्वारा गुरु के सार रूप-सतधुन की धार — जिसको सतनाम भी कहते हैं, को पकड़ो ।।६।। महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि गुरु का मूल (आत्म) स्वरूप, अरूप, मन, बुद्धि से परे, सत्य, इच्छारहित, नामरहित तथा अवर्णनीय है। भक्ति द्वारा गुरु के इस विलक्षण स्वरूप में मिलकर जन्म-मरण के चक्र से परे हो जाओ ।। ६।।

टिप्पणी :

संतों ने गुरु को अपनी भावना और साधना के अनुरूप विभिन्न रूपों में देखा है। इसलिए उनकी वाणियों में गुरु को कहीं देव रूप में, कहीं

त्रिदेव रूप में, कहीं हरि रूप में, कहीं ज्योति रूप में, कहीं नाद रूप में, कहीं ब्रह्म रूप में, और कहीं परमात्म-रूप में वर्णन किया गया है। इतना ही नहीं, कहीं तो परमात्मा से भी विशेष मान्यता दी गयी है। यहाँ उदाहरण स्वरूप कुछ संतों एवं सदग्रन्थों की वाणियाँ उपस्थित की जाती हैं—

यस्व देवे पर भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
(योग शिखोपनिषद कृष्ण यजुर्वेद का)

अर्थात जिसकी देव में अत्यन्त भक्ति है। (उसकी गुरु में भी वैसी ही भक्ति होनी चाहिए) गुरु और देव समान हैं।

प्रथम देव गुरुदेव जगत में, और न दूजो देवा।
गुरु पूजे सब देवन पूजे, गुरु पूजा सब पूजा॥
(परमहंस लक्ष्मीपतिजी)

'देवीदेव समस्त पूरन ब्रह्म परम प्रभु।
गुरु में करैं निवास कहत हैं संत सभू॥'
(महर्षि मेँहीँ परमहंसजी)

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवः सदाशिवः।
न गुरोरधिकः कश्चिन्त्रिषु लोकेषु विद्यते
दिव्यज्ञानोपदेष्टारं देशिकं परमेश्वरम्।
पूज्येत्परया भक्त्या तस्य ज्ञानफलं भवेत॥
यथा गुरुस्तथैवेशो यथैवेसस्तथा गुरुः।
पूजनीयो महाभक्त्या न भेदो विद्यतेऽनयोः॥

गुरुदेव ही ब्रह्मा, विष्णु और सदाशिव हैं। तीनों लोकों में गुरु से बढ़कर कोई नहीं है। दिव्य ज्ञान के उपदेश देनेवाले उपस्थित प्रत्यक्ष परमेश्वर की भक्ति के साथ उपासना करे, तब वह (शिष्य) ज्ञान का फल प्राप्त करेगा। जैसे गुरु हैं, वैसे ही ईश हैं; जैसे ईश हैं, वैसे ही गुरु हैं, इन दोनों में भेद नहीं है; इस भावना से पूजा करे।

बन्दौं गुरुपद कंज कृपा सिन्धु नर रूप हरि।
महामोह तम पुँज जासु वचन रविकर निकर॥
(गो० तुलसीदास)

तुम्हरे जोत स्वरूप अरू तुम्हरे धुन रूपा।
(महर्षि मेँहीँ पदावली)

'नादात्मकं नादबीजं प्रयतं प्रणवस्थितम्।
वन्दे तं सच्चिदानन्दं माधवं मुरलीधरम्॥
नाद रूपं परं ज्योतिर्नादरूपी परो हरिः॥' (वेदान्तांक)

('मैं उस सच्चिदानन्द माधव मुरलीधर की वन्दना करता हूँ, जो नादात्मक हैं अर्थात् नाद ही जिनकी आत्मा है। नाद ही जिनका कारण है, जो स्थिर भाव से प्रणव में स्थित हैं।' 'नाद ही परम ज्योति है और नाद ही स्वयं परमेश्वर हरि हैं।')

'ब्रह्मरूप सतगुरु नमो, प्रभु सर्वेश्वर रूप।
राम दिवाकर रूप गुरु, नाशक भ्रम तम कूप॥'
(महर्षि मेँहीँ पदावली)

'परमातम गुरु निकट विराजै जाग जाग मन मेरे।'
(संत कबीर साहब)

'परमेसर सूँ गुरु बड़े, गावत वेद पुरान।
सहजो हरि के मुक्ति है, गुरु के घर भगवान॥'
(परम भक्तिन सहजो बाई)

'गुरु की तो महिमा अधिक है गोविन्द तें।'
(संत सुन्दर दास)

'नमो नमो सदगुरु नमो जा सम कोउ न आन।
परम पुरूष हू ते अधिक गावैं संत सुजान॥'
(महर्षि मेँहीँ पदावली)

□□□□

(८९)

भजो साध गुरु[१] साध गुरु साध गुरु ए ॥१॥
गुरु दाता दयाल, वह काटैं यमजाल,
पल में कर दें निहाल[२] ॥भजो०॥२॥
गुरु कहते सत ज्ञान, सुनके मिटता अज्ञान,
सुख होता महान ॥भजो०॥३॥

गुरु ज्ञान सूर्य रूप, उनकी जोति अनूप[३]
उर[४] के नासैं तम कूप[५] ॥भजो०॥ ४ ॥
गुरु खोलैं तिल द्वार हो ब्रह्माण्ड में पैसार[६]
लखिये जोती अपार ॥भजो०॥ ५ ॥
देइ सुरत शब्द भेद, मिटा देते भव खेद[७]
करिये गुरु की उमेद[८] ॥भजो०॥ ६ ॥

शब्दार्थ :

१. संत सद्गुरु, २.पूर्णकाम,३.उपमा-रहित, विलक्षण,४.हृदय,५.अंधकार मंडल, ६. पसार, प्रवेश, ७. जन्म-मरण का दुःख, ८. उम्मीद, आशा।

पद्यार्थ :

हे भाई! संत सद्गुरु की आराधना करो ॥१॥ वे दानशील, कृपालु तथा यम के फंदे को काटकर क्षणभर में पूर्णकाम कर देनेवाले हैं ॥२॥ वे सद्ज्ञान का उपदेश करते हैं, जिसे सुनकर अज्ञानता मिट जाती है और परम सुख की प्राप्ति होती है ॥३॥ गुरु का ज्ञान उस सूर्य के समान है जिसका विलक्षण प्रकाश हृदय स्थित अंधकार-मंडल का नाश करता है ॥४॥ गुरु (योग की युक्ति बतलाकर) बंद दशम द्वार को खोल देते हैं, जिससे साधक (पिंड को त्यागकर) ब्रह्माण्ड में प्रवेश कर जाता है और अपूर्व प्रकाश का दर्शन करता है ॥५॥ गुरुदेव सुरत शब्द-योग की युक्ति बतलाकर जन्म-मरण रूप दुःख को मिटा देते हैं। इसीलिए एक उन्हीं की आशा रखो ॥६॥

(९०)

भजो सत्यगुरु[१] सत्यगुरु सत्यगुरु ए ॥ १ ॥
गुरु ज्ञान को विचार, मुख तें करते उचार,[२]
होता संशय संहार ॥ भजो०॥ २ ॥
सभी ममता पसार[३], भव[४] बंधन असार[५],
गुरु लेते निवार[६] ॥ भजो०॥ ३ ॥
सभी इन्द्रिन को भोग, गुरु कहते हैं रोग,
करा देते वियोग[७] ॥। भजो०॥ ४ ॥

इस तन के नौ द्वार, में पूर्ण अंधकार,
स्रुत[८] फँसी है मँझार[९] ॥ भजो०॥ ५ ॥
गुरु भेद देवैं सार, खुलै बन्द दशम द्वार,
हो ब्रह्माण्ड में पैसार[१०] ॥ भजो०॥ ६ ॥
छूटै पिण्ड अंधकार, लखो जोति चमत्कार,
यह गुरु से ही उपकार ॥ भजो०॥ ७ ॥
गुरु सार शब्द भेद, देइ मिटते भव खेद[११]
धुन धरिये जोति छेद[१२] ॥ भजो०॥ ८ ॥
करि सत धुन को ध्यान, लहें सन्त सब अनाम,
यही निर्मल निर्वाण ॥। भजो०॥ ९ ॥

शब्दार्थ :

१.सद्गुरु,२.बोलना, उच्चारित करना, ३.फैलाव, प्रसार,४.संसार,५.सार-रहित, ६. छुड़ा लेते हैं, ७. अलग करना, छुटकारा, ८. सुरत जीवात्मा, ९. बीच में, मध्य,१०. प्रवेश,११.जन्म-मरण का दुःख, आवागमन का दुःख, १२. ज्योति को पारकर।

पद्यार्थ :

ऐ भाई! सद्गुरु की आराधना करो ॥१॥ सद्गुरु जब अपने ज्ञान का विचार मुख से कथन करते हैं, तो (उसे सुनकर) भक्त के संशयों का नाश होता है ॥२॥ सभी प्रकार के ममत्व का फैलाव सारहीन संसार में बंधनों को बढ़ाते हैं। गुरु इन बंधनों से छुड़ाते हैं ॥३॥ सभी इन्द्रियों के भोगों को गुरु रोग (उत्पन्न करनेवाला) बतलाते हैं और वे (रोग सदृश) इन भोगों से छुटकारा दिलाते हैं ॥४॥ इस शरीर के नौ द्वार (आँख, कान और नाक के दो-दो तथा मुख, लिंग और गुदा का एक-एक द्वार) सघन अंधकार से भरे हुए हैं और इस अंधकार के बीच में जीवात्मा फँसी हुई है ॥५॥ गुरुदेव जब साधना की सच्ची युक्ति बतलाते हैं तो (उसके सतत् अभ्यास से) बन्द दशम द्वार खुल जाता है और साधक (पिण्ड से निकलकर) ब्रह्माण्ड में प्रवेश कर जाता है ॥६॥ वह पिण्ड के अंधकार से छुटकर ब्रह्माण्ड में चमत्कृत करनेवाले (अद्भुत) ज्योति के दर्शन करता है। लेकिन ये सब

(उपलब्धियाँ) गुरु के उपकार (उनकी कृपा) से ही संभव है ।।७।। ज्योति को पार कर नाद (शब्द) ग्रहण करो गुरु सारशब्द ग्रहण करने की युक्ति बतलाकर आवागमन के दुःख को मिटाते हैं ।।८।। संतजन सतध्वनि (सारशब्द) का ध्यान करके अनाम पद (शब्दातीत परमपद) प्राप्त करते हैं । यही विशुद्ध (सच्ची) मुक्ति है ।।९।।

□□□□

(९१)

गुरु गुरु त्राहि[1] गुरु त्राहि गुरु कहु हो ।
तन मन गुरु पद अरपन करू हो ॥१॥
तन मन आपन दुःखद महान हो ।
गुरु पद अरपि[2] अरपि लहु ज्ञान हो ॥२॥
गुरु ज्ञान दिव्य भान[3] हृदय उगाउ हो ।
मोह तम नाशै मोक्ष सुख पाउ हो ॥३॥
सर्व क्षण गुरु मन जौं 'मेँहीँ' रहै हो ।
निश्चय निर्वाण होय संत सब कहैं हो ॥४॥

शब्दार्थ :

१. रक्षा करो, २. समर्पित कर, ३. अलौकिक सूर्य, सूर्यब्रह्म ।

पद्यार्थ :

हे भाई! (अति आर्त भाव से) गुरुदेव रक्षा करो, गुरुदेव रक्षा करो, गुरुदेव रक्षा करो-इस प्रकार मन-ही-मन कहो और अपने शरीर तथा मन को गुरु के चरणों में समर्पित कर दो ।।१।। हमारा शरीर और मन महान दुःखदायक है। इन्हें गुरु के चरणों में सौंपकर उनसे ज्ञान प्राप्त करो ।।२।। उस गुरु-ज्ञान से अपने हृदय में सूर्य ब्रह्म को उदित करो। इससे मोह अंधकार (अज्ञानान्धकार) नष्ट हो जाएँगे और मोक्ष का सुख पाओगे ।।३।। महर्षि मेंहीं परमहंस जी महाराज कहते हैं कि यदि गुरु प्रतिक्षण मन में बसे रहें तो निश्चित रूप से निर्वाण (मोक्ष) प्राप्त होगा, ऐसा संतजन कहते हैं ॥ ४ ॥

□□□□

(९२)

भजो भजो गुरुदेव हो भाई, गुरु गुरु गुरुदेव जी ॥टेक॥
तन मन धन सब अर्पण करि-करि, करो करो गुरु सेव जी ।
विधि[1] औं हरि[2] हर[3] पावत नाहीं, बिना गुरु प्रभु भेव[4] जी ॥१॥
अति दुस्तर[5] भव निधि[6] के माहीं, खेवटिया[7] गुरुदेव जी ।
भक्ति नाव में लेहिं चढ़ाई, पार करें भव खेव[8] जी ॥२॥
सहित त्रिदेव[9] कोटि तैंतिस[10] सुर[11], करें सदा गुरु सेव जी ।
राम कृष्णादि सकल अवतारण, सेवें[12] तजि अहमेव[13] जी ॥३॥
देव पितर सह पूरण ब्रह्मऽरु[14] अगम अनाम की सेव जी ।
गुरु सेवा सम कोउ न सेवा, 'मेँहीँ' कर गुरु सेव जी ॥४॥

शब्दार्थ :

१. ब्रह्मा, २.विष्णु, ३. महेश, शंकर, ४.भेद, युक्ति, ५.कठिनाई से पार होने योग्य, दुर्गम, ६. संसार-सागर, ७. खेवैया, पार करने वाला, ८. खेवकर, ९. ब्रह्मा, विष्णु और महेश, १०. तैंतिस करोड़, ११. देवता, १२.सेवा करते हैं, १३. अहंकार, १४. प्रकृति मंडल में व्याप्त परमात्म-अंश और ।

पद्यार्थ :

हे भाई! गुरुदेव की आराधना करो ।।टेक।। अपना शरीर, मन और सम्पत्ति सबकुछ गुरु-चरणों में सौंपकर उनकी सेवा करो । ब्रह्मा, विष्णु और महेश (जैसे देवगण) भी गुरु कृपा के बिना परमात्म-साक्षात्कार की युक्ति नहीं पाते हैं ।।१।। अत्यन्त दुर्गम संसार-सागर में एकमात्र सद्गुरु ही खेवैया (पार लगाने वाले) हैं। वे लोगों को भक्ति रूपी नाव में बिठाकर उसे खेते हुए संसार-सागर से पार कर देते हैं ।।२।। तैंतिस करोड़ देवताओं के साथ ब्रह्मा, विष्णु और महेश; ये त्रिदेव सतत् गुरु की सेवा किया करते हैं। राम कृष्ण आदि सभी अवतारी पुरुषों ने अपने अहंकार का त्यागकर गुरु की सेवा की है ।।३।। महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि देवता पितर (पूर्वज) के साथ पूर्ण ब्रह्म और अगम-अनाम कहलाने वाले परमात्मा की सेवा भी गुरु-सेवा के समान (कल्याणकारी) नहीं है। इसलिए गुरु की सेवा करो ।।४।।

□□□□

(९३)

त्राहि[१] गुरु त्राहि गुरु त्राहि गुरु कहु हो ।
असार संसार सए गुरु बल तरु हो ॥१॥
असार संसार मधे[२] दुःख भरपूर हो ।
गुरु कृपा बिन होय कबहुँ न दूर हो ॥२॥
गुरु कृपा होय भाई होय दुःख नाश हो ।
स्थूल सूक्ष्म कारण झड़ए[३] सब फाँस[४] हो ॥३॥
मन में विचार 'मेँहीँ' प्रभु तेरे साथ हो ।
गुरु बिना कभुँ नाहीं पाउ सोई नाथ[५] हो ॥४॥

शब्दार्थ :

१.रक्षा करो, २.बीच में, ३.झड़ जाते हैं,उतर जाते हैं, ४.बन्धन, आवरण ५. स्वामी, परमात्मा ।

पद्यार्थ :

हे भाई! (अति दीन भाव से) गुरुदेव रक्षा करो, गुरुदेव रक्षा करो, गुरुदेव रक्षा करो — इस प्रकार (मन-ही-मन) कहो और गुरु का आश्रय प्राप्त कर सारहीन संसार-सागर से पार हो जाओ ॥१॥ संसार रूप सागर में दुःख-ही-दुःख भरे हुए हैं। गुरु-कृपा के बिना ये दुःख कभी नहीं छूटते ॥२॥ हे भाई! यदि गुरु की कृपा हो जाए तो (जीवात्मा पर पड़े सभी आवरण यथा —) स्थूल, सूक्ष्म, कारण आदि उतर जाएँगे और तुम्हारे दुःखों का नाश हो जाएगा ॥३॥ महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि इस बात को विचार द्वारा मन में निश्चित कर लो कि परमप्रभु परमात्मा सदा तुम्हारे संग हैं पर बिना सच्चे गुरु के तुम अपने स्वामी — परमात्मा को कभी प्राप्त नहीं कर सकते ॥४॥

□□□□

(९४)

गुरु नाम गुरु नाम गुरु नाम जय गुरु नाम,
जय जय गुरु को नाम, पूरन काम ॥१॥
गुरु नाम गुरु नाम गुरु नाम भज गुरु नाम,
भजि ले गुरु को नाम, पूरन काम ॥२॥
सत्य विचार सुरत सत शब्द में,
सतगुरु को विश्राम[१] पूरन काम ॥३॥
अगम[२] ज्ञान परकाश करैं[३] गुरु
पाइय मूल ठेकान[४], पूरन काम ॥४॥
सहज सहज स्त्रुति अधर चढ़न को,
सतगुरु को फरमान,[५] पूरन काम ॥५॥
मानस जाप ध्यान गुरु को ही,
दृष्टि जोड़ि करु ध्यान, पूरन काम ॥६॥
नयन नासिका मध[६] सन्मुख बिन्दु,
गहु सुषमन धरि ध्यान, पूरन काम ॥७॥
दृष्टि युगल कर धरु सोई बिन्दु में,
झलकत[७] श्वेत निशान[८] पूरन काम ॥८॥
वज्र कपाट[९] खुलै तम टूटै,
ब्रह्म ज्योति झलकान, पूरन काम ॥९॥
मीन सुरत शब्द जल मिलि एकहि,
लहते अविचल धाम[१०], पूरन काम ॥१०॥
अगम[११] भेद दाता गुरु पूरन[१२],
'मेँहीँ' न गुरु सम आन[१३], पूरन काम ॥११॥

शब्दार्थ :

१. शांति,चैन,२.मन-बुद्धि के परे,३. प्रकाशित करते हैं,४.आदि-निवास परमात्मधाम, ५. आज्ञा,६.बीच, मध्य, ७.दिखाई पड़ेगा, ८. चिह्न, बिन्दु ९.अत्यंत कठोर, फाटक*, १०.अचल घर, परमात्मधाम,११.गंभीर,१२.पूर्ण गुरु, १३. दूसरा, अन्य ।

पद्यार्थ :

गुरुनाम की जय हो, गुरुनाम की जय हो, गुरुनाम की जय हो। यह नाम सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला है ॥१॥ गुरुनाम का सुमिरन करो, गुरुनाम का सुमिरन करो। यह सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला है ॥२॥ सद्गुरु सत्य विचार रखने वाले हैं। वे अपनी सुरत को सारशब्द में लीन कर शांति पाते हैं ॥३॥ सद्गुरु उस ज्ञान को प्रकाशित करते हैं जो मन-बुद्धि से परे है। उस ज्ञान को पाकर व्यक्ति अपने आदि निवास — परमात्मधाम को प्राप्त करता है ॥४॥ स्वाभाविक रूप से (धीरे-धीरे) अपनी सुरत को अंतराकाश में चढ़ाओ, यही सदगुरु की आज्ञा है ॥५॥ (वे कहते हैं कि पहले) गुरुमंत्र का मानस जप और गुरु-रूप का मानस ध्यान करो, फिर दृष्टिधारों को जोड़कर ध्यान करो ॥६॥ दोनों आँखों के बीच नासिका के सामने सुषुम्ना में ध्यान करके बिन्दु प्राप्त करो ॥७॥ पुनः उस पर दोनों दृष्टिधारों को टिकाओ। तुम्हें ज्योतिर्मय चमकता हुआ बिन्दु दिखाई पड़ेगा ॥८॥ (इस प्रकार अंधकार के फटने पर अत्यन्त कठोर फाटक खुल जाता है और तब परमात्मा की ज्योति दीखने लगती है ॥९॥ फिर सुरत, रूपी मछली सारशब्द रूप जल में एकमेक होकर मिल जाती है (लीन हो जाती है) और अचल घर — परमात्मधाम को प्राप्त करती है ॥१०॥ महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि पूर्ण गुरु ही इस गंभीर रहस्य का ज्ञान देने वाले होते हैं। अतः ऐसे गुरु के समान (पूज्य) अन्य कोई नहीं हो सकता ॥११॥

टिप्पणी :

वस्तुतः वज्र कपाट और तम ये दो नहीं हैं। तम ही वज्रकपाट है। गुरुनानक देव की वाणी में भी अन्धकार को ही वज्रकपाट कहा गया है, जैसा कि उनकी वाणी में हम पाते हैं। यथा —

घट घट अंतरि ब्रह्म लुकाईया। घटि घटि ज्योति सबाई ॥
वज्रकपाट मुकते गुरुमति। निरभै ताड़ी लायी ॥
(सोरठी महला १)

□□□□

(९५)

गुरु धन्य[1] हैं गुरु धन्य हैं गुरु धन्य दाता[2] दयाल[3] ।
दया करैं औगुन[4] हरैं दें टाल भव जंजाल[5] ॥१॥
गुरु धन्य हैं गुरु धन्य हैं गुरु धन्य दाता दयाल ।
जन्म अनेकन को अँटक[6] खोलैं करें निहाल[7] ॥२॥
गुरु धन्य हैं गुरु धन्य हैं गुरु धन्य दाता दयाल ।
ज्ञान ध्यान बुझाय दें स्रुति शब्द को सब ख्याल[8] ॥३॥
गुरु धन्य हैं गुरु धन्य हैं गुरु धन्य दाता दयाल ।
गुरु बिन प्रभू मिलते नहीं ऐसा बड़ा मजाल[9] ॥४॥
गुरु धन्य हैं गुरु धन्य हैं गुरु धन्य दाता दयाल ।
प्रभु गुप्त हैं गुरु प्रकट हैं हैं एक ही दयाल ॥५॥
गुरु धन्य हैं गुरु धन्य हैं गुरु धन्य दाता दयाल ।
सगुण सरूपी ईश[10] हो सबको नजर निहाल[11] ॥६॥
गुरु धन्य हैं गुरु धन्य हैं गुरु धन्य दाता दयाल ।
सब मिल कहो जपते रहो जी बने रहो खुशहाल[12] ॥७॥
गुरु धन्य हैं गुरु धन्य हैं गुरु धन्य हैं दाता दयाल ।
हरदम रटो कभु ना हँटो तोहि छेड़ेगा[13] न काल ॥८॥

शब्दार्थ :

१.प्रशंसनीय, २. दानशील,३. दयालु, ४. अवगुण, दुर्गुण, ५.जन्म-मरण रूप बंधन, ६.फँसाव, ७.पूर्णकाम,८.विचार,९.सामर्थ्य,१०.परमात्मा,११.दृष्टि डालकर पूर्णकाम कर देने वाला, १२.सुखी-सम्पन्न,१३. तंग करेगा, परेशान करेगा ।

पद्यार्थ :

दानशील और दयालु गुरुदेव धन्य हैं, धन्य हैं, धन्य हैं। (अर्थात् प्रशंसनीय हैं।) वे दया करके (भक्तों के) दुर्गुणों को दूर करते हैं और जन्म-मरण रूप बंधन को नष्ट कर देते हैं ॥१॥ गुरुदेव (संसार में) अनेक जन्मों के फँसाव को मिटाकर पूर्णकाम कर देते हैं ॥२॥ वे ज्ञान और ध्यान की बातें

समझाने के साथ सुरत-शब्द-योग संबंधी सभी विचार (बातें) बतलाते हैं ॥३॥ उनका ऐसा सामर्थ्य है कि उनके बिना परमप्रभु परमात्मा नहीं मिलते हैं ॥४॥ परम प्रभु परमात्मा और सद्गुरु दोनों ही दयालु हैं। किन्तु दोनों दयालु दो नहीं एक ही हैं । मात्र अन्तर इतना ही है कि परमात्मा गुप्त (अव्यक्त) हैं और गुरु प्रकट (व्यक्त) हैं ॥ ५॥ निर्गुण परमात्मा के सगुण रूप-गुरुदेव दूसरों पर कृपा की दृष्टि डालकर उसे पूर्णकाम कर देते हैं ॥६॥ सब कोई मिलकर कहो — दानशील और दयालु गुरुदेव धन्य हैं, धन्य हैं, धन्य हैं । गुरु मंत्र का जप करते रहो तो खुशहाल बने रहोगे ॥७॥ कभी छूटे नहीं, सतत् (मन ही मन) गुरुमंत्र जपते रहो तो काल तुम्हें नहीं छेड़ेगा ॥८॥

□□□□

(९६)

गुरु दीन दयाला[१], नजर निहाला[२], भक्तन पूरन काम[३] ॥१॥
भव भय दुख नाशय, आत्म विलासय[४], जो रे भजै गुरु नाम ॥२॥
ममता मद[५] हीना, अनहद लीना, बास[६] बसैं सत धाम ॥३॥
सब सद्गुण सागर, ज्ञान उजागर[७], पर हितरत[८] सब काम ॥४॥
भौ निधि[९] कढ़िहारा[१०], संसृति[११] पारा, भजन मगन प्रति याम[१२] ॥५॥
सत शब्द सनेही, जग में विदेही[१३], दान करैं सत नाम ॥६॥
दे ज्ञान बताई, ध्यान बुझाई, 'मेँहीँ' भजो गुरु नाम ॥७॥

शब्दार्थ :

१.असहायों पर दया करनेवाले, २.कृपा दृष्टि डालकर पूर्णकाम कर देने-वाले,३.कामनाओं को पूर्ण करनेवाले, अभिलाषाओं को तृप्त करनेवाले, ४. आत्मानंद प्राप्त करनेवाले, ५. अहंकार, ६. निवास, घर, ७. प्रकाशित, ८.लीन, संलग्न, ९. संसार-सागर, १०. काढ़नेवाले, बचाने या पार करनेवाले, ११. आवागमन का चक्र, १२. प्रत्येक पहर, आठो पहर, १३. शरीर भाव से परे ।

पद्यार्थ :

सद्गुरु असहायों पर दया करने वाले, मात्र कृपादृष्टि डालकर पूर्ण काम कर देनेवाले तथा भक्तों की अभिलाषाओं को तृप्त करने वाले हैं ॥१॥ जो

गुरुनाम का भजन करते हैं (अर्थात् वर्णात्मक गुरुनाम का जप और ध्वन्यात्मक गुरुनाम — सारशब्द का ध्यान करते हैं) वे जन्म-मरण के दुखों को मिटा डालते हैं और आत्मानंद प्राप्त करते हैं ॥२॥ ममता और अहंकार से हीन होकर वे अन्तर्नाद में लीन रहते हैं और अंततः सतधाम (परमात्म धाम-शब्दातीत परमपद) रूप घर में निवास करते हैं ॥ वे सभी सद्गुणों के भंडार और ब्रह्मज्ञान प्रकाशित करने वाले होते हैं। उनके सभी क्रिया-कलाप दूसरों की भलाई के लिए होते हैं ॥४॥ वे संसार-सागर से पार करने वाले आवागमन के चक्र से छुड़ाने वाले और आठो पहर (ध्वन्यात्मक-निर्गुण) नाम के भजन में लीन रहने वाले होते हैं ॥५॥ वे सारशब्द-प्रेमी, संसार में विदेह (शरीर-भाव से परे) और सतनाम दान करने वाले (अर्थात् सुरत-शब्द-योग की किया बतलाने वाले) होते हैं ॥६॥ महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि गुरु अध्यात्म-ज्ञान बतलाते हैं और ध्यान की क्रिया समझाते हैं। अतः गुरुनाम का भजन करो ॥७॥

□□□□

(९७)

अति पावन[१] गुरु मंत्र मनहिं मन जाप जपो ।
उपकारी गुरु रूप को मानस ध्यान थपो[२] ॥१॥
देवी देव समस्त पूरण ब्रह्म[३] परम प्रभू[४] ।
गुरु में करें निवास कहत हैं संत सभू[५] ॥२॥
प्रभहू से गुरु अधिक जगत विख्यात[६] अहैं[७] ।
बिनु गुरु प्रभु नहिं मिलैं यदपि घट माँहि रहैं ॥३॥
उर माँही प्रभु गुप्त अन्धेरा छाइ रहैं ।
गुरु गुर[८] करत प्रकाश प्रभू को प्रत्यक्ष लहैं[९] ॥४॥
हरदम प्रभु रहैं संग कबहुँ भव दुख न टरै ।
भव दुख गुरु दें टारि[१०] सकल[११] जय जयति करै ॥५॥
तन मन धन को अरपि गुरु-पद सेव करो ।
'मेँहीँ' आज्ञा पालि[१२] दुस्तर[१३] भव सुख से तरो ॥६॥

शब्दार्थ :

१.पवित्र,२.स्थापित करो, स्थिर करो,३. प्रकृति-मंडल में व्याप्त परमात्म-अंश, ४.परमात्मा, प्रकृति मंडल में व्याप्त होते हुए उसके बाहर भी अपरिमित रूप से विद्यमान,५.सभी,सब,६.प्रसिद्ध, ७. हैं, ८.युक्ति,भेद,९. प्राप्त करते हैं,१०.टालते हैं, दूर करते हैं, ११. सब, सभी, १२.पालन कर,१३. कठिन, कठिनता से पार होने योग्य।

पद्यार्थ :

अत्यन्त पवित्र गुरु-प्रदत्त मंत्र का मन-ही-मन (मानस) जप करो और उपकारी गुरुदेव के स्थूल रूप को मानस ध्यान में स्थापित करो ॥१॥ सभी संतों का कथन है कि सब देवताओं के साथ पूर्ण ब्रह्म और परमप्रभु परमात्मा गुरु में निवास करते हैं ॥२॥ परमप्रभु परमात्मा की अपेक्षा गुरु अधिक महिमा वाले हैं यह बात संसार में विख्यात है। परमात्मा हमारे शरीर के अंदर निवास करते हैं, पर गुरु-कृपा के बिना वे प्रत्यक्ष नहीं होते ॥३॥ हृदय में परमात्मा छिपे हुए हैं, फिर भी उसमें अंधकार छाया हुआ रहता है। गुरु की सद्युक्ति (प्राप्तकर साधना करने) से ही अंतःकरण प्रकाशित होता है और परमात्मा की प्रत्यक्षता प्राप्त होती है ॥४॥ परमात्मा सदा हमारे अंग-संग रहते हैं, लेकिन आवागमन (जन्म-मरण) का दुःख नहीं टलता। इस दुसह दुःख को गुरु दूर कर देते हैं। इसीलिए सभी उनकी जय-जयकार करते हैं॥५॥ महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि अपने तन-मन और धन को गुरु-चरणों में समर्पित कर उनकी सेवा करो और उनकी आज्ञाओं का पालन करते हुए इस कठिन संसार-सागर से सुखपूर्वक पार हो जाओ ॥६॥

□□□□

(९८)

सतगुरु गुरुदेव गुरु, गुरु, गुरु, गुरु तारणं ॥ १ ॥
गुरु, गुरु, गुरु दिव्य जोति, जगमग हिय[1] भक्त होति
गुरु गुरु ब्रह्म अग्नि सोति[2] पंच दूत[3] जारनं ॥ २ ॥
गुरु गुरु दस-चारि[4] दमन, गुरु गुरु अघ धारि[5] शमन[6],
गुरु गुरु सम कारि[7] पवन, द्वैत घनहिं[8] टारनं ॥ ३ ॥

गुरु गुरु गुरु दिव्य देव, गुरु गुरु गुरु भक्ति भेव,
गुरु गुरु गुरु परम सेव[9] गुरु गुरु मन मारनं ॥ ४ ॥
गुरु गुरु गुरु कल्प-विटप[10], गुरु गुरु गुरु 'मेँहीँ' जप
गुरु जाप जपन साँचो तप, सकल काज सारणं ॥ ५ ॥

शब्दार्थ :

१.हृदय,२.स्रोत, उद्गम, ३. पंच विषय, ४.चौदह, ५.पाप समूह, ६.नष्ट करनेवाला, ७.समता प्रदान करनेवाला, ८.बादल, ९.सर्वोत्तम सेव्य, सेवनीयों में सर्वश्रेष्ठ, १०. कल्प वृक्ष।

पद्यार्थ :

गुरुओं के गुरु सद्गुरु (आवगमन में पड़े जीव का) उद्धार करते हैं ॥ १॥ गुरु का दिव्य ज्योति रूप भक्त के हृदय को प्रकाशित करता है। ब्रह्म अग्नि (ब्रह्मज्योति) के उद्गम-स्थल के रूप होकर गुरुदेव रूप,रस, गंध, स्पर्श और शब्द — इन पाँच दूतों को जलाते हैं ॥२॥ गुरु चौदह इन्द्रियों का निरोध (नियंत्रित) करनेवाले और पाप-समूहों को नष्ट करनेवाले हैं। वे समता (की दृष्टि) प्रदान करनेवाले तथा द्वैतभाव (भिन्नता) रूप बादल को हटाने के लिए वायु रूप हैं ॥३॥ वे देवों में विलक्षण देव तथा भक्ति का रहस्य बतलानेवाले हैं। वे सर्वोत्तम सेव्य (सेवनीयों में सर्वश्रेष्ठ) हैं, तथा मन के आवेगों को मारनेवाले (मनोनिरोध करनेवाले) हैं ॥४॥ महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि गुरु कल्पवृक्ष के समान (कामनाओं को पूर्ण करनेवाले) हैं। अतः गुरुमंत्र का जप करो। गुरुमंत्र का जप ही सच्चा तप है जो सभी कार्यों को पूर्ण करता है ॥५॥

टिप्पणी :

संसार में बहुत तरह की विद्याएँ हैं। उन विद्याओं की शिक्षा देने वाले शिक्षक कहलाते हैं। यानी ज्ञान-दाता गुरु और ज्ञान-ग्राही शिष्य की संज्ञा से अभिहित किये जाते हैं। संत कबीर की वाणी में आया है -

गुरु नाम है ज्ञान का, शिष्य सीख ले सोइ।
ज्ञान मरजाद जाने बिना, गुरु अरु शिष्य न कोई ॥

पुनः उन्होंने अपने वचन में सात प्रकार के गुरुओं की चर्चा की है। यथा-

'प्रथम गुरु है माता पिता। रज बीरज की सोई दाता ॥

दोसर गुरु है मन की धाई। गिरह बास की बंध छोड़ाई ।
तेसर गुरु जिन धरिया नामा। लै लै नाम पुकारै गामा ॥
चौथे गुरु जिन शिक्षा दीन्हा। जग व्यवहार सबै तब चीन्हा ॥
पंचम गुरु जिन वैष्णव कीन्हा । राम नाम का सुमिरन दीन्हा ॥
छठे गुरु जिन भरम गढ़ तोड़ा । दुविधा मेटि एक से जोड़ा ॥
सातम गुरु सत शब्द लखाया । जहाँ का तत्त्व तहाँ समाया ॥
कबीर सात गुरु संसार, में सेवक सब संसार ।
सतगुरु सोई जानिये, जो भवजल उतारै पार ॥

संक्षेप में हम 'गुरु' श्रेणी को दो भागों में विभक्त कर सकते हैं — (१) आधिभौतिक और (२) आध्यात्मिक ।

आधिभौतिक विद्या के सिखानेवाले आधिभौतिक गुरु और आध्यात्मिक शिक्षा-दीक्षा देने वाले आध्यात्मिक गुरु होते हैं । वर्णमाला से लेकर एम०ए० और पी०एच०डी० तक की विद्या अर्जित करनेवाले सभी छात्र ही कहलाते हैं और उन सबको विद्या प्रदान करनेवाले शिक्षक । पर नीचले वर्ग से लेकर ऊपर तक के छात्रों की योग्यता समान नहीं, भिन्न होती है और उन्हें पढ़ानेवाले शिक्षकों की योग्यता भी एक-सी नहीं होती । ठीक उसी प्रकार अध्यात्म के क्षेत्र में भी समझना चाहिए । इसी आधार पर संत कबीर साहब ने आध्यात्मिक गुरुओं में भेद बतलाकर, शब्द-भेदी गुरु को विशेष स्थान दिया है। यथा —

'गुरु गुरु में भेद है, गुरु गुरु में भाव ।
सोई गुरु नित बन्दिये, जो शब्द बतावै दाव ॥

अन्य सतों की वाणियों में भी 'शब्दभेदी' गुरु की विशिष्टता हम पाते हैं । ऐसा लगता है जैसे संत कबीर के मत से अन्य संत भी सहमत हैं। संत राधास्वामी साहब ने कहा है कि शब्द मारगी गुरु के चरणों की धूल बन जाओ। यानी उनके ऊपर अपने को न्योछावर कर दो। उन्होंने तो यहाँ तक कह दिया कि जो गुरु शब्द मारगी नहीं है, वह झूठा गुरु है। ऐसे गुरु को छोड़ने में ही शिष्य का कल्याण है। यथा —

शब्द कमावै सो गुरु पूरा । उन चरणन की हो जा धूरा ॥

शब्द मारगी गुरु न होवे तो झूठी गुरुआई है लेवे ।

संत कबीर साहब ने झूठे गुरु को छोड़ने और सच्चे गुरु को धारण करने की सलाह दी है —

'झूठे गुरु के पच्छ को, तजत न कीजै बार ।
द्वार न पावै शब्द का, भटकै बारम्बार ॥
'साँचे गुरु के पच्छ में, मन को दे ठहराय ।
चंचल तें निःचल भया, नहिं आवै नहिं जाय ॥'

गुरु नानक देव की वाणी है —

'घर में घर दिखलाय दे सो सतगुरु परखु सुजाणु ।
पंच सबद धुनकार धुन तह बाजै सबदु निसाणु ॥'

संत पलटू साहब गुरु के बारे में बतलाते हुए इस प्रकार कहते हैं —

धुन आनै जो गगन की सो मेरा गुरुदेव ॥
सो मेरा गुरुदेव सेवा में करिहौं वाकी ।
शब्द में है गलतान अवस्था ऐसी जाकी ॥

संतों की दृष्टि में शब्दमार्गी गुरु ही सच्चे गुरु हैं — सद्‌गुरु हैं। कुपथ का आश्रय लेने वाले अन्य गुरुओं को त्याग देना चाहिए। महाभारत का निम्नलिखित श्लोक भी इसी भाव को परिपुष्ट करता है —

गुरोर प्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानत : ।
उत्पथप्रतिपन्नस्य परित्यागो विधीयते ॥४८॥

अर्थात् गुरु भी कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य को न समझते हुए कुपथ का आश्रय ले, तो उसका परित्याग कर दिया जाता है ।

उन तथाकथित गुरुओं के संबंध में भक्तिन सहजो बाई कहती हैं —

सहजो गुरु बहुतक फिरै, ज्ञान ध्यान सुधि नाहिं ।
तार सकै नहिँ एक कूँ, गहैं बहुत की बाहिँ ॥

अंततः आध्यात्मिक गुरु (सद्‌गुरु) के संबंध में महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज का विचार जानना भी प्रासांगिक होगा। वे सत्संगयोग भाग-४, पारा -८१ में लिखते हैं —

'परमप्रभु सर्वेश्वर को पाने की विद्या के अतिरिक्त जितनी विद्याएँ हैं,

उन सबसे उतना लाभ नहीं जितना कि परमप्रभु के मिलने से । परमप्रभु से मिलने की शिक्षा की थोड़ी सी बात के तुल्य लाभदायक दूसरी-दूसरी शिक्षाओं की अनेकानेक बातें (लाभदायक) नहीं हो सकती हैं। इसलिए इस विद्या के सिखलानेवाले गुरु से बढ़कर उपकारी दूसरे कोई गुरु नहीं हो सकते और इसीलिए किसी दूसरे गुरु का दर्जा इनके दर्जे के तुल्य नहीं हो सकता । इन्हीं बातों को दृष्टि में रखते हुए महर्षि जी ने प्रस्तुत पद में सत्गुरु गुरुदेव गुरु अर्थात् सद्गुरु गुरुओं के गुरुदेव हैं। ऐसा कहा है ।

□□□□

(९९)

चौपाई

सत्य[१] ज्ञान दायक गुरु पूरा । मैं उन चरणन को हौं धूरा[२] ॥ १ ॥
तन अघ[३] मन अघ ओघ[४] नसावन[५]। संशय शोक सकल दुख दावन[६] ॥ २ ॥
गुरु गुण अमित अमित को[७] जाना । संक्षेपहिं सब करत बखाना[८] ॥ ३ ॥
रुज[९] भव नाशन सतगुरु स्वामी । बार-बार पद युगल[१०] नमामी ॥ ४ ॥
मन्द[११] मन्दता[१२] सकल निवारन[१३]। काम क्रोध मद लोभ सँघारन[१४] ॥ ५ ॥
हानि लाभ सुख दुख समकारी[१५]। हर्ष विषाद[१६] गुरू दें टारी ॥ ६ ॥
राजत[१७] सकल सिरन[१८] गुरु स्वामी । अगम बोध दाता सुखधामी ॥ ७ ॥
जनम मरन गुरु देहिं छोड़ाई। जयति जयति जय जय सुखदाई ॥ ८ ॥
कीरति[१९] अमल[२०] विमल[२१] बुधि जाकी। धनि[२२] धनि सतगुरु सीम[२३] दया की ॥ ९ ॥
जगतारण[२४] कारण सद्गति[२५] की । पथ दाता[२६] सत सरल भगति की ॥ १० ॥
यम नीयम सब में अति पूरन[२७] । सतगुरु महाराज की जय भन[२८] ॥ ११ ॥

शब्दार्थ :

१.जिसका विनाश नहीं हो,परमात्मा,२.धूली,३.पाप,४.समूह,ढ़ेर,५.मिटानेवाले ६.दबानेवाले, शमन करनेवाले, ७.कौन, ८.वर्णन, ९.रोग,१०.दोनों, ११.मूढ़, मूर्ख, १२. मूढ़ता, बुद्धि की जड़ता, १३. मिटानेवाले, १४. संहार करनेवाले, १५.समान बनानेवाले, १६. प्रसन्नता-अप्रसन्नता, १७. विराजते हैं, शोभा पाते हैं, १८. सिरों पर, १९. कीर्ति, यश, २०.निर्मल, पवित्र, २१.निर्मल, पवित्र,२२.धन्य हैं,२३.सीमा,हद, पराकाष्ठा,२४. संसार से उद्धारकरनेवाले, २५.मोक्ष, २६. मार्ग बतलानेवाले, २७. पूर्ण, २८. जय कहो, जय-जयकार करो ।

पद्यार्थ :

परमात्मा का (वास्तविक) ज्ञान देनेवाले गुरु ही पूर्ण होते हैं । मैं ऐसे गुरु के चरणों की धूलि हूँ ॥१॥ वे शारीरिक और मानसिक पापों के समूह को मिटानेवाले तथा भ्रम-जनित कष्टों और अन्य सभी दुःखों को शमन करनेवाले हैं ॥२॥ गुरु के गुण अपरिमित (असीम) हैं। उन्हें (पूरा-पूरा) कौन जान सकता है ? सभी संक्षेप में ही वर्णन कर पाते हैं ॥३॥ सद्गुरु भव रोग (आवागमन) को मिटानेवाले हैं। अतः ऐसे स्वामी के युगल चरणों में मैं बारंबार प्रणाम करता हूँ ॥४॥ वे मूढ़ों की समस्त मूढ़ताओं (बुद्धि की जड़ताओं) को मिटानेवाले तथा काम, क्रोध, अहंकार, लोभ (आदि विकारों) का संहार (नाश) करनेवाले हैं ॥५॥ वे (भक्तों के लिए) हानि-लाभ और सुख-दुःख को समान बना देते हैं तथा हर्ष-विषाद (रूप मन के द्वन्द्वों) को दूर कर देते हैं ॥६॥ सद्गुरु स्वामी सबके सिरों पर (मुकुट-सदृश) शोभा पानेवाले हैं । सुखों के भंडार गुरुदेव बुद्धि से परे का (परमात्मा का) ज्ञान देते हैं ॥७॥ गुरु जन्म-मरण के चक्र से छुड़ाते हैं। ऐसे सुख प्रदान करनेवाले गुरु की जय हो, जय हो ॥८॥ जिनकी कीर्ति पवित्र और बुद्धि निर्मल है, दया की पराकाष्ठा स्वरूप ऐसे सद्गुरु धन्य हैं, धन्य हैं ॥९॥ वे संसार सागर से उद्धार करनेवाले, मोक्ष के कारण स्वरूप और भक्ति का सच्चा-सरल मार्ग बतलानेवाले हैं ॥१०॥ यम और नियम के सभी अंगों में अत्यन्त पूर्ण सद्गुरुदेव की जय-जयकार करो ॥११॥

□□□□

(१००)

चौपाई♂

सतगुरु सत[१] परमारथ[२] रूपा ।
अतिहि दयामय दया सरूपा ॥ १ ॥
अधम-उधारन अमृत खानी[३] ।
पर हित रत[४] जाकी सत वाणी ॥ २ ॥

♂ सोलह मात्राओं का एक छन्द इसमें गुरु लघू या चौकलों का नियम नहीं है।

सतगुरु ज्ञान सिन्धु अति निर्मल ।
सेवत[५] मन इन्द्रिन हों निर्बल ॥ ३ ॥
<u>धरम धुरन्धर</u>[६] सतगुरु स्वामी ।
सत्य धरम मत संत को हामी[७] ॥ ४ ॥
सुरत शब्द मारग सुखदाई ।
सतगुरु यहि पथ देहिं बताई ॥ ५ ॥
बन्ध मोक्ष सब देहि बताई ।
आत्म अनात्महुँ देहिं जनाई ॥ ६ ॥
विषय भोग तें लेहिं छोड़ाई ।
भव निधि बूड़त[८] लेहिं बचाई ॥ ७ ॥
कोउ न कृपावंत[९] सतगुरु सम ।
पद सेवा महँ मन पल-पल रम ॥ ८ ॥

*दोहा- धन्य धन्य सतगुरु सुखद, महिमा कही न जाय ।
जो कछु कहुँ तुम्हरी कृपा, मोतें कछु न बसाय[१०] ॥

शब्दार्थ :

१. जिसका विनाश न हो, अविनाशी, २. परमार्थ, परम प्राप्तव्य, परमात्मा, ३. भंडार, ४. संलग्न, ५. सेवा करने से, ६. उत्तम धार्मिक गुणों से युक्त, ७. समर्थक, पक्षधर, ८. डूबने से, ९. कृपालु, १०. वश नहीं चलता, क्षमता नहीं ।

पद्यार्थ :

सद्गुरु सत्य (अविनाशी) और परमात्म स्वरूप हैं । वे दया-स्वरूप होने के कारण दया से अत्यन्त ओत-प्रोत हैं ॥१॥ वे पापियों के उद्धारक और (परमात्मज्ञान-रूप) अमृत के भंडार हैं। उनकी सच्ची वाणियाँ दूसरों के कल्याण करने में संलग्न रहती हैं ॥२॥ सद्गुरु अत्यन्त पवित्र ज्ञान के

* प्रसिद्ध हिन्दी छन्द जिसमें चार चरण होते हैं। इसके पहले तथा तीसरे चरण में तेरह-तेरह मात्राएँ और दूसरे तथा चौथे चरण में ग्यारह-ग्यारह मात्राएँ होती हैं।

समुद्र हैं। उनकी सेवा करने से मन और अन्य इन्द्रियाँ बलहीन (निष्क्रिय) हो जाती हैं ॥३॥ सद्गुरु स्वामी उत्तम धार्मिक गुणों से युक्त और सत्यधर्म-संतमत के समर्थक (पक्षधर) हैं ॥४॥ पर प्रभु परमात्मा को प्राप्त करने के लिए सुरत-शब्द-योग (नादानुसंधान) सुखदायी मार्ग है। सद्गुरु इस मार्ग का भेद बता देते हैं ॥५॥ वे (शरीर और संसार रूप) बंधन और उनसे मुक्ति के साधन संबंधी सभी बातें बतलाते हैं। वे आत्मतत्त्व और आनात्म तत्त्व (मायिक तत्त्व) का ज्ञान करा देते हैं ॥६॥ सद्गुरु विषय-भोगने की प्रवृति को छुड़ा देते हैं और संसार-सागर में डूबने से बचा लेते हैं ॥७॥ सद्गुरु के समान् कृपालु अन्य कोई नहीं है। अतः हे मन! उनके चरणों की सेवा में प्रतिपल (सतत्) संलग्न रहो ॥८॥ हे सुख प्रदान करने वाले सद्गुरु! आप धन्य हैं आप धन्य हैं। आपकी महिमा कहने में नहीं आती है। मैं जो कुछ कहता हूँ, वह आप की ही कृपा से, वरना मुझमें (अपनी) कुछ भी क्षमता नहीं है ।

(१०१)

समदन

<u>खोजत खोजत</u>[१] सतगुरु <u>भेटि गेला</u>[२], शहर मुरादाबाद ॥ टेक ॥
महल्ला अताइ से ज्ञान प्रकाशलनि अमित[३] अमित परकाश[४] ।
घोर अंधारि में जीव दुखित छल[५] होइ गेल सकल[६] सनाथ[७] ॥ १ ॥
<u>पूरन भेदी</u>[८] बाबा देवी साहब नाम विदित[९] जग[१०] जास[११] ।
परम दयालु बाबा तनिको[१२] परेमी[१३] पर धन[१४] धन कहै 'मेँहीँ' दास ॥ २ ॥

शब्दार्थ :

१. खोजते-खोजते, २.मिल गए, ३.अपरिमित,अनंत, ४.प्रकाश, ५. थे, ६. सभी, ७.जिनके स्वामी या रक्षक हो, ८. भक्ति के रहस्य को पूर्णतः जानने वाले, ९. ज्ञात, विख्यात, १०. संसार, ११. जिनका,१२.तनिक भी, थोड़ा भी, १३. प्रेमी, १४. धन्य ।

पद्यार्थ :

खोजते-खोजते मुरादाबाद शहरा में मुझे सद्गुरु (बाबा देवी साहब) मिल गए। इन्होंने वहाँ के अताई मुहल्ले से अध्यात्म-ज्ञान का प्रचार किया

(कालान्तर में) जिसका अनंत प्रकाश फैला। अज्ञानता के घोर अंधकार में पड़कर प्राणी व्यथित (दुःखी) थे, लेकिन (इनके समान सद्गुरु को पाकर) सभी सनाथ हो गए हैं ॥१॥ सद्गुरु बाबा देवी साहब परमात्मभक्ति के रहस्य को पूर्णरूपेण जानने वाले हैं, जिनका यश संसार में विख्यात है। इनसे थोड़ा भी प्रेम रखने वालों पर ये अत्यन्त दयालु हो जाते हैं। महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज (इनका गुणगान करते हुए) कहते हैं कि आप धन्य हैं, आप धन्य हैं।

□□□□

(१०२)

सन्तन मत[१] भेद[२] प्रचार किया, गुरु साहब बाबा देवी ने ॥टेक॥
थे अन्ध[३] बने फिरते बाहिर, अन्तर-पथ भेद न थे जाहिर[४]।
हमें बोधि बुझाय[५] सुझाय दिया[६], गुरु साहब बाबा देवी ने ॥१॥
बन्द कराय पलक पट को, कहे बाहर में तुम मत भटको।
सीधे सन्मुख[७] सुषमन बिन्दु को, गहवाया[८] बाबा देवी ने ॥२॥
सुषमन घर में ध्वनि धार बजै, चढ़ि श्वेत[९] सुरत सो धार भजै।
अनहद उलझन[१०] यहि युक्ति तजै, सत ध्वनि[११] की युक्ति दई[१२] गुरु ने ॥३॥
गुरु की यह युक्ति बड़ी मेँही[१३], 'मेँहीँ' परगट[१४] संसार नहीं।
यहि ढोल पिटाय सुनाय दिया[१५], गुरु साहब बाबा देवी ने ॥४॥

शब्दार्थ :

१. सन्तों का मत (विचार), संतमत, २. रहस्य, युक्ति, ३.नेत्रहीन, विवेक दृष्टि से हीन, ४. विदित, ज्ञात, मालूम, ५. ज्ञान समझाकर, ६. दिखा दिया, ७. सामने, ८. ग्रहण करवाया, ९. प्रकाश मंडल, १०. बंधन, झंझट, ११. सारशब्द, १२.दिया, बतलाया, १३.महीन, सूक्ष्म, १४. प्रकट, प्रचारित, १५. सबके बीच प्रकट रूप से प्रचार किया।

पद्यार्थ :

सद्गुरु बाबा देवी साहब ने संतमत के रहस्यों का प्रचार किया ॥टेक॥ पहले हमलोग विवेक दृष्टि से हीन होकर (परमात्मा की खोज में) बाहर

भटकते थे, हमें आंतरिक मार्ग का रहस्य विदित (मालूम) नहीं था। बाबा देवी साहब ने हमें ज्ञान समझाकर आंतरिक मार्ग दिखलाया ॥१॥ हमारी आँखों की पलक रूप कपाट को बंद कराकर उन्होंने कहा कि (परमात्म-दर्शन के लिए) बाहर में भटकना छोड़ दो और अंदर (नयनाकाश) में सीधे सामने सुषुम्ना के ज्योतिर्मय बिन्दु को ग्रहण करो ॥२॥ सुषुम्ना रूप घर में अनहद ध्वनि की धारा गूंजती है। प्रकाश मंडल में प्रवेश कर सुरत के द्वारा उन ध्वनि-धारों को सुनो (का ध्यान करो)। फिर उन्होंने सारशब्द ग्रहण करने की युक्ति बतलाई, जिसके द्वारा अनहद ध्वनियों में उलझना छूट जाता है ॥२॥ महर्षि मेँहीँ परमहंस जी महाराज कहते हैं कि गुरु प्रदत्त यह युक्ति बहुत सूक्ष्म (गंभीर) है। पहले यह युक्ति संसार में (सामान्यजनों के बीच) प्रचारित नहीं थी, पर सद्गुरु बाबा देवी साहब ने सबके बीच प्रकट रूप में इस ज्ञान का प्रचार किया ॥४॥

□□□□

(१०३)

जीव उद्धार का द्वार पुकार कहा,
घट भीतर ही सत संतों ने[१]
संसृति[२] संताप[३] से काँप रहे,
भव[४] भौंर[५] भ्रमत[६] जिव हाँफ रहे[७],
तिन्हें ढाढ़स दे[८] समुझाय कहे,
गुरु नाम सुमर सत संतो ने ॥१॥
गुरु ध्यान धरो मन में अपने,
तिल द्वार लखो तन में अपने।
स्रुति[९] जोड़ि चलो धुनि धारण में,
ये यत्न[१०] कहे सत संतों ने ॥२॥
पँच केन्द्रन[११] पै पाँचो बजती,
अनहद नौबत[१२] जोती जरती।
कहुँ केवल ध्वनि अनुभव करती,
सूरत तन में कहे संतों ने ॥३॥

सत सन्तन की सत युक्ति यही,
यहि से भव बंधन दूर सही ।
होता 'मेँहीँ' शंका न रही,
सत सत्य कहा सत संतों ने ॥४॥

शब्दार्थ :

१. परमात्म स्वरूप संतों ने, सच्चे संतों ने २. जन्म-मरण ३. पीड़ा, दुःख, ४. संसार, ५.भँवर,६.चक्कर काटते हुए, ७. व्याकुल हो रहे हैं, ८. धैर्य बँधाते हुए, ९. सुरत, १०. युक्तियाँ, ११. शरीर के अंदर पाँच मंडलों (स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण और कैवल्य) के पाँच केन्द्र,१२.केन्द्रीय ध्वनियाँ ।

पद्यार्थ :

सच्चे (परमात्मस्वरूप) संतों ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि प्राणी के उद्धार (मोक्ष) का द्वार (दरवाजा) उसके शरीर के अंदर ही स्थित है ।।टेक।। प्राणी जन्म-मरण की पीड़ाओं को झेलते हुए (भय से) काँप रहे हैं। संसार रूप सागर के भँवर में चक्कर काटते हुए व्याकुल हो रहे हैं। सच्चे संत उन्हें धैर्य बँधाते हुए समझाकर कहते हैं कि तुम सद्‌गुरु-प्रदत्त नाम (मंत्र) का सुमिरन करो ।।१।। फिर गुरु (के स्थूल रूप) का मानस ध्यान करो और अपने शरीर के अंदर ही (नयनाकाश स्थित) दशमा-द्वार में (ज्योतिर्मय बिन्दु को) देखो । पश्चात् अनहद ध्वनि की धारों में अपनी सुरत को जोड़ते हुए आगे बढ़ो । सच्चे संतों ने (उद्धार के लिए) यही युक्ति बतलाई है ।।२।। अपने अंदर पाँचो मंडलों की पाँच केन्द्रीय ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं । जब अन्तर्ज्योति प्रकट होती है तो वहाँ (जड़ात्मक मंडलों की) अनहद ध्वनियाँ भी मिलती हैं। आगे चलकर सुरत अन्दर में (ज्योति को त्यागकर) केवल शब्द (नाद) को ही अनुभव करती है, ऐसा संतजन कहते हैं ।।३।। महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि परमात्मस्वरूप संतों द्वारा प्रदान की गई सच्ची युक्ति यही है। वस्तुतः इसी (साधना) के द्वारा सांसारिक सभी बंधन विनष्ट होते हैं। ऐसा होना मानने में कोई संदेह नहीं है, क्योंकि सच्चे संतों ने सदा सत्य-ही-सत्य कहा है ।।४।।

(१०४)

सतगुरु सतगुरु नितहि[1] पुकारत छीजत[2] पाप समूह रहे ॥टेक॥
सतगुरु रूप हिये[3] में धारत[4] काम क्रोध मद लोभ दहे[5] ।
अमिय[6] रूप गहि मन सुख पावत सुरति सैल[7] ब्रह्माण्ड लहे ॥१॥
सतगुरु चरण डोरि दृढ़[8] सब घट पिण्ड ब्रह्माण्ड से पार करे ।
जो पकड़े भव पार उतरि गये 'मेँहीँ' सतगुरु चरण धरे ॥२॥

शब्दार्थ :

१. नितप्रति, सतत,सदा, २. क्षय होता है,घटता है, ३.हृदय, ४.धारण करने से, ५.जल जाता है, ६.अमृत,७.सैर, यात्रा, ८.सारशब्द की मजबूत धार ।

पद्यार्थ :

जो व्यक्ति सतत् (मन-ही-मन) सद्‌गुरु! सद्‌गुरु! कहकर पुकारता है (अर्थात् सदा गुरुनाम का सुमिरन* करता है) उसके पाप-राशि का क्षय होता है ।।टेक।। जब वह सद्‌गुरु महाराज के रूप को हृदय में धारण करता है (अर्थात् उनके स्थूल रूप का मानस ध्यान करता है), तो उसके काम, क्रोध, अहंकार, लोभ आदि विकार जल जाते हैं। सद्‌गुरु के अमृतरूप (ज्योति और नाद) को ग्रहण करके मन सुख प्राप्त करता है और साधक की सुरत ब्रह्माण्ड की यात्रा करती है ।।१।। सद्‌गुरु के चरण रूप सारशब्द की मजबूत डोरी-चेतनधार सभी शरीरों में व्यापक है, जो पिण्ड और ब्रह्माण्ड से पार (शब्दातीत परम पद में प्रतिष्ठित) कर देती है । महर्षि मेँहीँ परमहंस जी महाराज कहते हैं कि जिन्होंने उक्त धार को पकड़ा वे सब संसार-सागर से पार हो गए । इसलिए सार-शब्द रूप सद्‌गुरु-चरण को ग्रहण करें ।।२।।

***टिप्पणी :**

'जप तप संयम साधना, सब सुमिरन के माहिं ।
कबीर जानै भक्तजन, सुमिरन सम कछु नाहिं ।।
सुमिरन सुरत लगाइ के, मुख तें कछू न बोल ।
बाहर के पट देइके, अन्तर के पट खोल ।।
सुमिरन से सुख होत है, सुमिरन से दुःख जाय ।
कह कबीर सुमिरन किये, साईं माहिं समाय ।। (संत कबीर साहब)

इस पद्य में सदगुरु के चरण,उनके स्थूल, सूक्ष्म, सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम रूप का तथा तत्प्राप्त्यर्थ चतुष्ट साधनाओं का स्पष्टीकरण किया गया है। एकाग्रता पूवर्क मानसजप के पश्चात सद्गुरु के स्थूल रूप को मानस ध्यान-द्वारा, उनके सूक्ष्म रूप को ज्योति ध्यान द्वारा, सूक्ष्मतर रूप को आन्तरिक अहनद ध्वनियों-द्वारा और सूक्ष्मतम रूप को अनाहत ध्वनि — सारशब्द द्वारा ग्रहण करने का आग्रह है। इन्हीं चतुर्विध साधनाओं में सुनिष्पन्न होकर साधक समस्त विकारों से रहित हो निर्विकार परमात्म-स्वरूप को प्राप्त कर भव पार होते हैं।

□□□□

(१०५)

सतगुरु चरण टहल[१] नित करिये नर तन के फल एहि हे ।
युग-युग जग में सोवत बीते सतगुरु दिहल जगाय[२] हे ॥१॥
आँधरि आँखि[३] सुझत रहे नाहीं[४] थे पड़े अन्ध[५] अचेत[६] हे ।
करि किरपा[७] गुरु भेद बताए दृष्टि खुलि मिटल अचेत हे ॥२॥
भा[८] परकाश[९] मिटल अँधियारी सुक्ख भएल बहुतेर[१०] हे ।
गुरु किरपा की कीमत नाहीं मिटल चौरासी फेर[११] हे ॥३॥
धन[१२] धन धन्य बाबा देवी साहब सत्गुरु बन्दी छोर[१३] हे ।
तुम सम भेदि[१४] न नाहिं दयालू 'मेँहीँ' कहत कर जोरि[१५] हे ॥४॥

शब्दार्थ :

१. सेवा, २.जगा दिया,३.विवेक दृष्टि से हीन,४.दिखलाई नहीं पड़ता था, ५.अज्ञानी,६.बेसुध, बेहोश,७.कृपा,८.हुआ,९.प्रकाश, ज्योति,१०.अत्यधिक, अपार, ११. चक्कर, भ्रमण, १२. धन्य, १३. बंधन से मुक्त करनेवाले, १४. भक्ति की युक्ति जाननेवाले, बतलानेवाले, १५.हाथ जोड़कर, करबद्ध होकर ।

पद्यार्थ :

नित्यप्रति सद्गुरु महाराज के चरणों की सेवा करो । यही मनुष्य शरीर की सार्थकता है । संसार में (मोह निद्रा में) सोते हुए अनेक युग बीत गए। अब सद्गुरुदेव ने हमें जगा दिया है ॥१॥ विवेक दृष्टि से हीन होने के कारण

हमें कुछ भी दिखलाई नहीं पड़ता था । हम अज्ञानी बनकर बेसुध पड़े थे । गुरुदेव ने कृपा करके हमें साधना की युक्ति बतलाई, (जिसके अभ्यास से) हमारी बेहोशी मिट गई (अर्थात् चेतना जागृत हुई) और अंतर्दृष्टि खुल गई ॥२॥ (हमारे नयनाकाश का) अंधकार मिट गया,ज्योति प्रकट हुई और अपार सुख की प्राप्ति हुई। गुरु-कृपा की कीमत नहीं (आँकी जा सकती) है। उन्होंने चौरासी लाख प्रकारकी योनियों में मेरा भ्रमण करना छुड़ा दिया ॥३॥ महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि सद्गुरु बाबा देवी साहब धन्य हैं, (धन्य हैं! आप शरीर और संसार रूप) बंधनों से मुक्त करने वाले हैं । मैं करबद्ध होकर कहता हूँ कि आपकी तरह भक्ति की युक्ति बतलाने वाले दयालु गुरु अन्य कोई नहीं हैं ॥४॥

□□□□

(१०६)

गुरु-सतगुरु सम हित[१] नहिं कोऊ निशदिन[२] करिये सेव[३] हे ।
तन-मन आतम रक्षक हैं गुरु गुरुहिक नाम एक लेव हे ॥१॥
मातहु ते बढ़ि छोह[४] करैं नित पितहु तें अधिक भलाइ हे ।
कुल मालिकहु[५] तें बढ़ि कृपा धारे गुरु सम नाहिं सहाइ हे ॥२॥
तन-मन आतम पद पर वारिये[६] गुरु हित पटतर[७] नाहि हे ।
निश दिन चरण शरण में रहिये और न आन[८] उपाइ हे ॥३॥
जौं गुरु किरपा तनिहुँ[९] विचारैं मिटय कल्पना सोग[१०] हे ।
गुरु सम दाता[११] साहब[१२] नाहीं गुरु गुरु जपिये लोग हे ॥४॥
गुरु तजि और न चित्त[१३] बसाइये गुरु गुरु गुरु गुरु नित्त हे ।
जपत रहिय 'मेँहीँ' कर जोड़ी गुरु चरणन धरि चित्त हे ॥५॥

शब्दार्थ :

१. हितैषी, उपकारी,२.रात-दिन,सदा,३.सेवा,४.स्नेह, प्रेम,५.सबका मालिक, ईश्वर, ६. समर्पित करो, ७. तुलना, उपमा, बराबरी, ८.अन्य, ९. थोड़ी भी, १०. दुःख क्लेश, ११. दानशील, १२. परमात्मा, १३. हृदय ।

पद्यार्थ :

सद्गुरु के समान उपकारी दूसरा कोई नहीं है। इसलिए सदा उनकी

सेवा करो। वे ही हमारे तन-मन और आत्मा की रक्षा करनेवाले हैं। अतः एक गुरुनाम का ही सुमिरन करना चाहिए ॥१॥ वे नितप्रति माता से बढ़कर स्नेह करते हैं और पिता से भी अधिक भलाई करते हैं। (इतना ही नहीं) वे ईश्वर से भी अधिक भलाई (भलपन) रखने वाले हैं। उनके समान सहायक अन्य कोई नहीं है ॥२॥ गुरु के उपकार की तुलना नहीं हो सकती, इसलिए उनके चरणों में अपने तन-मन और आत्मा को समर्पित कर दो। दिन-रात उनके चरणों की शरण में रहो। उद्धार के लिए अन्य कोई उपाय नहीं है ॥३॥ यदि गुरु थोड़ी भी कृपा देने का विचार कर लें तो दुःख-क्लेश का अंत हो जाएगा। हे लोगो! गुरु के समान दानशील परमात्मा भी नहीं हैं। इसलिए गुरुनाम (गुरु-मंत्र) का जप करो ॥४॥ महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि गुरु को छोड़कर अन्य किसी को अपने हृदय में मत बसाओ। प्रतिदिन गुरु-चरणों को अपने अंदर प्रतिष्ठितकर करबद्ध होकर (अर्थात् नम्रता धारण कर) गुरुनाम का जप करते रहो ॥५॥

□□□□

(१०७)

चलु चलु चलू भाई, धरु, गुरु पद धाई[१]
होउ भाई दृढ़ अनुरागी[२], भ्रम त्यागी हो भाई ॥१॥
तन-सुख मन-सुख, इन्द्री-सुख सब दुःख,
तजि दे विषय दुखदाई, भ्रम खाई हो भाई ॥२॥
तन नव[३] द्वार हो रामा, अति ही मलीन[४] हो ठामा[५],
त्यागि चढ़ु दशम दुआरे[६], सुख पाउ रे भाई ॥३॥
भजु भाई गुरु गुरु, गुरु रूप ध्यान धरू,
सनमुख बिन्दु निरेखो[७], सुख देखो रे भाई ॥४॥
गुरु बिनु ज्ञान नाहीं, गुरु बिनु ध्यान नाहीं,
'मेँहीँ' न गुरु बिन आने[८] उपकारी हो भाई ॥५॥

शब्दार्थ :

१. शीघ्रतापूर्वक, २.सच्चे प्रेमी, ३.नौ, ४.अपवित्र, ५.स्थान, ६.द्वार, ७. देखो, ८. अन्य।

पद्यार्थ :

हे भाई!चलो, शीघ्रतापूर्वक चलकर गुरु के चरणों की शरण ग्रहण करो। सभी भ्रमों (संदेहों) को त्यागकर गुरु के सच्चे प्रेमी बनो ॥१॥ हे भाई! शरीर मन और इन्द्रियों से मिलने वाले सभी सुख दुःखप्रद हैं। इन भ्रम (अज्ञानता) की खाई रूप दुःखदायी विषयों को त्याग दो ॥२॥ इस शरीर के नौ दरवाजे (आँख,कान और नाक के दो-दो और मुँह तथा मल-मूत्र त्याग के एक-एक दरवाजे या छिद्र) अत्यन्त ही अपवित्र स्थान हैं। इन्हें त्यागकर (अर्थात् चेतनधारों को इनसे समेट कर) दशम द्वार— सुषुम्ना में प्रवेश करो और आत्म-सुख प्राप्त करो ॥३॥ हे भाई! गुरु नाम (गुरु मंत्र) का सुमिरन करो और गुरु के स्थूल रूप का मानस ध्यान करो। फिर (नयनाकाश में) सामने ज्योतिर्मय विन्दु को देखते हुए सुख का अनुभव करो ॥४॥ गुरु के बिना ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती, गुरु के बिना ध्यान की क्रिया भी नहीं जानी जा सकती। महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि गुरु के अतिरिक्त अन्य कोई ऐसे उपकारक नहीं होते हैं ॥५॥

□□□□

(१०८)

गुरु को सुमिरो मीत[१] क्यों अवसर खोवहू ।
भव में बहुतक दुक्ख युगन युग रोवहू ॥१॥
चहुँ खानिन में दुर्लभ नर को देह हो ।
सो तन धरि के मुक्ति जतन[२] करि लेह हो ॥२॥
केवल नर ही तन से मुक्ति को पावहू ।
याते[३] या तन दुर्लभ मुक्ति कमावहू ॥३॥
मुक्ति कमावहु झटपट[४] विलम्ब न लावहू ।
तन क्षण-भंगुर अहइ[५] नहीं गफिलावहू[६] ॥४॥
पल-पल छीजत[७] देह रहत छीजत सदा ।
औचक[८] ही गिरि जाय रहत छीजत सदा ॥५॥
गुरु को सुमिरो भाइ मुक्ति कमाइ हो ।
सुमिरन विधि लेहु जानि गुरुहि रिझाइ[९] हो ॥६॥

करि बाहर पट बन्द अन्तर पट खोलहू ।
या विधि अन्तर अन्त में सुरत समोबहू[१०] ॥७॥
ऐसेहि सुरत लगाय के सुमिरन नित करो ।
देवि साहब की सीख समुझि हिरदय धरो ॥८॥
'मेँहीँ' इन्ह पद दास रहे कर जोड़ि के ।
गुरु दिशि[११] लागो भाइ सकल दिशि तोड़ि के ॥९॥

शब्दार्थ :

१.मित्र,२.यत्न, प्रयास,३.इसलिए,४.शीघ्र,५.है, ६.बेपरवाह मत हो,७. क्षीण होता है, ८. अचानक, ९. प्रसन्न करके, १०. प्रवेश कराओ, ११.ओर, तरफ ।

पद्यार्थ :

हे मित्रो! गुरुनाम (गुरुमंत्र) का सुमिरन करो (मनुष्य शरीर रूप अमूल्य) अवसर को क्यों खो रहे हो ? इस संसार में बहुत तरह के कष्ट हैं। (यहाँ रहकर) अनेक युगों तक रोते रहोगे ॥१॥ (अण्डज, पिण्डज, उष्मज और अंकुरज इन) चार खानियों में मनुष्य शरीर सबसे दुर्लभ है। ऐसे उत्तम शरीर को पाकर संसार से मुक्त होने का प्रयास कर लो ॥२॥ मात्र मनुष्य शरीर में रहकर ही (शरीर और संसार के बंधन से) मुक्ति प्राप्त कर सकोगे । इसलिए यह शरीर दुर्लभ (बहुमूल्य) है, मुक्ति के लिए प्रयत्न करो ॥३॥ इस कार्य में देर न करके, शीघ्रता करो । यह शरीर किसी भी क्षण नष्ट हो जाने वाला है, अत: बेपरवाह मत होओ ॥४॥ प्रतिक्षण (सतत्) शरीर क्षीण होता रहता है। यह अचानक ही कभी (चेतना हीन होकर) गिर सकता है (अर्थात् प्राणहीन हो सकता है) ॥५॥ इसलिए गुरुनाम का सुमिरन करते हुए मुक्ति प्राप्त करो। गुरु को प्रसन्न करके उनसे सुमिरन (उपासना) करने की विधि जान लो ॥६॥ बाहर के दरवाजे (नौ द्वारों) को बंद कर अन्दर का द्वार (सुषुम्ना) खोलो। इस विधि से अन्तर के अंतिम पद (नि:शब्द) में सुरत को प्रवेश कराओ ॥७॥ इस प्रकार सुरत को संलग्न करके प्रतिदिन सुमिरन (उपासना) करो। सद्गुरु बाबा देवी साहब की यह शिक्षा समझ-बूझ कर हृदय में धारण करो ॥८॥ सद्गुरु बाबा देवी साहब के चरणों के सेवक महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज करबद्ध होकर कहते हैं कि हे भाई! सभी ओर से अपने प्रेम को हटाकर इनकी (गुरु की) ओर लगाओ ॥९॥

□□□□

(१०९)

सत्गुरु सेवत गुरु को सेवत मिटत सकल दुख झेला[१] रे ॥टेक॥
यह दुनियाँ दिन चारि बसेरा[२] यहाँ न मेरा तेरा रे ।
मेरा तेरा दोउ यम[३] के हाथें पकड़ि-पकड़ि जिन घेरा[४] रे ॥१॥
यह दुनियाँ बन्दी गृह[५] यम के जिव बन्दी रहै घेरा रे ।
सत्गुरु गुरु बिन ना कोइ कबहूँ जो तौड़ै यम-घेरा रे ॥२॥
याते[६] उठो सतगुरु गुरु हेरो[७] सेव करो बहुतेरा[८] रे ।
तन मन धन आतम तिनके पद अरपि[९] बचो यम फेरा रे ॥३॥
जागृत[१०] जिन्दा सत्गुरु जग में सब जिनको कर जोड़ा रे ।
बाबा सत्गुरु देवी साहब जा पद को 'मेँहीँ' चेरा[११] रे ॥४॥

शब्दार्थ :

१. उलझन, २.ठहरने का स्थान, वास-स्थान, ३.काल, ४.घेर रखा, रोक रखा, ५. कारागार, जेल, ६. इसलिए, ७.खोजो, ८. अनेक प्रकार से, बहुत, ९. समर्पित कर, १०. ज्ञान में प्रतिष्ठित, ११. दास, सेवक ।

पद्यार्थ :

सद्गुरु की सेवा करने से सभी प्रकार के कष्ट एवं उलझन समाप्त हो जाते हैं ॥टेक॥ यह संसार सिर्फ चार दिनों का वास-स्थान है, यहाँ न कुछ मेरा है और न तुम्हारा ही। 'मेरा' और 'तेरा' रूप द्वैत-भाव यम के दोनों हाथ हैं, जिनके द्वारा वह जीव को पकड़कर संसार में घेरे हुए हैं ॥१॥ वस्तुत: यह संसार यम का कारागार है, जिसमें सभी जीव बन्दी (कैदी) की तरह घिरे हैं। सद्गुरु की कृपा के बिना ऐसा कोई नहीं है, जो कभी इस घेरा (बंधन) को तोड़ सके ॥२॥ इसलिए सचेत होकर सद्गुरु की खोज करो और (जब वे मिल जाएं तो) अनेक प्रकार से उनकी सेवा करो । शरीर, मन, सम्पत्ति और अपनी आत्मा सब सद्गुरु के चरणों में समर्पित कर यम के बंधन से मुक्त हो जाओ ॥३॥ महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि अभी संसार में बाबा देवी साहब जीवित और ज्ञान में प्रतिष्ठित सद्गुरु हैं। सभी उनको नमस्कार करते हैं (अर्थात् उनकी महत्ता स्वीकार करते हैं) । मैं भी उन्हीं चरणों का दास (सेवक) हूँ ॥४॥

□□□□

(११०)

सतगुरु[१] पद बिनु गुरु[२] भेटत[३] नाहीं ॥टेक॥
दृढ़ विश्वासि[४] बनिय गुरु पद के, सेवत रहिय सदाई ।
मुक्ति डगर[५] गुरु जबहिं बतावें, सुरत चलत सुख पाई ॥१॥
अभ्यासी गुरु सेवी[६] हंसा[७], मुक्ति डगर चलि जाई ।
चलत चलत सतगुरु को पावत, भव दुख सकल मिटाई ॥२॥
याते छाड़ि[८] कपट अहंकारहिं, गुरु पद भजिय सदाई ।
भव सागर दुख परम कठिन से, आन[९] उबारक[१०] नाहीं ॥३॥
गुरु ही हितु गुरु ही पितु जाको, जाको गुरु ही सोहाई[११] ।
ते बड़ भागी[१२] पुरुष कह 'मेँहीँ', सहज परम गति[१३] पाई ॥४॥

शब्दार्थ :

१.शरीरधारी गुरु-संत सद्गुरु,२.आदिगुरु,परमात्मा,३.मिलते,४.विश्वास रखनेवाला, ५. मार्ग, ६.गुरु की सेवा करनेवाला, ७.जीवात्मा, ८. छोड़कर, ९.अन्य,१०उद्धार करनेवाला,११. सुहाता है, प्रिय है,१२. बड़ा भाग्यवान, १३. मोक्ष, मुक्ति ।

पद्यार्थ :

संत सद्गुरु के चरणों में गए बिना आदिगुरु — परमात्मा नहीं मिलते हैं ।।टेक।। गुरु-चरणों में पूर्ण विश्वास रखनेवाला बनो और सदा उनकी सेवा करते रहो । गुरु जब मुक्ति का मार्ग बतलाएँगे तो तुम्हारी सुरत उसपर चलती हुई परम सुख प्राप्त करेगी ।।१।। अन्तस्साधना का अभ्यास करनेवाला गुरुसेवी जीवात्मा ही मुक्ति मार्ग पर चलता है। चलते-चलते वह सद्गुरु के आत्म-स्वरूप को पाता है और उसके सभी सांसारिक कष्ट समाप्त हो जाते हैं ।।२।। इसलिए कपट और अहंकार को त्यागकर सदा गुरु-चरणों की आराधना करो । संसार रूप समुद्र के अति असह्य दुःखों से उद्धार करनेवाला (गुरु के अतिरिक्त) अन्य कोई नहीं है ।।३।। महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि जो व्यक्ति गुरु को ही अपना हितैषी और पिता मानता है और जिसे गुरु ही प्रिय है, वह बड़ा भाग्यवान है। उसे सहज ही (स्वभाविक रूप से) मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है ।।४।।

(१११)

बिना गुरु की कृपा पाये, नहीं जीवन उधारा है ॥टेक॥
फँसी स्रुति[१] आइ यम फाँसी[२], अयन[३] सुधि[४] आपनी नाशी,
भई भव सोग की वासी, कठिन जहँ ते उधारा है ॥१॥
गुरु निज भेद बतलावैं, सुरत को राह दरसावैं[५],
जीव-हित[६] आप ही आवैं, सुरत को आइ तारा[७] है ॥२॥
गुरु हितु हैं गुरु पितु हैं, गुरु ही जीव के मितु[८] हैं,
गुरु सम कोइ नहीं दूजा[९], जो जीवों को उधारा है ॥३॥
गुरु की नित्त कर पूजा, जगत इन सम नहीं दूजा,
'मेँहीँ' को आन[१०] नहीं सूझा[११], फकत[१२] गुरु ही अधारा[१३] है ॥४॥

शब्दार्थ :

१.सुरत, २.यम-फाँस, जन्म-मरण का चक्र, ३.घर,४.याद, ५. दिखलाते हैं, ६. जीवों के कल्याण के लिए,७.उद्धार करते हैं,८.मित्र,९.दूसरा, अन्य, १०.अन्य, दूसरा, ११.दिखलाई नहीं पड़ा, १२. सिर्फ, केवल, १३.आधार ।

पद्यार्थ :

गुरु की कृपा प्राप्त किए बिना जीवन में कभी उद्धार (कल्याण) संभव नहीं होता ॥ टेक॥ सुरत यम-फाँस (जन्म-मरण के चक्र) में आकर फँस गई है और अपने आदि घर (परमात्म-धाम) की याद को उसने भुला दिया है। इस तरह वह दुःखपूर्ण संसार की निवासी हो गई है, जहाँ से उसका उद्धार पाना बड़ा कठिन है ॥१॥ गुरु अपनी (अनुभवसिद्ध) युक्ति बतलाकर जीवात्मा को (परमात्मा तक जाने का) मार्ग दिखलाते हैं। वे जीवों के कल्याण के लिए स्वेच्छा से संसार में आते हैं और यहाँ आकर जीवों का उद्धार करते हैं।।२।। गुरु हमारे हितैषी हैं, पिता हैं और मित्र भी हैं। गुरु के समान अन्य कोई ऐसा नहीं है जो जीवों का उद्धार कर सके ।।३।। इसलिए प्रतिदिन गुरु की पूजा (उपासना) करनी चाहिए । संसार में इनके समान उपकारी दूसरे नहीं हैं। महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि मुझे गुरु के समान (हितैषी) अन्य कोई भी दिखलाई नहीं पड़ा । अतएव केवल गुरु ही मेरे आधार हैं ॥ ४॥

(११२)

करिये भाई सतगुरु गुरु पद सेवा ॥ टेक ॥
विषय भोग मन ललचि-ललचि धरे[१] जाय पड़े यम जेवा[२] ।
मात पिता दारा[३] सुत[४] बन्धू, कुटुम्ब न करे तव[५] सेवा ॥ १ ॥
धन को गिने[६] निज तन न सहाई, तुम हंसा[७] एकएका[८] ।
याते चेति[९] सतगुरु गुरु सेवो, करिहैं सहाइ अनेका ॥ २ ॥
गुरु निज भेद दें अधर[१०] चढ़न को, गुरु मुख[११] चढ़त बिसेखा[१२] ।
चढ़त-चढ़त सो टपत[१३] गगन सब, जाय मिलत सब सेखा[१४] ॥ ३ ॥
देवी साहब पूरण सतगुरु, जिन सम भेदि न दूजा ।
'मेँहीँ' निशिदिन चरण शीश धरि, आप अरपि करु पूजा ॥ ४ ॥

शब्दार्थ :

१.ग्रहण करता है,२.यम-ग्रास, यम का भोजन, ३.स्त्री, ४. पुत्र, ५.तुम्हारी, ६. धन की कौन कहे, ७. जीवात्मा, ८. एक-ही-एक, अकेला, ९.सचेत, सावधान, १०.अन्तराकाश,११.गुरु से युक्ति लेकर उसके अनुकूल चलने वाले, १२. विशेष रूप से, प्रायः, १३.पार करता है, १४.शेष तक, अंत तक ।

पद्यार्थ :

हे भाई! सद्‌गुरु के चरणों की सेवा करो ।टेक॥ तुम्हारा मन विषय-भोगों की लालच में पड़-पड़कर उसे ग्रहण करता है और यम का ग्रास (भोजन) बनता है। अंत समय में माता, पिता, स्त्री, पुत्र, मित्र या कुटुम्ब आदि कोई तुम्हारी सहायता नहीं कर पाएँगे ॥१॥ धन की कौन कहे, तुम्हारा शरीर भी तुम्हारे काम नहीं आएगा और तुम जीवात्मा अकेले इस संसार से जाओगे। इसलिए सचेत (सावधान) होकर सद्‌गुरु की सेवा करो । वे अनेक तरह से तुम्हारी सहायता करेंगे ॥२॥ सद्‌गुरु अन्तराकाश में चढ़ने की अपनी (अनुभूत) युक्ति बतलाते हैं । जो व्यक्ति गुरु से इस युक्ति को प्राप्त (कर साधना) करते हैं,वे ही विशेष रूप से अंतराकाश में गमन करते हैं । ऐसे साधक चलते-चलते (स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण और कैवल्य रूप) सभी आकाशों को पार कर सबसे अंत (परमात्मधाम) तक पहुँचते हैं ॥३॥ महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि बाबा देवी साहब सच्चे सद्‌गुरु हैं। उनके समान अंतस्सा-धना का भेद जानने वाले दूसरे नहीं हैं। इसलिए मैं रात-दिन उनके चरणों

में अपने सिर को टेकता हूँ। तुम भी अपने को समर्पित कर उनकी आराधना करो ॥४॥

टिप्पणी :

आकाश, गगन, नभ, आसमान, शून्य; ये सभी पर्यायवाची शब्द हैं। संतों की वाणियों में इसकी भरपूर चर्चा मिलती है। ज्ञातव्य है कि संतों ने अन्तस्साधना में जिस आकाश को अनुभव किया,वह बाहर का नहीं, अन्तर का है। अवश्य ही उन सबकी अभिव्यक्ति शैली भिन्न-भिन्न है। जैसे किसी संतवाणी में केवल आकाश, किसी में तीन आकाश, किसी में पाँच आकाश, किसी में आठ आकाश और किसी में इक्कीस आकाश से संबंधित बातें मिलती हैं। उदाहरणार्थ — संत कबीर साहब अपनी वाणी में किसी स्थल पर गगन की ओट में निशाना साधने, कहीं आकाश में प्रकाश पाने, कहीं गगन मंदिर में फूल-फुलाने और कहीं पद्म पराग में अनुराग रखने वाले भ्रमर के रसपान का बखान करते हैं। यथा —

'गगन की ओट निशाना है। दहिने सूर चन्द्रमा बायें तिनके बीच छिपाना है॥'
'गगन मंडल के बीच में तहँवाँ झलके नूर। निगुरा महल न पावई पहुँचेगा गुरु पूर ॥'
'गगन मंदिर में फूल फुलाना । तहाँ भँवर रस पावै ॥'

आदि गुरु नानक साहब गगन निवासी को उदासी की संज्ञा से अभिहित करते हैं —

'गगन निवासि आसनु जिसु होई। नानक कहै उदासी सोई ॥'

महर्षि मेँहीँ अपनी सुरत को गगन पर चढ़ाने के लिए गुरु से प्रार्थना करते हैं —

'गुरु मम सुरत को गगन पर चढ़ाना...'

परम भक्तिन मीराबाई का कहना है कि विषयों में भटकने वाला पाजी मन आसमान की यात्रा करने पर राजी हो जाता है।

'मीरा मन मानी सुरत सैल असमानी ।'

संत राधास्वामी साहब का कथन है कि देर क्यों करते हो, शीघ्रतापूर्वक आकाश के द्वार पर पहुँचो ।

'सखी री क्यों देर लगाई । चटक चढ़ो नभ द्वार ।'

संत धरनी दासजी ने अभ्यन्तर में आठ आकाशों को देखा, फिर तो उनके आन्तर-बाह्य में कोई भेद नहीं रह गया अर्थात् उनको सर्वत्र सर्वक्षण सर्वव्यापक सर्वेश्वर की अनुभूति होने लगी ।

'आठयें आँठ अकासहि निरखो, दृष्टि अलोक न होई ।
बाहर भीतर सर्व निरन्तर अन्तर रहै न कोई ॥'

अब हाथरस निवासी संत तुलसी साहब की अनुभूत पूत वाणी का मनन कीजिये। उन्होंने अपने अंदर अहि (पृथ्वी) और गगन के दर्शन किए। इतना ही नहीं, इनके अतिरिक्त और भी बहुत सी चीजें देखीं ।

'महि और गगन देखि उर माईं। और अनेकन बात दिखाई ।'

महायोगी गोरखनाथ जी की भाँति पूज्य महर्षि मे ँही ँ ने ईश्वर की सर्वव्यापकता की ऊपमा गगन से दी है। यथा —

'बस्ती न शून्यं-शून्यं न बस्ती अगम अगोचर ऐसा ।
गगन शिखर मँहि बालक बोलहि ँ वाका नाँव धरहुगे कैसा ॥'
(गोरखनाथजी महाराज)

'प्रभु जी व्यापक जनु गगन रहाहीं ।' (महर्षि मे ँही ँ पदावली)

संत दादू दयालजी ने ईश्वर-स्वरूप के संबंध में कहा है कि तीन शून्यों के परे का प्रभु न तो सगुण है और न निर्गुण ही अर्थात् दोनों से परे है। यथा —

'सुन्नी सुन्न सुन्न के पारा अगुण सगुण नहिं दोई ।'

महर्षि मे ँही ँ परमहंसजी ने वर्णित तीन शून्यों को अन्धकार का आकाश, प्रकाश का आकाश और शब्द का आकाश कहकर 'निर्गुण-सगुण के पार में' कहा है। साथ ही अपनी रचना में उन्होंने घटाकाश, मठाकाश, पटाकाश और महदाकाश का भी उल्लेख किया है। मैत्रेय्युपनिषद् (सामवेद का) में लिखा है कि हृदय रूपी आकाश में सूर्य सदा अवस्थित रहता है। वह कभी न तो उगता है, और न डूबता ही है ।

'हृदाकाशे चिदादित्यः सदा भासति भासति ।
नास्तमेति न चोदेति कथं सन्ध्या मुपास्महे ॥' (अ०२/१४)

मण्डल ब्राह्मणोपनिषद् (शुक्ल यजुर्वेद का) ब्राह्मण-४ में वर्णित पाँच आकाश इस भाँति हैं —

'आकाशं पराकाशं महाकाशं सूर्याकाशं परमाकाशं पञ्चभवन्ति ।'

अर्थात् आकाश, पराकाश, महाकाश, सूर्याकाश और परमाकाश; ये पाँच आकाश हैं ।

संत कबीर साहब की वाणी में भी हम पाँच आकाश का उल्लेख पाते हैं।

'पंज असमाना जब लिया, तब रन धसिया सूर ।
दिल सौंपा सिर ऊबरा, मुजरा धनी हजूर ॥'

उल्लिखित पंचाकाश को पू० महर्षिजी ने स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण और कैवल्य कहकर अभिहित किया है । गगन से गगन में गमन करने के संदर्भ में गुरु नानक देवजी की वाणी से महर्षिजी की वाणी में कितना विलक्षण साम्य है, मिलान कर देखिये —

'गगनं तरि गगन गमन करि फिरै ।'... (गुरु नानक देवजी)
'चढ़त चढ़त सो टपत गगन सब ...।' (महर्षि मे ँही ँ परमहंसजी)

इससे मिलती जुलती बात हम संत रघुनाथ दासजी की वाणी में पाते हैं।

'चढ़त-चढ़त अस चढ़ि गये, जहँ आकाश इकईस ।
लगे चरित देखन सबे, भयो सो ध्यानिक ईस ॥'

संत तुलसी साहब ने बाईस आकाश का वर्णन किया है —

'बाइस सुन्न वर्त्तमान जानि संत कोई परखिहैं ।
गगन गगन परमान, सुन्न सुन्न भिनि भिनि लखै ॥' (घटरामायण)

उपर्युक्त उद्धरणों को पढ़कर ऐसा नहीं समझना चाहिए कि संतों की वाणियों में एकरूपता नहीं है। बल्कि जैसे कोई एक रूपया को दो अठन्नियाँ, कोई चार चौवन्नियाँ, कोई आठ दुअन्नियाँ, कोई सोलह एकन्नियाँ और कोई एक सौ पैसे कहते हैं, पर सभी एक रूपये को ही दरसाते हैं, उसी प्रकार एक ही ब्रह्म के अंदर अनेक प्रकार के आकाश हैं, ऐसा समझना चाहिए। अतएव सभी संतों के विचारों में भिन्नता नहीं, अभिन्नता है ।

□□□□

(११३)

आगे माई सत्गुरु खोज करहु सब मिलिके,
जनम सुफल[१] कर राह ॥टेक॥
आगे माई सत्गुरु सम नहिं हित जग कोई,
मातु पिता भ्राताह ।

सकल[२] कल्पना[३] कष्ट निवारें[४],
मिटैं सकल दुख दाह[५] ॥आगे०॥
भव सागर अन्ध कूप पड़ल जिव,
सुझइ न चेतन राह[६] ।
बिन सतगुरु इहो गति जीव के,
जरत रहे यम धाह[७] ॥आगे०॥
सतगुरु सत[८] उपकारि जिवन के,
राखैं जिवन सुख चाह ।
होइ दयाल[९] जगत में आवैं,
खोलैं चेतन सुख राह ॥आगे०॥
परगट[१०] सत्गुरु जग में विराजैं,
मेटयँ जिवन दुःख दाह ।
बाबा देवी साहब जग में कहावयँ[११],
'मेँहीँ' पर मेहर निगाह[१२] ॥आगे०॥

शब्दार्थ :

१. सफल,सार्थक,२.समस्त, सभी, ३.दुःख, वेदना,४.निवारण करते हैं, दूर करते हैं, ५.दुःख से उत्पन्न जलन, व्यथा जनित व्याकुलता,६.अन्तरमार्ग, अन्तर्ज्योति एवं अन्तर्नाद रूप मार्ग, ७. यम-यातना के कारण जोर से चिल्लाकर रोना, ८. सच्चे, ९.दयालु, दया के वशीभूत,१०.प्रकट, प्रत्यक्ष, ११.पुकारे जाते हैं, १२.कृपा दृष्टि ।

पद्यार्थ :

हे माताओ! सब मिलकर सच्चे गुरु की खोज करो। यही मनुष्य जन्म को सार्थक बनाने का मार्ग है ।।टेक।। इस संसार में माता, पिता, भाई आदि कोई भी सद्गुरु के समान उपकारक नहीं हैं। वे (सद्गुरु) हमारे सभी दुःख क्लेशों का निवारण करते हैं और व्यथा जनित व्याकुलताओं को मिटाते हैं ।।१।। जीव संसार रूप अज्ञानता के कूप में पड़ा हुआ है। उसे (अन्तर्ज्योति और अन्तर्नाद रूप) चेतन मार्ग दिखलाई नहीं पड़ता। सद्गुरु से विमुख रहने पर मरनोपरांत जीव की ऐसी गति होती है कि उसे यम के अग्नि-कुण्ड में जलते हुए

जोर-जोर से रोते-चिल्लाते रहना पड़ता है ।।२।। सद्गुरु जीवों के सच्चे हितैषी होते हैं। वे सबके सुख की कामना रखते हैं। वे (जीवों के प्रति) दया के वशीभूत होकर संसार में आते हैं और उन जीवों के लिए चेतन मार्ग (अन्तर मार्ग) खोल देते हैं ।।३।। महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि संसार में प्रत्यक्ष रूप में सद्गुरु विराजते हैं, जो जीवों की पीड़ाओं-व्याकुलताओं का नाश करते हैं। वर्तमान काल में ऐसे सद्गुरु, बाबा देवी साहब के नाम से पुकारे जाते हैं । मुझ पर इनकी बड़ी कृपा-दृष्टि है।

□□□□

(११४)

चौपाई

सम[१] दम[२] और नियम[३] यम[४] दस दस ।
सत्गुरु कृपा सधें[५] सब रस-रस[६] ॥ १ ॥
तन-मन पीर[७] गुरु संघारत ।
तम अज्ञान गुरु सब टारत ॥ २ ॥
गुण त्रैफंद[८] कटत हैं गुरु संगु[९] ।
गुण निर्मल लह[१०] रटत[११] गुरु मगु[१२] ॥ ३ ॥
रुचत[१३] कर्म-सत धर्म-कथा अरु ।
रुकत मोह मद संग करत गुरु ॥ ४ ॥
मरत आस जग हो सुख दुख सम ।
मदद गुरु की हो अवगुण कम ॥ ५ ॥
हाजत[१४] पूरै रहै न चाहा ।
हानि न गुरु सों होवत लाहा ॥ ६ ॥
राहत[१५] बखसनहार[१६] अपारा ।
राग द्वेष तें करें नियारा[१७] ॥ ७ ॥
जम दुःख नासैं सारैं[१८] कारज[१९] ।
जय जय जय प्रभु सत्य अचारज[२०] ॥ ८ ॥
कीनर[२१] नर[२२] सुर[२३] असुर[२४] गुरु की ।
कीरति[२५] भनत[२६] कहत जय गुरु की ॥ ९ ॥

जनम नसै अरु होय अमर अज[२७] ।
जय जय सद्‌गुरु जय सद्‌गुरु भज ॥१०॥
यत्न सहित[२८] करु गुरु कहते सोय ।
यम सम दम अरु नियम पूर्ण होय ॥११॥

शब्दार्थ :

१. शम, मनोनिग्रह,२. इन्द्रिय निग्रह ३.शौच, सन्तोष, तप,स्वाध्याय (अध्यात्म शास्त्र का पाठ करना), और ईश्वर प्रणिधान (ईश्वर में चित्त लगाना) । हठयोग के अनुसार*, नियम — तप, संतोष, आस्तिक्य, दान, ईश्वरपूजन, सिद्धान्त-श्रवण, लज्जा, मति, जप और होम । ४. सत्य, अहिंसा, अस्तेय (अचोर्य),ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। हठयोग के अनुसार*, यम — सत्य,अहिंसा, अस्तेय (अचोर्य), ब्रह्मचर्य, दया, आर्जव (सरलता), क्षमा,धृति (धैर्य), मिताहार और शौच ।५.सधता है, अधिकार में आता है, ६.धीरे- धीरे, ७.पीड़ा,व्यथा,८. सत्व, रज और तम — इन त्रैगुणों का बंधन,९.संग, सान्निध्य, १०. प्राप्त होता है, ११. जप करने से, १२.गुरु-मार्ग,गुरु-निर्देश,१३. रुचि होती है, अच्छा लगता है, १४. इच्छा, १५.चैन, शांति, १६. देनेवाला, १७. दूर करना, अलग हटाना, १८. सम्पन्न करते हैं, पूर्ण करते हैं, १९.कार्य, २०. आचार्य, गुरु, २१. किन्नर, एक प्रकार के देव-योनि में माने जानेवाले प्राणी, जिसका मुख घोड़े जैसा कहा गया है, २२. मनुष्य, २३.देवता, २४. दानव, २५.यश, २६. कहते हैं, बखान करते हैं, २७. अजन्मा, जन्म रहित, २८. प्रयासपूर्वक, निष्ठापूर्वक ।

पद्यार्थ :

मनोनिग्रह, इन्द्रिय निग्रह, दस नियम और दस यम; ये सभी सद्‌गुरु की कृपा से धीरे-धीरे सधते हैं (अर्थात् अधिकार में आते हैं) ॥१॥ शारीरिक और मानसिक पीड़ाओं को गुरु विनष्ट करते हैं और अज्ञान रूप अंधकार को दूर करते हैं ॥२॥ गुरु के सान्निध्य से त्रैगुण का बंधन कटता है और गुरु-निर्देश के अनुसार जप करने से सद्‌गुण प्राप्त होते हैं ॥३॥ सत्कर्म और धर्म-कथा में रुचि होती है। गुरु-संग से मोह और अहंकार क्षीण होते हैं ॥४॥ संसार की आसक्ति मिटती है और सुख-दुःख समान हो जाते हैं। गुरु की सहायता से दुर्गुण घटने लगते हैं ॥५॥ इच्छाएँ पूरी होती हैं, चाहनाएँ नहीं रहतीं, गुरु से कभी हानि नहीं होती बल्कि सदा लाभ-ही-लाभ होता है ॥६॥ वे असीम शांति प्रदान करते हैं और (भक्तों को) जागतिक

* हठयोग प्रदीपिका १/१७-१८

आसक्ति एवं ईर्ष्या से अलग हटा लेते हैं ॥७॥ वे यम के दुःखों को नाश करनेवाले तथा कार्यों को पूर्ण करनेवाले हैं। ऐसे सच्चे गुरु रूप स्वामी की जय हो, जय हो, जय हो ॥८॥ किन्नर, मनुष्य, देवता, दानव सभी गुरु के यश का बखान करते हैं और उनकी जय-जयकार करते हैं ॥९॥ (उनकी कृपा से संसार में) जन्म लेना छूट जाता है, जीव अमर और अजन्मा हो जाता है, इसलिए सदैव गुरु की जय-जयकार करो ॥१०॥ गुरु जो कहें, सो यत्नपूर्वक (निष्ठापूर्वक) करो, तब तुम यम-नियम तथा शम-दम में पूर्ण हो जाओगे ॥११॥

□□□□

(११५)

योग हृदय[१] में वास[२] ना, तन वास है तो क्या ।
सत सरल युक्ति पास ना, और पास है तो क्या ॥१॥
सद्‌गुरु कृपा की आस[३] ना, और आस है तो क्या ।
करता जो नित अभ्यास ना, विश्वास है तो क्या ॥२॥
अन्तर में हो प्रकाश ना, बाहर प्रकाश क्या ।
अन्तर्नाद का उपास्य ना, दीगर[४] उपास्य क्या ॥३॥
पालन हो सदाचार[५] ना, आचार[६] 'मेँहीँ' क्या ।
गुरु-हरि चरण में प्रीति ना, रूखा विचार क्या ॥४॥

शब्दार्थ :

१.आज्ञाचक्र, सुषुम्ना,२.निवास,३.आशा,४.अन्य, दूसरा, ५.सत्य आचरण— झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार; इन पंच पापों का त्याग,६.बाहरी पवित्रता ।

पद्यार्थ :

तुम (जीवात्मा) शरीर में रहते हो, पर यदि तुमने सुषुम्ना में अपना निवास नहीं बनाया, तो (मनुष्य शरीर पाने का) क्या लाभ ? यदि तुम अन्तस्साधना की सच्ची और सरल युक्ति नहीं जानते हो तो अनेक वाह्याचार (जप, तप, व्रत आदि) करने से क्या लाभ ? (॥१॥) यदि तुम सद्‌गुरु-कृपा की आशा (भरोसा) नहीं रखकर अन्य किसी से (कल्याण पाने की) आशा रखते हो तो क्या लाभ मिलेगा? यदि तुमको ईश्वर में विश्वास भी है, पर (उसकी प्राप्ति के लिए) नियमित ध्यानाभ्यास नहीं करते हो, तो क्या उपलब्धि मिलेगी ? (॥२॥) तुम्हारे अंदर प्रकाश न हो, (अंधकार छाया

हुआ रहे) तो बाहर के प्रकाश से क्या लाभ? यदि आन्तरिक नाद की उपासना का ज्ञान न हो तो अन्य प्रकार की उपासनाओं से क्या मिलेगा? (॥ ३॥) महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि यदि सदाचार का पालन न किया जाय (अर्थात् झूठ चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार से न बचा जाय) तो मात्र बाहरी पवित्रता से क्या मिलनेवाला है? यदि परमात्मा के प्रतिरूप — सद्गुरु में प्रेम न हो तो केवल शुष्क (आचरण-रहित) ज्ञान छाँटने से क्या लाभ ? अर्थात् इन बातों से कोई लाभ नहीं मिलता ॥ ४ ॥

□□□□

(११६)

एकबिन्दुता[१] दुर्बीन[२] हो, दुर्बीन क्या करे ।
पिण्ड[३] में ब्रह्माण्ड[४] दरस हो[५], बाहर में क्या फिरे[६] ॥१ ॥
सुनना जो अन्तर्नाद हो, बाहर में क्या सुने ।
ब्रह्मनाद[७] की अनुभूति हो, फिर और क्या गुने[८] ॥२ ॥
सुरत शब्द योग[९] हो, और योग क्या करे ।
सहज* ही निज काज[१०] हो, कटु साज[११] क्या करे ॥३ ॥
सद्गुरु कृपा ही प्राप्त हो, अप्राप्त क्या रहे ।
'मेँहीँ' गुरु की आस[१२] हो, भव त्रास[१३] क्या करे ॥४ ॥

शब्दार्थ :

१.दोनों दृष्टिधारों का आज्ञाचक्र — सुषम्ना में एक बिन्दु पर मिल जाना । (इस क्रिया से स्थूल और सूक्ष्म जगत में दूर तक सबकुछ देखने की शक्ति प्राप्त हो जाती है),२.दूरबीन, दूर की वस्तु को स्पष्ट देखने का यंत्र, ३. शरीर, ४. संसार, सम्पूर्ण विश्व, जिसके भीतर अनंत लोक हैं, ५. दिखाई पड़ता हो, ६.चले, भटके, ७. सारशब्द, ८. चिंतन करे, ९. शब्द साधना, नादानुसंधान,१०.अपना काम — आत्मा द्वारा परमात्म-साक्षात्कार, ब्रह्म दर्शन, ११. कठिन उपासना, कष्टप्रद योग,१२.आशा,१३.जन्म-मरण का दुःख ।

पद्यार्थ :

यदि एकविन्दुता रूप दूरबीन प्राप्त हो जाय, तो सांसारिक (भौतिक) दूरबीन की क्या आवश्यकता ? जो अपने शरीर के अंदर ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को देखता हो, वह बाह्य संसार में क्यों भटके? (॥१॥) जो आन्तरिक नाद

(शब्द) को सुनता हो, वह बाहरी शब्दों को सुनकर क्या करेगा ? जो सारशब्द को अनुभव कर रहा हो, वह और किस बात का चिन्तन करे ? (॥२॥) जो नादानुसंधान रूप योग करता हो, उसे अन्य प्रकार के योगों से क्या काम ? जब सहज* रूप से अपना काम (ब्रह्म-दर्शन) हो जानेवाला हो, तो (हठयोग आदि) कठिन उपासना की क्या आवश्यकता ? (॥३॥) यदि सद्गुरु की कृपा ही प्राप्त हो जाय तो संसार में अप्राप्त क्या रह जाएगा ? महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि जिसे (एकमात्र) सद्गुरु की ही आशा है (उनपर पूर्ण विश्वास है), जन्म-मरण का दुःख उसका क्या बिगाड़ सकता है ? (कुछ भी अहित नहीं कर सकता ।) ॥४॥

*** टिप्पणी :**

संतों की वाणियों में सहज शब्द का प्रयोग विविध रूपों में हुआ है। यहाँ 'सहज' से राजयोग और 'कटुसाज' से हठयोग समझना चाहिए । राजयोग की साधना में जप और ध्यान की मुख्यता होती है। इसको विहंगम मार्ग और मीन मार्ग भी कह सकते हैं । दृष्टियोग की क्रिया को विहंगम मार्ग और सुरतशब्द-योग (नादानुसंधान) को मीन मार्ग कहते हैं। यह गृहस्थ और विरक्त सबके लिए सरल, सुगम और निरापद है। हठयोग में नेति, धौती, मुद्रा, पूरक, कुम्भक, रेचक, प्राणायामादि की क्लिष्ट क्रिया होती है, जो सबके लिए संभव नहीं और यह सापद भी है। शांडिल्योपनिषद् में लिखा है —

'यथा सिंहो गजो व्याघ्रो भवेद्वेश्यः शनैः शनैः।
तथैव सेवितो वायुरण्यथा हन्ति साधकम् ॥'

अर्थात् जैसे सिंह, हाथी और बाघ धीरे-धीरे काबू में आते हैं, इसी प्रकार प्राणयाम (अर्थात् वायु का अभ्यास कर वश में करना) भी किया जाता है; प्राकारान्तर होने से वह अभ्यासी को मार भी डालता है।

अब सहज के सम्बन्ध में कुछ संतों की वाणियों का अनुशीलन कीजिये। सहज=स्वाभाविक, सरल, सुगम, सहजात,सह+ज=साथ उत्पन्न होने वाला। परमप्रभु परमात्मा की मौज से सुरत और शब्द दोनों की उत्पत्ति एक साथ हुई है ।

'सुरत शब्द दोउ धार समान । पुरूष अनामी के ये प्राण ॥'

(संत राधास्वामी साहब)

'शब्द योग' सरल योग है, राजयोग है, सहज योग है ।

अन्तर्ज्योति और अन्तर्नाद का ध्यान सहजयोग है। संत कबीर साहब की वाणी है —

'सहज ध्यान धरु सहज ध्यान धरु गुरू के वचन समाई हो ।
मेली चित्त चराचित्त राखो, रहो शब्द लौ लाई हो ॥'
'शब्द खोजि मन बस करै, सहज योग है येहि ॥
सत्त शब्द निजसार है, यह तो झूठी देहि ॥'
तथा - 'न योगी योग से ध्यावे, न तपसी देह जरबावै ।
सहज में ध्यान से पावै, सुरत का खेल जेहि आवै ॥'

परम-प्रभु परमात्मा को प्राप्त कराने में सारशब्द के अतिरिक्त और कोई साधन सक्षम नहीं है। इसलिए उस शब्द को संत कबीर साहब ने 'सहज' कहा है। अब उन्हीं के शब्दों में सहज की परिभाषा का मनन कीजिए —

'सहज सहज सब कोई कहै, सहज न चीन्है कोय ।
जा सहजे साहब मिलै, सहज कहावै सोय ॥'
'साधो सहज समाधि भली ।'

संत दादू दयालजी ने बिखरे हुए मन को समेटने के लिए शब्द को सहज की डोरी की संज्ञा दी है। यथा —

'क्यों करि उलटा आणिये, पसरि गया मन फेरि ।
दादू डोरी सहज की, यों आनै घेरि घेरि ॥'
'सहज सुन्न मन राखिये, इन दुन्यू के माहिं ।'
'सतगुरु भेटै ता सहसा टूटै धावतु वरजि रहाइअै ।
नीझरू झरै सहज धुनि लागै घर ही परचा पाइअे ॥'
(गुरुनानक साहब)

'इड़ा में आवै पिंगला में धिआवे, सुखमना के धरि सहजि समावै ।'
(बाबा श्री चन्दजी)

पातंजल दर्शन के अनुसार योग के आठ अंग है — यम,नियम,आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार,धारणा, ध्यान और समाधि। इन अंगों में सातवां ध्यान का और आठवां समाधि का स्थान है। शब्द ध्यान करने से समाधि लगती है और प्रभु की प्राप्ति होती है।

'तब शिव सहज स्वरूप संभारा । लागी समाधि अखंड अपारा ॥'
(रामचरित मानस)

□□□□

(११७)

अन्तर के अंतिम तह[१] में गुरु[२] हैं, मन पता[३] पाता[४] नहीं ।
नैनों के तिल में जोति उनकी, नजर में आता नहीं ॥१॥
अंग संग हर वक्त[५] रहता, प्रगट हो आता नहीं ।
हो रहे हैरान[६] सागिल[७], जल्द दिखलाता नहीं ॥२॥
खोजते फिरते बहुत से, इस जगत में जा-ब-जा[८] ।
अंतर के अंतिम तह के रह[९] बिन, कोई उसे पाता नहीं ॥३॥
बिन दया संतन की 'मेँहीँ', जानना इस राह को ।
हुआ नहीं होता नहीं, वो होनहारा[१०] है नहीं ॥४॥

शब्दार्थ :

१.तल, दर्जा, २.आदिगुरु, परमात्मा, ३. ठिकाना, जानकारी, ज्ञान, ४. प्राप्त करता, ५. सदा, सतत्, ६. व्यग्र, ७. अभ्यासी, ८. जहाँ-तहाँ, ९. राह, रास्ता, १०. होनेवाला ।

पद्यार्थ :

शरीर के अंदर अंतिम तल (दर्जे) में आदिगुरु — परमात्मा का निवास है, लेकिन मन उसका ज्ञान नहीं कर पाता है। दोनों आँखों के तिल में परमात्मा का प्रकाश स्थित है, पर वह देखने में नहीं आता ॥१॥ शरीर के साथ वह सदा हमारे अंदर विद्यमान रहता है,लेकिन वह प्रत्यक्ष नहीं हो पाता है। साधक व्यग्र हो जाता है, पर वह शीघ्र (सहजतापूर्वक) देखने में नहीं आता ॥२॥ संसार में बहुत से लोग जहाँ-तहाँ परमात्मा को खोजते-फिरते हैं, लेकिन शरीर के अंदर अंतिम तल (नि:शब्द परम पद) के रास्ते को जाने बिना कोई उसे प्राप्त नहीं कर पाता ॥३॥ महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि बिना संतों की कृपा के इस आंतरिक राह को जान पाना, न (भूतकाल में) कभी हुआ है, न तो (वर्तमान समय में) हो रहा है और न ही (भविष्य में) होने वाला है ॥४॥

□□□□

(११८)

सुरत[१] सम्हारो[२] अधर[३] चढ़ाओ, झिलमिल[४] जोत जगाओ री ।
तारा झलके[५] दामिनि दमके[६] दीपक जोति उगाओ री ॥१॥
चाँदनी चन्द सूर[७] परेखो[८], आतम अनुभव पाओ री ।
पाँच[९] तीन[१०] मन न्यारा[११] होके, सत्त शब्द[१२] मिल जाओ री ॥२॥
शांति लाभ का यत्न यही है, सब सन्तन ने गायो री ।
देवी साहब प्रचार करें यहि, 'मेँहीँ' गाइ सुनायो री ॥३॥

शब्दार्थ :

१.चेतन-वृत्ति, २.सँभालो, समेटो, ३.अन्तराकाश,४.जगमग, ५.दीखता है, ६. बिजली चमकती है, ७. सूर्य, ८. देखो, ९. पाँच तत्त्व—मिट्टी, जल, अग्नि, वायु और आकाश, १०. तीन गुण — सत्व, रज और तम, ११. परे, १२. सार-शब्द ।

पद्यार्थ :

(शरीर और संसार में फैली हुई) सुरत को समेटकर अन्तराकाश में ले जाओ और वहाँ जगमगाता हुआ प्रकाश प्रकट करो। वहाँ तारा दीखता है, बिजली चमकती है और दीपक का प्रकाश भी प्रत्यक्ष होता है ॥१॥ चन्द्रमा की चाँदनी और सूर्य को देखो और (इस तरह आगे बढ़ते हुए) आत्मा का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करो । पाँच तत्त्व तीन गुण और मन से भी परे जाकर सारशब्द में लीन हो जाओ ॥२॥ शांति प्राप्त करने की यही विधि है, जिसे सभी संतों ने गाया (बताया) है। महर्षि मेँहीँ परमहंसजी कहते हैं कि सद्गुरु बाबा देवी साहब इसी ज्ञान का प्रचार करते हैं और मैंने भी इसे गाकर सुना दिया ॥३॥

टिप्पणी :

मण्डल ब्राह्मणोपनिषद (शुक्ल यजुर्वेद का) ब्राह्मण-२ में लिखा है —

आदौ तारक वद् दृश्यते । ततो वज्र दर्पणम् । तत उपरि पूर्णचन्द्र मण्डलम् ।
ततो नवरत्न प्रभा मण्डलम् । ततो मध्याह्नार्कमण्डलम् ।

अर्थात् आरम्भ में तारा-सा दीखता है । तब हीरा के ऐना की

तरह दीखता है। उसके बाद पूर्ण चन्द्र मण्डल दिखलाई देता है। उसके बाद नौ रत्नों का प्रभामण्डल दिखाई देता है। उसके बाद दोपहर का सूर्यमण्डल दिखाई देता है।

□□□□

(११९)

कजली*

घटवा[१] घोर रे अंधारी[२] सुति[३] आँधरी[४] भई ॥१॥
सुधि बुधि[५] भागीं तमगुण लागी, गुरु ने सुधी[६] दई ।
टकुआ ताकन[७] दिये, बताई, तिल[८] खुलि तिमिर फटी ॥२॥
चमके तारा सुषमन द्वारा[९], सहस कमल लख[१०] री ।
त्रिकुटी सूरज ब्रह्म दरस कर[११], सुरत शब्द रल री[१२] ॥३॥
सद्गुरु साहब प्रभु[१३] को नायब[१४], भेद प्रचारक री[१५] ।
प्रभु के निर्मल भेद प्रचारैं, 'मेँहीँ' शरण धरी ॥४॥

शब्दार्थ :

*एक प्रकार का गीत जो बरसात में गाया जाता है ।

१.शरीर, शरीर में, २.अंधकार छाया है, ३.जीव, सुरत, ४. अंधी, देखने में असमर्थ, ५.सुध-बुध,चेतना और बुद्धि,६. ज्ञान, याद, ७. टकटकी लगाकर देखना, सीधी और स्थिर दृष्टि से देखना, ८. तीसरा तिल, दशमा द्वार, ९. द्वार, दरवाजा, १०.देखो, ११.देख कर, दर्शन कर, १२. मिलाओ, लीन करो, १३. परमप्रभु परमात्मा, १४. प्रतिनिधि,संदेशवाहक,१५. प्रचार करते हैं, प्रचार करनेवाले हैं ।

पद्यार्थ :

शरीर के अंदर सघन अंधकार छाया हुआ है। (इस कारण इसमें पड़ा) जीव कुछ देखने (जानने) में असमर्थ है ॥१॥ उसकी अपनी (स्वरूप की) सुध-बुध खो गई है और तमोगुण ने उसे घेर लिया है। गुरु ने उसे उसकी (अर्थात् स्वरूप की) स्मृति दिलाई और टकटकी लगाकर देखने (दृष्टियोग) की युक्ति बतलाई, जिससे दशमा द्वार खुल गया और (नयनाकाश का) अंधकार मिट गया ॥२॥ इस दशमा द्वार (सुषुम्ना) में प्रवेश करने पर तारा चमकता दीखता है। (वहाँ से आगे चलकर) सहस्र

दल कमल में देखो । फिर त्रिकुटी में सूर्यब्रह्म का दर्शन करके सुरत को शब्द में लीन करो ॥३॥ सद्गुरु स्वामी परमप्रभु परमात्मा के प्रतिनिधि हैं, जो उनके रहस्य (ब्रह्मज्ञान) का प्रचार करते हैं । महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि मैंने परमप्रभु परमात्मा के पवित्र रहस्य बतानेवाले सद्गुरु का शरण-ग्रहण किया है ॥ ४ ॥

(१२०)

क्या सोवत गफलत के मारे[1], जाग जाग मन मेरे ।
अन्तकाल[2] संगी[3] न होगा, संग न चल कोउ तेरे ॥१॥
यह धन धाम[4] कुटुम्ब[5] कबीला[6], सब स्वारथ के चेरे[7] ।
अपने अपने सुख के साथी, हेर[8] न कोउ सुख तेरे ॥२॥
तन-मन-सुख है ना सुख तेरो, आतम सुख निज तेरे[9] ।
तू तन-मन-सुख निज के[10] जान्यो[11], भयो काल को चेरे ॥३॥
दृढ़ परतीत[12] प्रीत करि गुरु से, कर सत्संग सवेरे[13] ।
या विधि भव फंदा[14] कटि जैहैं, 'मेँहीँ' कहत हित[15] हेरे[16] ॥४॥

शब्दार्थ :

१. बेपरवाह होकर, २. जीवन का अंतिम क्षण, मृत्यु के समय, ३. साथी, ४. घर, ५. परिवार, ६. पत्नी, ७. सेवक, दास, ८.देखना, ९.तुम्हारा अपना, १०.अपना, ११.जान लिया है, समझ लिया है, १२. पूर्ण आस्था (विश्वास), १३. शीघ्र, १४. जन्म-मरण का बंधन, १५.भलाई, कल्याण, १६.खोज करके, अन्वेषण करके ।

पद्यार्थ :

ऐ मेरे मन! तुम (अज्ञान-निद्रा में) बेपरवाह होकर क्यों सोए हो ? जागो, जागो (अर्थात विषयों को त्यागकर निर्विषय की ओर चलो) । जीवन के अंतिम क्षण मृत्यु के समय तुम्हारा कोई साथी नहीं होगा और न कोई तुम्हारे साथ जाएगा ॥१॥ लक्ष्मी (सम्पत्ति) घर, परिवार के लोग और पत्नी ये सभी स्वार्थ के दास बने हुए हैं। सभी अपने ही सुखों के लिए तुम्हारे साथी बने हैं। इनमें कोई तुम्हारे सुख को देखने वाले नहीं हैं ॥२॥ शरीर और मन

का सुख तुम्हारा निज-सुख नहीं है, मात्र आत्म-सुख ही तुम्हारा अपना सुख है। पर तुमने शरीर और मन के सुख को ही अपना सुख समझ लिया है। इसलिए तुम काल (यम) के दास बने हुए हो ॥३॥ महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि पूर्ण आस्था के साथ गुरु से प्रेम करो और शीघ्र ही (आंतर-बाह्य दोनों तरहों से) सत्संग करो। इस तरह तुम्हारा जन्म-मरण का बंधन नष्ट हो जाएगा । मैं बहुत खोज (अन्वेषण) करके तुम्हारी भलाई की ये बातें तुमसे कहता हूँ ॥ ४ ॥

(१२१)

जनि[1] लिपटो[2] रे प्यारे जग परदेसवा[3] सुख कछु इहवाँ[4] नाहिं ॥टेक॥
यह परदेसवा काल को भेसवा[5] जो रे आवयँ[6] दुख पाहिं ।
सुधि[7] करो प्यारे हो आपन देश[8] के जहवाँ कलेश कछु नाहिं ॥१॥
निज कायागढ़[9] में ऐन महल[10] होय आपन घर पथ पाहिं ।
चलु चलु यहि पथ हाँकत दृष्टि रथ[11] धनि[12] सतगुरु बतलाहिं ॥२॥
जौं नहिं समझहु सतगुरु पद[13] गहु परगट सतगुरु आहिं[14] ।
बाबा देवी साहब परगट सतगुरु 'मेँहीँ' जा पद बलि जाहिं[15] ॥३॥

शब्दार्थ :

१. मत, नहीं, २.आसक्त होओ,३. परदेश,विदेश, ४. यहाँ, ५. काल- सदृश, काल के समान, ६.आते हैं, ७.स्मरण,याद, ८.आत्मदेश,९.शरीर रूप,किला, १०. आँख रूपी महल, ११. दृष्टि (आँख) रूपी रथ, १२.धन्य,१३.चरण, १४. हैं, १५. न्योछावर करता हूँ ।

पद्यार्थ :

हे प्यारे! यह संसार परदेश है इसमें आसक्त मत होओ। यहाँ कुछ भी सुख नहीं है। यह परदेश-रूप संसार काल-सदृश (रूप) है। यहाँ जो भी आते हैं दुःख पाते हैं। इसलिए हे प्यारे! अपने देश (आत्मदेश) का स्मरण करो, जहाँ (दैहिक, दैविक और भौतिक) किसी प्रकार का कुछ भी कष्ट नहीं है ॥१॥ अपने शरीर-रूप किले में, आँख रूपी महल होकर अपने घर (आत्मघर) जाने का मार्ग प्राप्त करो। दृष्टि-रूपी रथ पर सवार होकर इस मार्ग पर

चलो। सद्‌गुरु धन्य हैं, जो यह मार्ग बतलाते हैं ॥२॥ यदि समझ में नहीं आवे, तो संत सद्‌गुरु प्रकट हैं, उनके चरण-कमलों को पकड़ो। महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि बाबा देवी साहब प्रत्यक्ष सद्‌गुरु हैं, जिनके चरणों में वे न्योछावर होते हैं ॥ ३॥

(१२२)

होली

नाहिंन[१] करिये जगत सों प्रीती[२] ॥ टेक ॥
जगत अथाह[३] भयंकर भवनिधि[४], जहाँ सब दुःख की रीती[५] ।
जहँ सब भूल भुलावन[६] कौतुक[७], समुझि पड़े नहिं नीती[८] ॥
रहे जहँ छाई अनीती[९] ॥१॥
छनहिं[१०] फुलावत[११] छन मुरझावत[१२], जगत विटप[१३] की रीती ।
और फरत फल[१४] हरष शोक[१५] दोइ[१६], डार-पात[१७] विपरीती[१८] ।
जो चाहै[१९] तिसै[२०] यम जीती[२१] ॥२॥
संतन जगत भयंकर करनी[२२], जानि[२३] सिखावय नीती ।
कहैं कृपा से सुनो हो जिवन प्रिय[२४], यह जग भरमक भीती[२५] ॥
तजत[२६] यहि दुःख जाइ जीती ॥३॥
सन्त वर्तमान बाबा देवी साहब, घट पट[२७] की सब रीती ।
कहै 'मेँहीँ' कह जानहु जिव सब[२८], तजि सकिहौ भर्म भीती ॥
अरु यमहू को लैहौ जीती[२९] ॥४॥

शब्दार्थ :

१. नहीं, मत, २. प्रीति, प्रेम, ३. अत्यन्त गहरा, अगम्य, ४. संसार-समुद्र, ५.व्यवहार, स्वभाव, ६.भूल में डालने वाली, ७. क्रियाएँ, लीलाएँ, ८. नियम, बरतने या व्यवहार करने का ढंग, ९.बुराई, १०.क्षण में, शीघ्र ही, ११.फूल लगते हैं, १२.मुरझा जाते हैं, कुम्हला जाते हैं, १३. संसार रूप वृक्ष, १४.फल लगते हैं, १५.हर्ष-शोक, सुख-दुःख, १६.दोनों, दो, १७.डालियाँ और पत्ते, १८.उलटे, अनिष्ट साधन में तत्पर, १९.प्रेम करते हैं, २०.उन्हें, २१.जीत

लेता है, अधिकार में करता है, २२.कर्म, कर्म के रहस्य, २३.जानकर, २४.प्यारे जीवो!, २५.भ्रम की दीवार, भ्रमवश भासित दीवार या आवरण, २६.त्यागकर, २७. शरीर के अंदर अंधकार, प्रकाश और शब्द रूप आवरण, २८. सभी जीव, २९. विजय प्राप्त करो ।

पद्यार्थ :

इस संसार से प्रेम मत करो ।।टेक।। यह संसार अत्यन्त गहरा और भयानक समुद्र की तरह है, जिसके सभी व्यवहार दुःखप्रद हैं। यहाँ की सभी लीलाएँ भूल में डालने वाली हैं । संसार के नियम (कर्म का रहस्य) समझ में नहीं आता। यहाँ सब ओर बुराइयाँ भरी हैं ॥१॥ संसार रूप वृक्ष का यही स्वभाव है कि एक क्षण में उसमें फूल लगते हैं और दूसरे ही क्षण मुरझा जाते हैं। इस वृक्ष में सुख और दुःख रूप दो फल लगते हैं। इसकी डालियाँ और पत्ते अनिष्ट साधन में तत्पर और हित साधन में बाधक हैं। जो इस संसार से प्रेम करते हैं, उन्हें यम अपने अधिकार में कर लेता है ॥२॥ संसार के भय उत्पन्न करने वाले कर्म-रहस्यों को जानकर संतजन हमें यहाँ बरतने का ढंग सिखलाते हैं। वे कृपालु होकर कहते हैं कि प्यारे जीवो! सुनो, यह संसार भ्रमवश भासित होने वाली दीवार की तरह है। इस (की आसक्ति) को त्याग कर ही इसके दुखों पर विजय प्राप्त हो सकती है ॥३॥ वर्तमान समय में संत सद्‌गुरु बाबा देवी साहब शरीर के अंदर के (अंधकार, प्रकाश और शब्द रूप) आवरणों के सभी भेदों को जानते और बतलाते हैं। महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि ऐ संसार के सभी जीवों! इस भेद को तुम भी जानो ताकि भ्रम के समस्त आवरणों को हटाकर यम पर विजय प्राप्त कर सको ॥४॥

(१२३)

समय गया फिरता नहीं[१], झटहिं[२] करो निज काम[३] ।
जो बीता सो बीतिया, अबहु गहो गुरु नाम ॥१॥
सन्तमता बिनु गति[४] नहीं, सुनो सकल[५] दे कान[६] ।
जौं चाहो उद्धार को, बनो सन्त सन्तान[७] ॥२॥
'मेँहीँ' मेँहीँ[८] भेद यह, सन्तमता कर गाइ ।
सबको दियो सुनाइ के, अब तू रहे चुपाइ[९] ॥३॥

शब्दार्थ :

१. लौटकर नहीं आता, २. शीघ्र ही, ३.अपना काम, ईश्वर-भक्ति, ४.शुभ गति, मोक्ष, ५. सब कोई, सभी, ६. कान देकर, ध्यान देकर, ७. संतों के ज्ञान को आचरण में उतारने वाला, संतों का अनुगामी, ८.सूक्ष्म, ९.मौन होता हूँ।

पद्यार्थ :

बीता हुआ समय लौटकर नहीं आता, इसलिए अपना काम अर्थात् ईश्वर-भक्ति शीघ्र करो। बीता हुआ समय तो (तुम्हारे हाथों से) निकल गया, अब (जो समय बचा है, उसमें) भी तो गुरु से (परमात्मा का) नाम ग्रहण करो ॥१॥ सब कोई ध्यान देकर सुन लो — संतों के ज्ञान (संतमत) को अपनाए बिना तुम्हारी शुभ गति (मोक्ष) नहीं होगी। इसलिए यदि तुम अपना उद्धार (कल्याण) चाहते हो, तो संतों का अनुगामी बनो ॥ २॥ महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि संतों के विचार (मत) में जो सूक्ष्म रहस्य छिपा है उसे मैंने (पद्यों में) गाकर सबको सुना दिया और अब मैं मौन होता हूँ (अर्थात् अब मैं पद्य रचना करना नहीं चाहता) ॥३॥

❁❁❁❁

(१२४)

कजली

यहि मानुष देह समैया[१] में, करु परमेश्वर में प्यार ।
कर्म धर्म को जला खाक[२] कर, देंगे तुमको तार[३] ॥टेक॥
तहँ जाओ जहँ प्रकट मिलें वे, तब जानो है स्नेह[४] ।
स्नेह बिना नहिं भक्ति होति है, कर लो साँचा नेह[५] ॥१॥
स्थूल सूक्ष्म कारण महाकारण, कैवल्यहु के पार ।
सुष्मन तिल हो पिल[६] तन भीतर, होंगे सबसे न्यार[७] ॥२॥
ब्रह्मज्योति ब्रह्मध्वनि को धरि-धरि, ले चेतन आधार ।
तन में पिल पाँचो तन पारा[८], जा पाओ प्रभु सार ॥३॥
'मेँहीँ' मेँहीँ[९] होय सकोगे, जाओगे वहि पार ।
पार गमन ही सार भक्ति[१०] है, लो यहि हिय[११] में धार[१२] ॥४॥

शब्दार्थ :

१.समय, २.राख, भस्म, ३. तुम्हारा उद्धार कर देंगे, ४.प्रेम, ५. प्रेम, ६.प्रवेश कर, ७. न्यारा, भिन्न, ८. पार, परे, ९. सूक्ष्म, १०.सच्ची भक्ति, ११.हृदय,

१२. धारण।

पद्यार्थ :

इस मनुष्य शरीर के जीवनकाल में (अर्थात् इस मनुष्य योनि में) परमात्मा से प्रेम कर लो। वे तुम्हारे कर्म और धर्म (पाप और पुण्य) दोनों को जलाकर राख कर देंगे (अर्थात् समाप्त कर देंगे) और तुम्हारा उद्धार (कल्याण) कर देंगे ॥ टेक ॥ जहाँ वे प्रत्यक्ष रूप से प्राप्त हो जाते हैं, तुम यदि वहाँ पहुँच जाओ तब समझना कि तुम्हें उनसे (सच्चा) प्रेम है। प्रेम के अभाव में भक्ति नहीं हो सकती। इसलिए उनसे सच्चा प्रेम कर लो ॥१॥ सुषुम्न बिन्दु होकर शरीर के अंदर प्रवेश करो और स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण तथा कैवल्य; इन पाँचों मंडलों से परे हो जाओ। इस तरह सभी प्रकार के मायिक आवरणों से भिन्न होकर तुम शुद्ध आत्म स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाओगे ॥२॥ इसके लिए पहले ब्रह्मज्योति और अनहद नाद को क्रमशः पकड़ते हुए आगे बढ़ो। फिर चेतन शब्द — सार शब्द का आधार प्राप्त कर शरीर में अन्तर्गमन करते हुए पाँचो शरीरों से पार हो जाओ और सार तत्व — परमप्रभु परमात्मा को प्राप्त कर लो ॥३॥ महर्षि मेँहीँ परमहंस जी महाराज कहते हैं कि जब तुम अपने को अत्यन्त सूक्ष्म बना लोगे, तभी इन शरीरों के पार जा पाओगे। पाँचों शरीर से परे हो जाना ही सच्ची भक्ति है। इस ज्ञान को अपने हृदय में दृढ़ता से धारण कर लो ॥४॥

❁❁❁❁

(१२५)

दिन बीतत जावे, आयु खुटावे[१],
भजो भजो प्रभु नाम ॥१॥
परिजन[२] धन सारा, सुत[३] वित[४] दारा[५],
नहिं आवै कोउ काम ॥२॥
निज तन छुटि जावे, काम न आवे,
यह जग दुख को धाम[६] ॥३॥
सब विषय पसारा[७], भव की जारा[८],
या में नहिं आराम ॥४॥
प्रभु केवल साँचा[९], अरु सब काँचा[१०],
भजो प्रभु को प्रति याम[११] ॥५॥

अन्तर-पथ चालो[१२], प्रभु को पा लो,
प्रभु बिनु नहिं विश्राम[१३] ॥ ६ ॥
गुरु भेद लो सारा[१४],खोलो द्वारा[१५],
'मेँहीँ' पहुँच प्रभु धाम ॥ ७ ॥

शब्दार्थ :

१. समाप्त होना, २.परिवार के लोग,३. पुत्र,४. वित्त, धन-सम्पत्ति, ५. स्त्री, ६. घर, ७. पसार, फैलाव, ८. आवागमन का जाल (फंदा) ,९. सच्चा, अविनाशी, १०. नहीं रहने वाला, नाशवान, ११. प्रत्येक पहर, आठो पहर, १२. चलो, १३. शांति, चैन, १४. सार, सच्चा, १५. दशमा द्वार ।

पद्यार्थ :

दिन बीतते जा रहे हैं और आयु समाप्त होती जा रही है। शीघ्र प्रभु नाम का सुमिरन करो (अर्थात् वर्णात्मक नाम का जप और ध्वन्यात्मक नाम का ध्यान करो*)॥१॥ परिवार के लोग, धन, पुत्र, सम्पत्ति, स्त्री आदि कोई तुम्हारे काम नहीं आएँगे ॥२॥ तुम्हारा शरीर भी काम नहीं आएगा, साथ छोड़ देगा । वस्तुतः यह संसार दुःखों का घर है॥३॥ पंच विषयों का पसार आवागमन का जाल है । इसमें पड़कर किसी को शांति नहीं मिलती ॥४॥ एकमात्र परमात्मा ही सच्चे (अविनाशी) हैं, और सभी पदार्थ नहीं रहने वाले (नाशवान) हैं। इसलिए आठो पहर प्रभु का सुमिरन-भजन करो॥५॥ अपने आन्तरिक मार्ग पर चलते हुए परमात्मा को प्राप्त करो। उन्हें पाए बिना तुम्हें शांति नहीं मिलेगी॥६॥ महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि गुरु से सार भेद (सच्ची युक्ति) प्राप्त करो और (उस युक्ति के द्वारा) दशमा द्वार खोलते हुए परमप्रभु परमात्मा के धाम (सतलोक) में पहुँच जाओ ॥ ७॥

टिप्पणी :

सामान्यतया लोग धन और सम्पत्ति दोनों को पर्यायवाची मानते हैं, किन्तु दोनों के अर्थों में भिन्नता है। रुपया-पैसा, सोना-चांदी, हीरा-जवाहिरात आदि को धन और जमीन, मकान, वृक्ष आदि को सम्पत्ति कहते हैं। सारांश यह कि चल वस्तु जिसका स्थानांतरण हो सके उसको धन और अचल वस्तु-जिसका स्थानांतरण नहीं हो सके, सम्पत्ति कहते हैं।

□□□□

* 'हरि जपि नाम धिआइ तू जम डरपै दुःखु भागु ।'-गुरुनानकदेव, महला-१

(१२६)

छन छन पल पल, समय सिरावे[१],
नर-तन दुर्लभ, फिर नहिं पावे ॥ १ ॥
धन जन[२] परिजन, सहित आपन तन,
सब छाड़ि जैहो[३] काम न अन्त[४] आवे ॥ २ ॥
दुर्लभ मानुष तन, करिये गुरु भजन,
बिना रे भजन व्यर्थ जनम नसावे[५] ॥ ३ ॥
गुरु गुरु जपु नाम, गुरु ध्यान धरु राम,
गुरु-पद-नख-मणि सन्मुख लखावे ॥ ४ ॥
पद-नख-विन्दु धरि, मन दृष्टि थिर[६] करि,
नखतेन्दु[७] भानुमय[८] गुरु रूप पावे ॥ ५ ॥
यहि विधि ध्यान धरि, दिव्य दृष्टि करि करि,
रामनाम सार धुन गुरु परखावे ॥ ६ ॥
गुरु ही सो शब्द रूप, शान्तिप्रद[९] औ अनूप[१०],
'मेँहीँ' यही विधि गुरु भजि मोक्ष पावे ॥ ७ ॥

शब्दार्थ :

१. बीत रहा है, समाप्त हो रहा है,२. सेवक,३.छोड़कर जाओगे,४.मृत्यु के समय, ५. नष्ट हो जाएगा, ६. स्थिर,७.तारे और चन्द्रमा,८.सूर्यरूप,९. शांति प्रदान करने वाला,१०. उपमा-रहित, अनुपम, विलक्षण ।

पद्यार्थ :

प्रत्येक क्षण, प्रत्येक पल समय बीतता जा रहा है। यह दुर्लभ मनुष्य शरीर (छूट जाने के बाद) फिर नहीं पाओगे॥१॥ धन, सेवक और परिवार के लोगों के साथ अपना शरीर; सब छोड़कर जाओगे, ये मृत्यु के समय कुछ काम नहीं आएँगे॥२॥ यह मनुष्य शरीर बड़ा दुर्लभ है। (इसे पाकर) गुरु की भक्ति करो । भक्ति के बिना यह मनुष्य-जन्म व्यर्थ ही नष्ट हो जाएगा ॥३॥ गुरुनाम (गुरु मंत्र) का जप करो और गुरु रूप का मानस ध्यान करो फिर गुरु के पद-नख रूप मणि* (ज्योतिर्मय बिन्दु) को (अन्तराकाश

* इसकी विशद व्याख्या देखिये-रामचरितमानस-सार सटीक बालकांड चौपाई संख्या-५ की पाद टिप्पणी में ।

में) सामने देखो।।४।। पद-नख रूप बिन्दु को धारण कर उस पर मन और दृष्टि को स्थिर करो। पश्चात् गुरु के तारे, चन्द्रमा और सूर्य रूप के दर्शन पाओगे।।५।। इस प्रकार ध्यान करते हुए दिव्य दृष्टि प्राप्त करो। गुरु तुम्हें सारशब्द — रामध्वनि की पहचान करा देंगे।।६।। वह सारशब्द गुरु का शांति प्रदान करने वाला विलक्षण रूप है। महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि इसी विधि से गुरु की आराधना करते हुए लोग मोक्ष प्राप्त करते हैं।।७।।

□□□□

(१२७)

आहो भक्त सार भगति[1] करु हो, असार भगति[2] करि,
संसार भ्रमत रहि, भक्ति श्रम[3] निष्फल[4] हो ॥१॥
आहो भक्त छाड़[5] बालक खेल हो,
बाहर भरमन, बाल खेल जैसन, अभिअन्तर[6] धँसु हो ॥२॥
आहो भक्त सर्वेश्वर सर्वमय[7] हो,
सब महँ भरपूर, त्रैपट[8] कारण दूर, घट त्रैपट खोलु हो ॥३॥
आहो भक्त घट ही में लहिहौ[9] हो, बाहर भरमिहौ,
नहिं प्रभु पइहौ, भव दुख सहिहौ हो ॥४॥
आहो भक्त द्विभुज[10] चतुरभुज[11] हो, अष्ट[12] रु अनन्त भुज[13],
श्याम[14] शुक्ल तेज पुंज[15], सब रंग शब्द धोखा हो ॥५॥
आहो भक्त प्रभु आत्म रूपी हो, स्थूल सूक्ष्म रूपी,
कारण सरूपी, सब माया कृत[16] हो ॥६॥
आहो भक्त प्रकृति परे प्रभु हो, धँसु अन्त अन्तर[17],
पहुँच त्रैपट पर[18], तहाँ 'मेँहीँ' प्रभु लहु हो ॥७॥

शब्दार्थ :

१. सच्ची भक्ति, अन्तस्साधना, २. झूठी भक्ति, बाह्याडंबर, ३. परिश्रम, प्रयास, ४. परिणाम रहित, व्यर्थ, ५. छोड़ो, ६. शरीर के अंदर, ७. सर्वव्यापक, ८. अंधकार, प्रकाश और शब्द के तीन आवरण, ९. प्राप्त करोगे, पाओगे,

१०. दो हाथों वाले, ११. चार हाथों वाले, १२. आठ, १३. अनगिनत हाथों वाले, १४. काला, अंधकार, १५. श्वेत प्रकाश पूंज, १६. माया द्वारा निर्मित, १७. शरीर के अंदर अंतिम तल तक, १८. परे, भिन्न ।

पद्यार्थ :

हे भक्तजन! सच्ची भक्ति करो, झूठी भक्ति करके तुम संसार में भ्रमण करते रहोगे (अर्थात् आवागमन के चक्र में पड़े रहोगे) और ऐसी भक्ति करके तुम्हारा परिश्रम भी व्यर्थ जाएगा।।१।। (सच्ची भक्ति करना चाहते हो तो) बच्चों की तरह खेल करना छोड़ दो। (परमात्मा की खोज में) बाहर भटकना, बच्चों के खेल जैसा है। इसलिए (इसे त्यागकर) अपने अन्तर में प्रवेश करो।।२।। परमात्मा सबमें व्यापक है, सबमें समरूप से भरा हुआ है, लेकिन (अंधकार प्रकाश और शब्द इन) तीन आवरणों के कारण वह दूर प्रतीत होता है। अपने अंदर के इन तीनों आवरणों को हटाओ।।३।। हे भक्तजन! तुम शरीर के अंदर ही परमात्मा को पाओगे। बाहर में भटकने से वे नहीं मिलेंगे, बल्कि जन्म-मरण का दुःख सहते रहना होगा।।४।। (अन्दर अथवा बाहर में दीखने वाले) देवी-देवताओं के द्विभुजी, चतुर्भुजी, अष्टभुजी और अनन्तभुजी रूप, वह प्रकाश-पुंज रूप श्याम वा गौर किसी वर्ण का क्यों न हो, ये सभी रंग तथा अंधकार, प्रकाश और शब्द (नाद); ये सब माया है।।५।। परमात्मा आत्मस्वरूपी है। स्थूल, सूक्ष्म और कारण स्वरूप; सब माया से निर्मित हैं ।।६।। परमात्मा जड़-चेतन प्रकृति से परे (श्रेष्ठ) है। महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि अपने शरीर के अंदर अंतिम तल (निःशब्द) तक प्रवेश करके (ऊपर वर्णित) तीनों आवरणों के परे पहुँच जाओ और वहाँ परमात्मा को प्राप्त कर लो।।७।।

□□□□

(१२८)

आहो प्रेमी करु[१] प्रेम प्रभु[२] सए[३] हो, बिना प्रभु दुख सहु,
भव[४] में भ्रमत रहु, करु प्रेम प्रभु सए हो ॥१॥
आहो प्रेमी त्यागी देहु[५] जग-प्रेम[६] हो, जग-प्रेम फाँसी[७],
आत्म सुख नाशी[८], प्रभु-प्रेम मुक्ति-प्रद[९] हो ॥२॥
आहो प्रेमी करिला[१०] विचार सार[११] हो, तन-धन परिजन,
इन्द्रिय अन्तःकरण, सह[१२] सर्व[१३] स्वर्ग झूठ हो ॥३॥
आहो प्रेमी त्यागी देहु माया मोह हो, सर्व पिण्ड ब्रह्माण्ड,
अद्भुत[१४] नाटक काण्ड[१५], प्रकृति मण्डल छय[१६] हो ॥४॥
आहो प्रेमी सत्य केवल प्रभु हो, पिण्ड-ब्रह्माण्ड पर[१७],
प्रकृति मण्डल पर, अव्यक्त[१८] अगोचर[१९] हो ॥५॥
आहो प्रेमी आत्मगम्य[२०] प्रभु जी हो, मन तें[२१] विषय तजु,
अन्तर प्रभु को भजु, लेइ गुरु-गम[२२] 'मेँहीँ' हो ॥६॥

शब्दार्थ :

१. करो, २. परमात्मा, ३. से, ४. जन्म-मरण, आवागमन, ५. दो, ६. संसार का प्रेम, ७. फँसकर, पड़ने से, ८. नष्ट होता है, ९. मुक्ति दिलाने वाला, १०.कर लो, ११.सच्चा,१२.साथ ही, के साथ, १३. सभी, १४. आश्चर्यमयी, १५. लीलाओं के समूह,१६.क्षय होने वाला, नाशवान, १७. परे,१८.अप्रकट, १९. इन्द्रियों से अग्राह्य,२०.आत्मा द्वारा जानने योग्य, २१. से, २२. गुरु से जानने योग्य।

पद्यार्थ :

हे प्रेम करने वालो! परमात्मा से प्रेम करो। परमात्म-प्राप्ति के बिना दुःख सहोगे और आवागमन (जन्म-मरण) के चक्र में भ्रमण करते रहोगे। इसलिए परमात्मा से प्रेम करो।॥१॥ संसार के प्रेम को त्याग दो। संसार के प्रेम में पड़ने से आत्म-सुख नष्ट होता है, पर परमात्मा से प्रेम (शरीर और संसार के बन्धनों से) मुक्ति दिलाने वाला होता है।॥२॥ हे प्रेमियो! सार (सत्य) का विचार कर लो। तुम्हारा शरीर, धन और परिवार के लोग; तुम्हारी बाह्य इन्द्रियाँ, तुम्हारे अंतःकरण (मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार) साथ ही सभी स्वर्ग; ये सब झूठे (नाशवान) हैं।॥३॥ इसलिए माया-मोह को त्याग दो। समस्त पिण्ड और ब्रह्माण्ड की आश्चर्यमयी लीलाओं के समूह तथा समस्त प्रकृति मंडल नाशवान हैं।॥४॥ एक मात्र परमप्रभु परमात्मा ही सत्य हैं। वे पिण्ड-ब्रह्माण्ड से परे, प्रकृति मंडल से परे, अप्रकट तथा इन्द्रियों से अग्राह्य हैं।॥५॥ महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि परमात्मा आत्मा द्वारा ग्रहण होने योग्य है। अपने मन से विषयों को निकाल दो और गुरु से जानने योग्य, भक्ति की सद्युक्ति प्राप्त कर अपने अंदर ही परमात्मा की आराधना करो।॥६॥

□□□□

(१२९)

आहो ज्ञानी ज्ञान गुनी[१] प्रभु भजु हो,
विषय पसारा[२], सकल[३] असारा[४], दुखमय धारा हो ॥१॥
आहो ज्ञानी तन धन परिजन हो, सबही सपना,
कछु नहिं अपना, आप अपन[५] खोजु हो ॥२॥
आहो ज्ञानी निज ततु[६] खोजहु हो, त्रिगुण[७] त्रितन[८] पर[९],
मन बुद्धि चित पर, अहं[१०] प्रकृति पर हो ॥३॥
आहो ज्ञानी जीव ब्रह्म पर हो, निज ततु ऐसो,
कछु नहिं जैसो, निज अनुभव करु हो ॥४॥
आहो ज्ञानी तुम प्रभु एकहि हो, अद्वैत[११] अखण्डित[१२],
आत्म-सुख मण्डित[१३], सब द्वैत[१४] माया हो ॥५॥
आहो ज्ञानी नहिं स्थूल, नहिं सूक्ष्म हो,
कारणहु नाहीं सबके माहीं, सबतें न्यारा[१५] हो ॥६॥
आहो ज्ञानी करु सत्संगति हो, श्रवण मनन करु,
ध्यान सुदृढ़[१६] धरु, सब पाप परिहरु[१७] हो ॥७॥
आहो ज्ञानी सतगुरु सेवहु हो, शब्द में सुरति धरु,
तन मन जय[१८] करु, निज अनुभव लहु हो ॥८॥
आहो ज्ञानी पइहौ असहिं[१९] प्रभु हो, बिनु निज अनुभव,
'मेँहीँ' भरम[२०] सब, प्रभु नहिं पइहौ हो ॥९॥

शब्दार्थ :

१. विचारकर, २. पसार, फैलाव, ३. सब, सभी,४. सार-रहित, व्यर्थ, ५. अपने आपको, आत्मस्वरूप को, ६. आत्मस्वरूप, ७.तीन गुण — सत्व,रज और तम, ८. तीन जड़ शरीर — स्थूल, सूक्ष्म और कारण, ९. परे, १०. अहंकार, ११. भेद-रहित, १२. खंड-रहित, जिसका भाग न किया जाय, १३. सजा, भूषित, १४. भेदभाव, १५. परे, श्रेष्ठ, १६.पूर्ण दृढ़ता से,पूर्ण मजबूती से, १७. त्याग दो, १८. विजय, वश में करना, १९. इस विधि से, २०. भ्रम, मिथ्या, झूठा ।

पद्यार्थ :

हे बुद्धिमान लोगो! (स्वरूप) ज्ञान को अच्छी तरह विचार कर ईश्वर की भक्ति करो। (रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द इन) सभी विषयों का पसार सार-रहित और दुःखमय (आवागमन के) चक्र में डालने वाला है॥१॥ शरीर, सम्पत्ति और संबंधी सभी स्वप्नवत् हैं, कोई अपना नहीं। इसलिए अपने आपकी खोज करो॥२॥ अपने आत्मस्वरूप को खोजो, जो (सत्व, रज और तम) तीन गुणों, (स्थूल, सूक्ष्म और कारण) तीन जड़ शरीरों; मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार तथा (जड़-चेतन दोनों) प्रकृतियों के परे है॥३॥ जीव और ब्रह्म* से परे वह आत्मतत्व ऐसा (विलक्षण) है कि उसके समान और कुछ नहीं है। उसे अपने से अनुभव करके देखो॥४॥ तुम और परमात्मा एक ही, भेद-रहित, खण्ड-रहित तथा स्वसुख (आत्मसुख) से भूषित (सजे) हो। इसके अतिरिक्त सभी द्वैत है, माया (भ्रम) है॥५॥ आत्मतत्व स्थूल, सूक्ष्म या कारण शरीर नहीं है, बल्कि इनमें रहते हुए भी इनसे परे (श्रेष्ठ) है॥६॥ सत्संग करो, सत्संग में सुनी हुई बातों को मनन करो, फिर पूर्ण दृढ़ता से ध्यानाभ्यास करो और सभी पाप कर्मों को त्याग दो॥७॥ सद्गुरु की सेवा करो। (उनसे युक्ति प्राप्त कर अपने अन्तर के) शब्द में सुरत को जोड़ो। इस प्रकार तन और मन को अपने वशीभूत करके आत्म-अनुभव प्राप्त करो॥८॥ महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि इसी विधि से परमात्मा को प्राप्त करोगे। आत्म-अनुभव के बिना सभी उपलब्धियाँ भ्रम (मिथ्या) हैं, इनसे परमात्मा की प्राप्ति नहीं होगी॥९॥

* यहाँ ब्रह्म से तात्पर्य है - सप्त ब्रह्म से। देखिये पृष्ठ - ७०

(१३०)

ध्यान-भजन-हीन, लहिहौ न प्रभु धन।
को कहाँ भये सुभक्त[1] पढ़ि गाइ मात्र मन ॥१॥
चित अति चंचल, विषय-रत[2] केवल।
सप्रेम भजन बल, होय न साधन बिन ॥२॥
भजन ध्यान साधन, करि चित आपन।
बस करि छन-छन[3], प्रेम दृढ़ाउ[4] जन[5] ॥३॥
राम नाम धुन[6] धरि, प्रेम अति थिर करि[7]।
भव दुख जाय टरि[8], अस[9] नाम उपासन ॥४॥
ध्यान अभ्यास करि नित, होय 'मेँहीँ' निज हित[10]।
अति ही प्रसन्न चित्त, आपन साधन गुण[11] ॥५॥
ध्यान दर्पण गुण, अध्यानी[12] अन्ध जाने न।
गुरु देवैं भेद अंजन[13], करु हेरि[14] ही नयन[15] ॥६॥

शब्दार्थ :

१. सच्चा भक्त, २. लीन, ३. क्षण-क्षण, प्रतिक्षण, सतत्, ४. मजबूत करो, ५. भक्तजनो, लोगो, ६. सारशब्द, ७. स्थिर करने से, ८. टल जाता है, समाप्त हो जाता है, ९. इसी प्रकार, १०. कल्याण, भलाई, ११. गुनो, चिंतन करो, १२. ध्यान नहीं करने वाला, ध्यान-रहित, १३. सुरमा, काजल, १४. खोज करो, १५. हृदय की आँख, दिव्य दृष्टि ।

पद्यार्थ :

ध्यान-भजन से हीन व्यक्ति परमात्मा रूपी धन को प्राप्त नहीं कर सकता। हे मन! कहो, मात्र पोथी पढ़ने और गीत गाने मात्र से कौन कहाँ सच्चा भक्त बना है॥१॥ चित्त बहुत चंचल है, वह मात्र विषय-भोग में लीन रहता है। अन्तस्साधना किए बिना प्रेमपूर्ण भक्ति करने का बल नहीं मिलता ॥२॥ हे भक्तजन! ध्यान-साधना के द्वारा भक्ति करके अपने चित्त को वश में करो और सतत् इष्ट में प्रेम को मजबूत करो॥३॥ (सूरत शब्द योग के द्वारा) सारशब्द को पकड़कर परमात्मा में अपने प्रेम को पूर्ण स्थिर करने से जन्म-मरण का दुःख समाप्त हो जाता है। इस प्रकार

नाम-उपासना का महत्त्व है।।४।। महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि नित्यप्रति ध्यानाभ्यास करने से तुम्हारा कल्याण होगा। इसलिए अत्यन्त प्रसन्नचित्त होकर अपने साधना के विषय में ही चिन्तन करो।।५।। ध्यान में दर्पण का गुण होता है। (अर्थात् जैसे दर्पण में अपने स्थूल रूप को देखते हैं, उसी तरह ध्यान में आत्मस्वरूप को देखते हैं।) ध्यान नहीं करने वाले, अन्तर्दृष्टि से हीन होते हैं। वे अपने आत्मस्वरूप को नहीं जान सकते। गुरुदेव भजन की युक्ति (दृष्टियोग और शब्दयोग) बतलाते हैं। (दृष्टियोग का अभ्यास कर) ब्रह्म ज्योति रूप अंजन आँखों में लगाकर दिव्य दृष्टि प्राप्त करो ।।६।।

□□□□

(१३१)

कजली

प्रभु मिलने जो पथ धरि जाते[१], घट में बतलाये;
सन्तन घट में बतलाये ॥ टेक ॥
प्रेमी भक्तन धर[२] सो मारग, चलो चलो धाये[३];
सन्तन घट-पथ[४] हो धाये ॥ १ ॥
अन्धकार अरु[५] जोति शब्द, तीनों पट घट के से;
राह यह जावै है[६] ऐसे ॥ २ ॥
जोति नाद का मार्ग बना यह, धरा जाय तिल से;
लो धर यत्न[७] करो दिल से[८] ॥ ३ ॥
बाल नोक से मेँहीँ दर[९] 'मेँहीँ' हो पथ पावें ;
सन्त जन तामें धँसि धावें[१०] ॥ ४ ॥

शब्दार्थ :

१. ग्रहण किया जाता है, २. पकड़कर, ३. शीघ्रतापूर्वक, दौड़कर, ४. शरीर के अंदर का रास्ता, आंतरिक मार्ग, ५. और, ६. जाता है, ७. प्रयत्न, प्रयास, ८. मन से, प्रेमपूर्वक, ९. सूक्ष्म द्वार, १०. प्रवेशकर चलते हैं ।

पद्यार्थ :

परमात्मा से मिलने के लिए जो मार्ग ग्रहण किया जाता है, वह शरीर

के अंदर है, ऐसा संतों ने बतलाया है।टेक।। हे प्रेमी भक्तगण! उस मार्ग को पकड़कर शीघ्रतापूर्वक चलो । संतजन इसी आंतरिक मार्ग से दौड़ते हुए परमात्मा के पास पहुँचे हैं।।१।। अंधकार, प्रकाश और शब्द;ये शरीर के अंदर के तीन आवरण हैं, जिस होकर यह आंतरिक मार्ग जाता है।।२।। यह मार्ग ज्योति और नाद से बना हुआ है, जो तिलद्वार (दशमा द्वार) से पकड़ा जाता है। इस मार्ग को पकड़कर मनोयोग पूर्वक इस पर चलने का प्रयत्न करो।।३।। महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि बाल से भी सूक्ष्म द्वार (दशमा द्वार) होकर चलने से उस मार्ग को पकड़ोगे। संतजन उसी द्वार में प्रवेश कर आगे चले हैं।।४।।

□□□□

(१३२)

जौं[१] निज[२] घट रस[३] चाहो ॥ टेक ॥
तो अपने को पाँच पाप से, हरदम[४] खूब बचाहो[५] ॥ १ ॥
है एक झूठ नशा है दुसरा, तीसर नारि पर[६] के हो ॥ २ ॥
चौथी चोरी पंचम हिंसा, दिल से इन्हें अलगाहो[७] ॥ ३ ॥
'मेँहीँ' सहजहिं इन्हसे बचन चहो[८], गुरु पद टहल कमाहो[९] ॥ ४ ॥

शब्दार्थ :

१. यदि, २. अपना, ३. शरीर के अंदर का रस (आनंद), हरि-रस, ४. सदा, सतत्, ५. बचाओ, बचाते रहो, ६. परायी स्त्री से प्रेम करना, ७. बाहर निकाल दो, ८. बचना चाहो, ९. सेवा करो ।

पद्यार्थ :

यदि तुम अपने शरीर के अंदर का आनंद (ज्योति और नाद रूप हरि-रस) प्राप्त करना चाहते हो, तो सतत् अपने को पाँच पापों से अच्छी तरह बचाते रहो।।१।। पहला पाप है झूठ बोलना, दूसरा है नशा-सेवन करना और तीसरा है (पुरुष के लिए) परायी स्त्री (और स्त्री के लिए पराये पुरुष) से अनुचित प्रेम करना ।।२।। चौथा पाप है चोरी करना और पाँचवां हिंसा करना । इन सब पापों को मन से बाहर निकाल दो।।३।। महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि इन पापों से यदि तुम सहजतापूर्वक (सरलतापूर्वक) बचना चाहो, तो गुरु के चरण-कमलों की सेवा करो ।।४।।

□□□□

(१३३)

अद्भुत[१] अन्तर की डगरिया[२], जा पर चलकर प्रभु मिलते ॥ टेक ॥
दाता सतगुरु धन्य धन्य जो, राह लखा देते[३] ।
चलत पन्थ[४] सुख होत महा है, जहाँ अझर[५] झरते[६] ॥ १ ॥
अमृत ध्वनि की नौबत झहरत[७], बड़भागी सुनते ।
सुनत लखत सुख लहत अद्भुती, 'मेँहीँ' प्रभु मिलते ॥ २ ॥

शब्दार्थ :

१. विलक्षण, २. राह, मार्ग, ३. दिखलाते, ४. रास्ता, मार्ग, ५. प्रकाश, ६. बरसते (झरना—निर्झर, जल का ऊपर से नीचे गिरना), ७. बजती है, गूंजती है ।

पद्यार्थ :

वह आंतरिक मार्ग बड़ा विलक्षण है, जिस पर चलकर परमात्मा की प्राप्ति होती है।टेक॥ दानशील गुरुदेव धन्य हैं, धन्य हैं, जो यह मार्ग दिखलाते हैं। इस मार्ग पर चलते हुए अपूर्व आनंद मिलता है। यहाँ प्रकाश पूंज की वर्षा होती रहती है॥२॥ (इतना ही नहीं,) पाँच मंडलों की अमृत रूप पाँच ध्वनियाँ भी गूंजती हैं, पर इसे अत्यन्त भाग्यवान साधक ही सुन पाते हैं। महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि प्रकाश को देखते और शब्दों को सुनते हुए आश्चर्यमय सुख की प्राप्ति होती है और (अंततः) परमप्रभु परमात्मा मिल जाते हैं॥२॥

❁❁❁❁

(१३४)

नित प्रति सत्संग कर ले प्यारा, तेरा कार[१] सरै[२] सारा ।
सार कार्य[३] को निर्णय करके, धर[४] चेतन धारा ॥ १ ॥
धर चेतन धारा, पिण्ड के पारा[५], दशम दुआरे का ।
जोति जगि जावै, अति सुख पावै, शब्द सहारे का ॥ २ ॥
लख विन्दु-नाद तहँ त्रै बन्द[६] दै के सुनो सुनो 'मेँहीँ' ।
ब्रह्म-नाद का धरो सहारा आपन तन मेँहीँ[७] ॥ ३ ॥

शब्दार्थ :

१.कार्य, काम, २.सिद्ध होगा, पूर्ण होगा, ३. सर्वोपरि कार्य, प्रमुख कर्तव्य, प्रभु प्राप्ति, ४. पकड़ो, ५. परे, ६.तीन बंद — आँख, मुँह और कान बंद, ७. के अंदर ही ।

पद्यार्थ :

हे प्यारे! तुम प्रतिदिन सत्संग करते रहो, तुम्हारे सभी कार्य सिद्ध हो जाएँगे। सर्वप्रथम अपने सर्वोपरि कार्य (कर्तव्य) का निर्णय कर लो (अर्थात् प्रभु प्राप्ति को जीवन का उद्देश्य निश्चित कर लो) और फिर अपने अंदर की चेतनधारों को पकड़ो ॥१॥ स्थूल शरीर से परे दशमें द्वार में इन चेतनधारों को पकड़ो। इससे अंदर में ज्योति प्रकट होगी और फिर शब्द का सहारा मिलने से अपूर्व सुख की प्राप्ति होगी॥२॥ महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि (पहले आँख और मुँह बंदकर) अपने अंदर ज्योतिर्मय विन्दु को देखो। फिर (आँख, मुँह और कान) तीनों बंद लगाकर आन्तरिक नाद (शब्द) को सुनो और अंततः (परमात्म-दर्शन के लिए) अपने शरीर के अंदर ही सारशब्द का सहारा ग्रहण करो ॥३॥

❁❁❁❁

(१३५)

जीवो! परम पिता निज[१] चीन्हो[२], कहते सन्तन हितकारी[३] ॥ टेक ॥
द्वैत[४] प्रपंच[५] के सागर बूड़ो[६], सहो दुक्ख भारी ।
तन मन* इन्द्रिन संग अजाना[७], हो होती ख्वारी[८] ॥ १ ॥
गुरु गम[९] से सुष्मन में पैठि[१०] के, अन्तर पथ धारी[११] ।
ब्रह्म जोति ब्रह्मनाद धार धरि, हो सबसे न्यारी[१२] ॥ २ ॥
द्वैत[४] पार तन मन बुधि पारा, ज्ञान होय सारी ।
'मेँहीँ' सो पितु चीन्ह में आवैं, दुक्ख टरै भारी ॥ ३ ॥

शब्दार्थ :

१.अपने, २. पहचानो, ३. उपकारी, ४.भेदभाव, ५.माया, मायिक, ६. डूब रहे हो, ७. अज्ञानी, ज्ञान से रहित, ८. दुर्दशा, ९. गुरु से जानने योग्य युक्ति, १०. प्रवेश, ११. पकड़ो, १२. परे, श्रेष्ठ ।

पद्यार्थ :

हे प्राणी! अपने परम पिता (परमात्मा) को पहचानो, यह उपदेश उपकारी संतजन करते हैं ।।टेक।। तुम भेदभाव से पूर्ण इस मायिक संसार में डूब रहे हो और जन्म-मरण रूप महा दुःख सह रहे हो । शरीर मन और इन्द्रियों के संग के कारण तुम आत्मज्ञान से रहित हो गए हो और इसीलिए तुम्हारी दुर्दशा हो रही है।।१।। गुरु से जानने योग्य (साधना की) युक्ति प्राप्त कर सुषुम्ना में प्रवेश करो और अपने अंतर के मार्ग को पकड़ो । (उस अन्तरमार्ग अर्थात्) ब्रह्मज्योति एवं ब्रह्मनाद की (अमृतमयी) धारा को पकड़कर तुम सभी मायिक पदार्थों से परे हो जाओ।।२।। महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि जब तुम द्वैतभाव, शरीर, मन और बुद्धि की सीमा से परे हो जाओगे तो तुम्हें पूर्ण ज्ञान (आत्मज्ञान) प्राप्त हो जाएगा । तब परमात्मा पहचान में आएँगे और (जन्म-मरण रूप) तुम्हारे भयंकर क्लेश समाप्त हो जाएँगे।।३।।

टिप्पणी* :

'मन' दो प्रकार के होते हैं — (१) पिंडीमन और (२) ब्रह्मांडी मन । बहिर्मुखी मन को पिंडी मन या तन-मन कहते हैं तथा अन्तर्मुखी मन को ब्रह्मांडी मन या निज-मन कहते हैं। संत कबीर साहब की वाणी है-

'मन दीया तिन सब दिया, मन के लार शरीर ।
अब देवे को कुछ नहीं, यौं कथि कहै कबीर ।।'

पुनः उन्होंने कहा —

'तन मन दिया तो क्या हुआ, निजमन दिया न जाय ।
कह कबीर ता दास से, कैसे मन पतियाय ।।'
'तन मन दिया आपना, निजमन ताके संग ।
कह कबीर निर्भय भया, सुन सतगुरु परसंग ।।'

द्वैतवाद** : वह दार्शनिक सिद्धान्त जिसमें जीव (आत्मा) और ईश्वर (ब्रह्म या परमात्मा) एक न माने जाकर अलग-अलग वा भिन्न माने जाते हैं । शंकराचार्य के अद्वैतवाद को छोड़कर शेष सभी दर्शन द्वैतवादी माने जाते हैं ।

□□□□

(१३६)

गुरु हरि[१] चरण में प्रीति हो, युग काल क्या करे ।
कछुवी की दृष्टि दृष्टि हो, जंजाल[२] क्या करे ॥१॥

जग नाश का विश्वास हो, फिर आस क्या करे ।
दृढ़ भजन धन ही खास[३] हो, फिर त्रास[४] क्या करे ॥२॥
वैराग-युत[५] अभ्यास हो, निराश क्या करे ।
सत्संग-गढ़[६] में वास हो, भव पाश[७] क्या करे ॥३॥
त्याग पंच पाप हो, फिर पाप क्या करे ।
सत बरत[८] में दृढ़ आप हो, कोइ शाप क्या करे ॥४॥
पूरे गुरु का संग हो, अनंग[९] क्या करे ।
'मेँहीँ' जो अनुभव[१०] ज्ञान हो, अनुमान क्या करे ॥५॥

शब्दार्थ :

१.परमात्मस्वरूप सद्गुरु,२.उलझन,३.विशेष,४.भय,५.संयुक्त, ६. सत्संग रूप किला,७.सांसारिक बंधन,८.सत्य धर्म,९.कामदेव,काम,१०. परीक्षा द्वारा प्राप्त ज्ञान ।

पद्यार्थ :

परमात्मस्वरूप सद्गुरु के चरणों में यदि प्रेम हो जाए तो समय या काल क्या बिगाड़ सकता है ? यदि कछुवी की सी दृष्टि (जिससे वह अपनी सुरत के द्वारा ही अंडे सेती है) मिल जाय तो सांसारिक उलझन उसकी क्या हानि कर सकता है ? (।।१।।) यदि किसी को संसार की क्षणभंगुरता का ज्ञान हो जाए तो वह संसार की आशा क्यों करेगा ? जिसे दृढ़ ध्यानाभ्यास रूप विशेष धन प्राप्त हो गया हो,उसे भय कैसा ? (।।२।।) जो वैराग्य संयुक्त होकर ध्यानाभ्यास करता हो, वह निराश क्यों होगा ? जो सत्संग रूप किले में निवास करता हो,उसे सांसारिक बंधन कैसे बांधेगा ? (।।३।।) जिसने (झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार इन) पंच पापों को त्याग दिया है, तो उससे अन्य पाप कैसे होंगे ? जो स्वयं सत्यधर्म का आचरण दृढ़तापूर्वक करता हो, उसे किसी का शाप कैसे लग सकता है ? (।।४।।) महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि जो (तन-मन से) सच्चे गुरु की संगति में रहता है, उसपर कामदेव (काम-वासना) क्या प्रभाव डाल सकता है ? जिसने (परमात्मा का) अनुभव ज्ञान प्राप्त कर लिया हो उसके लिए अनुमान (बौद्धिक ज्ञान) का क्या महत्व है ? (।।५।।)

टिप्पणी :

युग काल यानी युग = जोड़ा, युग काल = दो प्रकार के काल ।
युग और काल तथा युग का काल । काल = समय ।

पुराणानुसार चार युग माने गये हैं । वे हैं — सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग । काल - विभाजन में कल्प, युग, वर्ष, महीना, दिन-रात, प्रहर, घड़ी, पल, परमाणु, निमेष लव आदि आते हैं । आँख की पलक गिरने का नाम है — लव । ६० लब = १ निमेष, ६० निमेष = १ परमाणु = १पल, ६० पल = १घड़ी, ६० घड़ी = ८ पहर वा एक दिन-रात (२४ घंटे), ३० दिन - रात = १ महीना, १२ महीने = १ वर्ष । इसी वर्ष से १७ लाख २८ हजार वर्ष सत्ययुग की आयु, १२ लाख ९६ हजार वर्ष त्रेता की, ८ लाख ६४ हजार वर्ष द्वापर की और ४ लाख ३२ हजार वर्ष कलियुग की आयु है। इन चारो युगों के एक-एक बार बीतने का नाम १ चौकड़ी है। १ हजार चौकड़ी युग = १ कल्प = ब्रह्मा का एक दिन-रात । इस दिन से ३० दिनों का एक महीना, ऐसे १२ महीनों का १ वर्ष, ऐसे १०० वर्ष पर्यन्त ब्रह्मा जीते हैं । ब्रह्मा की आयु नाश होने पर महाप्रलय कहा जाता है। एक ब्रह्मा की आयु के समान समय को महाकल्प कहते हैं । गोस्वामीजी ने रामचरितमानस में चारो युगों की चर्चा करते हुए कलियुग के संदर्भ में लिखा है —
'काल धर्म व्यापहिं नहि तेही । रघुपति चरण प्रीति अति जेही' ॥

और संत कबीर साहब कहते हैं —

'कायाकाठी कालघुन, जतन जतन घुनिखाय ।
कायामाही काल है, मर्म न कोऊ पाय ।
चलती चक्की देखि कै, दिया कबीरा रोय ।
दुइ पट भीतर आइके, साबित गया न कोय ॥
काल चक्र चक्की चलै, सदा दिवस अरु रात ।
अगुन-सगुन दुइ पाटला, तामें जीव पिसात ॥
आसै पासै जो फिरै, निपट पिसावै सोय ।
कीला से लागा रहे, ताको बिघन न होय ॥'

बौद्ध ग्रंथों में काल का अर्थ मार,काम शैतान आदि भी किया गया है। इन दोनों प्रकार के कालों को दृष्टि में रखते हुए इस पद्य में कहा गया है —'गुरु हरिचरण में प्रीति हो युग काल क्या करे।' ऐसा जानना चाहिए ।

□□□□

(१३७)

बारहमासा

मास[१] आसिन जगत बासिन[२], चेत[३] चित में लाइये ।
जीवनों थोड़ो अहै[४] क्यों, जगत में गफिलाइये[५] ॥
ना भयो जग काहु को, कितनो कोउ अपनो कियो ।
करि जतन[६] जो याहि त्याग्यो, शांति-सुख सो ही लियो ॥१॥
कातिक काया नीच माया, मुत्र-बुन्द से है बनो ।
माहिं पूरन[७] मलन[८] सों जो, जाय नहिं सकलो[९] गनो[१०] ॥
ऐसो तन संग कहा गरबसि[११], मूढ़[१२] अतिहि अजान[१३] रे ।
नाम भजु अभिमान तजु, छनभंगु[१४] तन मस्तान[१५] रे ॥२॥
अगहन दाहन[१६] प्रकृति भोगन, गहन[१७] को जो धावहीं[१८] ।
क्लेश पावहिं हारि[१९] आवहिं, कबहुँ नहिं तृपतावहीं[२०] ॥
भोगन सकल प्रत्यक्ष रोगन, जानि के हटते रहो ।
गुरु टहल सत्संग-सेवन, में सदा डटते[२१] रहो ॥३॥
पूस चोरी फूस[२२] पर-त्रिय[२३], नशा हिंसा त्यागहू ।
गुरु टहल[२४] सत्संग ध्यान में, दिवस निशि[२५] अनुरागहू[२६] ॥
तरते गये[२७] जो अस किये सब, राय[२८] राणा[२९] रंक[३०] हो ।
विप्र[३१] भंगी[३२] अपढ़[३३] पढ़ुआ[३४], करो तरिहौ न शंक[३५] हो ॥४॥
माघ भूखा बाघ काल के, मुख पड़ो है बाबरे[३६] ।
होश कर चेतो[३७] सबेरे, बचो ध्यान के दाव[३८] रे ॥
काल मुख से निबुकि[३९] भागो, ध्यान के बल भाइ रे ।
ऐसो औसर[४०] खोइहौ तो, रोइहौ पछिताइ रे ॥५॥
मास फागुन मस्त होइ के[४१], कियो बहुत बनाव[४२] हो ।
ऊँच महलन जटित मणिगण, सुख तबहुँ नहिं पाव हो ॥
कूल[४३] भल[४४] अरु रूप भल, अरु त्रिया भल पायो सही ।
सुख तबहुँ नाहीं मिले, बिन ध्यान के स्वपनहुँ कहीं ॥६॥

चैत सुख की चिन्त[45] करहु, तो विविध कर्महिं त्यागहू ।
ध्यान में लवलीन[46] रहिकै, गुरु चरण अनुरागहू ॥
विविध नेम[47] अचार[48] जप-तप, तिरथ व्रत मख[49] दानहू ।
कबहुँ सरवर[50] ना करै जो, ध्यान बन[51] पलहू कहूँ ॥७॥
वैशाख सकलो साख[52] ग्रन्थन, की रहै जानत कोऊ ।
ध्यान बिन मन अथिर[53] जौं, तो शांति नहिं पावै सोऊ ॥
फिरै चहुँ दिशि जगत में, अरु वक्तृता[54] देता फिरै ।
ध्यान बिनु नहिं शान्ति आवै, लोगहू कितनहु घिरै ॥८॥
जेठ उतरी हेठ[55] सूरत, पिण्ड में वासा[56] करी ।
भूलि गइ घर आदि अपना, भव में सब सुधि[57] गइ हरी[58] ॥
सुरत चेत[59] अचेत[60] छोड़ो, तू शिखर[61] की वासिनी ।
माया में मगनो नहीं[62], यह अहै दारुण[63] फाँसिनी[64] ॥९॥
आषाढ़ तम[65] अति गाढ़[66] में, नीचो पड़ी री सूरती ।
उद्धार कर निज गुरु दया, ले हेर[67] प्रभु बिन्द[68] मूरती ॥
दोउ नयन बीचो बीच सन्मुख, एकटक देखत रहो ।
आपही वह बिन्दु झलके[69], पट गिरा[70] निरखत[71] रहो ॥१०॥
सावन शिखर सोहावनो[72] पर, धीरे-धीरे चढ़ि चलो ।
तारा चन्दा सूर[73] पूरा, नूर[74] तजि शब्दहिं रलो[75] ॥
घट-घट में होता आपही, यह शब्द अगम[76] अपार[77] है ।
प्रभु नाम निर्मल राम यह, शब्द सार सकल[78] अधार है ॥११॥
भादो भव दुख यों[79] तजो, प्रभु नाम अवलम्बन[80] करी ।
पर नाम सो बिनु ध्यान कोउ न, परखि[81] कै थम्भन[82] करी ॥
देवी साहब कहैं 'मेँहीँ', सुनो चित्त लगाइ के ।
गुरु भक्ति बिनु नाहीं सफलता, सन्त कहैं सब गाइ के ॥१२॥

शब्दार्थ :

१.महीना, २. वासियो, ३. चेतना, जागृति, ४. है, ५. बेपरवाह होते हो,

६.प्रयत्न, प्रयास, ७.भरा है, ८.मलों, अपवित्र, पदार्थों, ९. सभी, सब-के-सब, १०. गिने, ११. गर्व करते हो, १२. मूर्ख, १३. अज्ञानी, १४. नाशवान, क्षण में नष्ट हो जाने वाला, १५. अभिमानी, १६. दुःखप्रद, १७. प्राप्त करने हेतु, १८. दौड़ते हो, १९. हारकर, २०. तृप्त नहीं होते, २१. दृढ़तापूर्वक लगे हुए, २२. झूठ, २३. परायी स्त्री से अनुचित प्रेम, २४. सेवा, २५. दिन-रात, २६. प्रीति लगाये रखो,२७.उद्धार पाते गये,२८.सरदार,२९.राजा,३०. दरिद्र, ३१. ब्राह्मण, ३२. हरिजन, मेहतर, ३३. अनपढ़, ३४. पढ़ा-लिखा, ३५. शंका, सन्देह,३६.पगले,३७.जागो,३८.उपाय, युक्ति,३९.मुक्त होकर,४०.अवसर, मौका, ४१.अभिमान,४२. सृजन,४३. कुल, वंश,४४. अच्छा, सुन्दर, ऊँचा, ४५.चिन्तन,चिन्ता,४६.तल्लीन, संलग्न, ४७. नियम,४८. शास्त्रोक्त व्यवहार या रस्म,४९.यज्ञ, ५०. बराबरी, ५१.बनना, स्थिर होना,५२. साखी, साक्षी, ५३.अस्थिर,चंचल, ५४.भाषण,प्रवचन,५५.नीचे,५६. निवास, ५७. ज्ञान, ५८.खो गयी,५९. जागृत हो जागो,६०.अज्ञानता,६१.उच्च्य स्थान,६२.मग्न मत हो, ६३. दुःखप्रद,६४.बंधन देनेवाली,६५.अंधकार,६६. सघन, गहरा, ६७. खोजो, देखो, ६८. बिन्दु, ६९. देखने में आयेगा,७०.पलक बंद कर, ७१.देखते, ७२. आनन्ददायक,७३. सूर्य,७४. प्रकाश, ७५. लीन हो जाओ, ७६. इन्द्रिय अग्राह्य, बुद्धि के परे, ७७.अथाह, अतिविस्तृत, ७८. सबका, सम्पूर्ण सृष्टि का,७९.इस प्रकार, ८०.आधार, ८१.पहचान,८२. स्थिरता ।

पद्यार्थ :

आश्विन महीना — हे संसार वासियो! मन में चेतना (जागृति) लाओ। जीवन-अवधि थोड़ी है, क्यों बेपरवाह होते हो ? कोई कितना भी संसार को अपना बनाया, लेकिन यह किसी का नहीं हुआ (अर्थात् वियोग झेलना ही पड़ा)। जिसने प्रयत्न करके इसे (मन से) त्याग दिया, उसने ही सुख-शांति प्राप्त की॥१॥

कार्तिक महीना — यह अपवित्र और नश्वर शरीर मूत्र-जैसी (वीर्य) बूँद से बना है। यह भीतर से इतने मलों (अपवित्र पदार्थों) से भरा है, जो सबके-सब गिने भी नहीं जा सकते। हे मूर्ख-अज्ञानी! ऐसे शरीर का संग पाकर तुम क्या गर्व करते हो ? हे अभिमानी! तुम्हारा शरीर क्षण में नष्ट हो जाने वाला है। अभिमान को त्यागकर नाम-भजन (वर्णात्मक नाम

का जप और ध्वन्यात्मक नाम का ध्यान) करो॥२॥

<u>अगहन महीना</u> — दुःखप्रद सांसारिक भोगों को प्राप्त करने हेतु जो दौड़ते हैं, वे तृप्त नहीं होते, बल्कि दुःख भोगते हुए हारकर लौट जाते हैं। सभी भोगों को प्रत्यक्ष रोग जानकर उनसे बचते रहो और गुरु-सेवा और सत्संग में दृढ़तापूर्वक लगे रहो॥३॥

<u>पूस महीना</u> — चोरी, झूठ, व्यभिचार, नशा और हिंसा; इन्हें त्याग दो। दिन-रात गुरु-सेवा, सत्संग और ध्यान में अपनी प्रीति लगाए रखो। सरदार, राजा या दरिद्र जिसने भी ऐसा किया, वे सभी उद्धार पाते गए। ब्राह्मण, हरिजन, अनपढ़, पढ़े-लिखे — कोई भी हो, (उपर्युक्त नियम का पालन) करो, तो उद्धार पाओगे, इसमें संदेह की बात नहीं॥४॥

<u>माघ महीना</u> — अरे पगले! तुम भूखे बाघ के सदृश काल के मुख में पड़े हुए हो। होश में आओ और शीघ्र जगकर ध्यान की युक्ति (उपाय) से इनसे बचो। ध्यान करके काल के मुख से मुक्त होकर शीघ्र निकल जाओ। अन्यथा, यदि ऐसे (सुनहरे) अवसर को खो दोगे तो पछताते हुए रोना पड़ेगा॥५॥

<u>फाल्गुन महीना</u> — तुमने अभिमान में बहुत कुछ सृजन किए, मणियाँ जड़ी हुई ऊँचे-ऊँचे महल बनाए, परन्तु उस पर भी तुमने सुख नहीं पाया। भले ही तुम्हारा कुल (खानदान) ऊँचा हो, रूप सुन्दर हो और स्त्री अच्छी हो; फिर भी ध्यान के बिना स्वप्न में भी शाश्वत सुख नहीं मिलेगा॥६॥

<u>चैत महीना</u> — यदि सुख पाने की चिन्ता—इच्छा करते हो तो अनेक प्रकार के कर्मों (आडम्बरों) को त्यागकर ध्यान में तल्लीन रहो और गुरु के चरणों में प्रेम करो। अनेक प्रकार के नियम-आचार, जप-तप, तीर्थ व्रत, यज्ञ-दान आदि कितना भी कर लो, किन्तु वह कभी भी पलभर के स्थिर ध्यान की बराबरी नहीं कर सकता॥७॥

<u>बैशाख महीना</u> — कोई सभी सद्ग्रंथों, वेदों, उपनिषदों एवं उनकी शाखाओं का ज्ञान रखता हो, लेकिन ध्यान के बिना मन चंचल रहने से वह कभी शांति प्राप्त नहीं कर सकता। कोई संसार में चारो दिशाओं में भ्रमण करते हुए भाषण-प्रवचन देते फिरे, उनकी प्रवचन शैली के प्रभाव

से प्रभावित होकर लाखों-करोड़ों कितने भी लोग इकट्ठे क्यों न हो जाय, लेकिन ध्यान के बिना शांति नहीं मिल सकती॥८॥

<u>जेष्ठ महीना</u> — सुरत नीचे उतर कर स्थूल शरीर में अपना निवास बना ली है और अपने आदि घर (निःशब्द परमपद) को भूल गई है। संसार में आकर उसका सब ज्ञान खो गया है। हे सुरत! तुम अपनी अज्ञानता को छोड़कर जागृत-सचेत हो जाओ। तुम तो शिखर (उच्चतम स्थान) की रहने वाली हो, माया में मग्न मत होओ। यह (माया) दुःखप्रद बंधन में डालनेवाली है॥९॥

<u>अषाढ़ महीना</u> — हे सुरत! तुम सघन अंधकार के नीचे तल पर आकर पड़ी हो। गुरु की कृपा प्राप्त कर अपना उद्धार करो। इसके लिये परमात्मा की बिन्दु रूप मूर्ति को देखो, पलकों को बंदकर दोनों आँखों के बीच सामने टकटकी लगाकर देखते रहो। स्वतः ज्योतिर्मय विन्दु देखने में आएगा॥१०॥

<u>सावन महीना</u> — (साधना करते हुए) धीरे-धीरे आनंददायक सर्वोच्च पद (शब्दातीत) तक चढ़ते चले जाओ। तारे, चन्द्रमा, सूर्य आदि सभी के प्रकाशों को छोड़ते हुए आगे बढ़कर सारशब्द में लीन हो जाओ। सभी शरीरों में स्वाभाविक रूप से ध्वनित होने वाला यह शब्द इन्द्रिय अग्राह्य बुद्धि के परे तथा अति विस्तृत-अथाह है। यह सारशब्द जिसको परमात्मा का पवित्र राम नाम (सर्वव्यापक नाम) भी कहा जाता है, सम्पूर्ण सृष्टि का आधार है॥११॥

<u>भादो महीना</u> — इस प्रकार परमात्मा के ध्वन्यात्मक रामनाम का अवलंब (आधार) लेकर जन्म-मरण के दुःखों को त्याग दो। पर सूक्ष्म ध्यान (दृष्टियोग और शब्दयोग) के बिना कोई उस नाम की पहचान कर स्थिरता प्राप्त नहीं कर सकता। महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज से बाबा देवी साहब कहते हैं कि ध्यान देकर सुनो, सभी संतों ने अपनी वाणियों में कह दिया है कि गुरु-भक्ति के बिना साधना में सफलता नहीं मिलती है॥१२॥

□□□□

(१३८)

चौमासा

जेठ मन को हेठ[१] करिये, मान[२] मद[३] बिसराइये[४] ।
गुरु सद्गुरु पद सेव[५] करि-करि, कठिन भव[६] तरि जाइये ॥
आषाढ़ <u>गाढ़ अन्धार</u>[७] घट में, जातें[८] दुःख अपार है ।
गुरु कृपा तें <u>भेद लहि</u>[९] <u>तम, तोड़ि</u>[१०] दुःख निवारिये[११] ॥
सावन सुखमन दृष्टि आनत[१२], दामिनि[१३] छिन-छिन[१४] दमकई[१५] ।
<u>हील डोल</u>[१६] तजि सुरत थिर[१७] करि, प्रणव तार[१८] उगाइये ॥
भादो भव दुःख छोड़ि चलिये, जोति छेदि पड़ाइये[१९] ।
सारशब्द में लीन होइ कर, 'मेँहीँ' गुरु-गुण गाइये ॥

शब्दार्थ :

१. नीचे, नम्र, २. प्रतिष्ठा, ३. अहंकार, ४. भूल जाओ, त्याग दो, ५. सेवा, ६. संसार-सागर, ७. सघन अंधकार, ८. इसी कारण, ९. युक्ति प्राप्त कर, १०. अंधकार का नाशकर, ११. दूर करो, छूट जाओ, १२. लाकर, स्थिर कर, १३. बिजली, १४. क्षण-क्षण, १५. चमकती है। १६. चंचलता, १७. स्थिर, १८. तारा, १९. भागो, शीघ्रतापूर्वक गमन करो ।

पद्यार्थ :

<u>जेठ महीना</u> — अपने मन को नम्र बनाते हुए प्रतिष्ठा-प्राप्ति की इच्छा और अहंकार को त्याग दो। सच्चे गुरु के चरणों की सेवा करते हुए इस दुःसह संसार-सागर से पार हो जाओ ॥

<u>अषाढ़ महीना</u> —तुम्हारे शरीर में सघन अंधकार छाया हुआ है। इसी कारण तुम असीम दुःख में पड़े हो। गुरु-कृपा से भक्ति की युक्ति प्राप्त कर (साधना करके) इस अंधकार का नाशकर दुःखों से छूट जाओ॥

<u>श्रावण महीना</u> — दृष्टिधारों को सुषुम्ना में स्थिर करने पर क्षण-क्षण बिजली चमकती (हुई दीखती) है। चंचलता त्यागकर सुरत को स्थिर करो और प्रणव तारा को प्रकट करो॥

<u>भादो महीना</u> — सांसारिक दुःखों को छोड़कर आगे चलो। प्रकाश मंडल को पार करते हुए शीघ्रतापूर्वक गमन करो और सारशब्द में सुरत को लीन (संलग्न) करके आदि गुरु परमात्मा के गुण को अनुभव करो॥

(१३९)

आरति तन मन्दिर में कीजै ।
दृष्टि <u>युगल कर</u>[१] सन्मुख दीजै ॥ १ ॥
चमके बिन्दु सूक्ष्म अति उज्ज्वल[२] ।
ब्रह्मजोति अनुपम[३] लख लीजै ॥ २ ॥
जगमग जगमग रूप ब्रह्मण्डा ।
निरखि[४] निरखि जोती[५] तज दीजै[६] ॥ ३ ॥
शब्द सुरत अभ्यास सरलतर ।
करि-करि सार शबद गहि लीजै ॥ ४ ॥
ऐसी जुगति[७] <u>काया गढ़</u>[८] त्यागि ।
भव[९]-भ्रम[१०]-भेद[११] सकल मल[१२] छीजै[१३] ॥ ५ ॥
<u>भव-खण्डन</u>[१४] आरति यह निर्मल ।
करि 'मेँहीँ' <u>अमृत रस</u>[१५] पीजै ॥ ६ ॥

शब्दार्थ :

१. जोड़कर, दोनों किरणें, २. ज्योतिर्मय, ३. उपमा-रहित, अलौकिक, ४. देखते हुए, ५. ज्योति, प्रकाश, ६. त्याग दो, ७. युक्ति, उपाय, ८. शरीर रूपी किला, ९. जन्म-मरण, १०. अज्ञानता, ११. द्वैतभाव, १२. विकार, १३. नष्ट कर दो, १४. संसृति-नाशक, आवागमन छुड़ानेवाला, १५. ब्रह्मानंद, हरि रस।

पद्यार्थ :

अपने शरीर रूपी मंदिर में आरती करो और (नयनाकाश में) दोनों दृष्टिधारों को जोड़कर सामने स्थिर करो॥१॥ ऐसा करने से एक अत्यन्त छोटा ज्योतिर्मय विन्दु चमकता हुआ दीखेगा। साथ ही परमात्मा का अलौकिक प्रकाश देखोगे॥२॥ ब्रह्माण्ड के जगमगाते रूप को देखते हुए ज्योति मण्डल को त्याग दो॥३॥ पश्चात सरल साधना—सुरत शब्द-योग का अभ्यास करते हुए सारशब्द को पकड़ो॥४॥ इस युक्ति के द्वारा शरीर

रूपी किले को त्यागकर जन्म-मरण, अज्ञानता जनित द्वैतभाव और अन्य सभी विकारों को नष्ट कर दो।।५।। महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि संसृति-नाशक (आवागमन छुड़ानेवाली) ऐसी पवित्र (दोष-रहित) आरती करके अमृत-रस का पान करो ।

□□□□

(१४०)

आरति परम पुरुष[१] की कीजै ।
निर्मल थिर चित[२] आसन दीजै ॥१॥
तन मन्दिर महँ हृदय सिंहासन ।
श्वेत बिन्दु मोती जड़ दीजै ॥२॥
अविरल[३] अटल प्रीति[४] को भोगा[५] ।
विरह पात्र भरि आगे कीजै ॥३॥
जत[६] सत[७] संयम फूलन हारा ।
अरपि[८] अरपि प्रभु को अपनीजै[९] ॥४॥
धूप अकाम[१०] अरु ब्रह्म हुताशन[११] ।
तोष[१२] धूपची[१३] धरि फेरीजै ॥५॥
तारे चन्द्र सूर[१४] दीपावलि ।
अधर[१५] थार[१६] भरि आरति कीजै ॥६॥
आतम अनुभव जोति कपूरा ।
मध्य आरती थाल सजीजै ॥७॥
अनहद परम गहागह[१७] बाजा ।
सार शब्द धुन सुरत मिलीजै ॥८॥
द्वन्द्व द्वैत[१८] भ्रम[१९] भेद[२०] विडारन[२१] ।
सतगुरु सेइ[२२] अस आरति कीजै ॥९॥
'मेँहीँ' मेँहीँ[२३] आरति येही ।
करि-करि तन मन धन अरपीजै[२४] ॥१०॥

शब्दार्थ :

१.परमात्मा, २.स्थिर या शांत अंतःकरण, ३. निरंतर, ४. दृढ़ प्रेम, ५. नैवेद्य,

६. त्याग, ७. सच्चाई, ८. अर्पण कर, ९. अपनाओ, रिझाओ, १०. कामना-त्याग, ११. ब्रह्मज्योति, अंतःप्रकाश, १२. संतोष, १३. धूपदान, १४. सूर्य, १५. अन्तराकाश, १६. थाल, १७. सघन, १८.देखिये पृष्ठ संख्या-१, १९. अज्ञानता, २०. भिन्नता, द्वैत, २१. नष्ट करनेवाला, २२. सेवा करके, २३. सूक्ष्म, २४. अर्पण करो ।

पद्यार्थ :

परम पुरुष—परमात्मा की आरती करो। उन्हें पवित्र और शांत अंतःकरण रूप आसन दो।।१।। शरीर रूप मंदिर में योग हृदय रूप सिंहासन लगाकर उसे प्रकाशमय विन्दु रूप मोती से सजाओ।।२।। बिरह रूप थाल में निरंतर दृढ़ प्रेमरूप नैवेद्य भरकर उनके सामने रखो।।३।। त्याग, सच्चाई और संयम रूप फूलों की माला बारंबार अर्पण करके परमात्मा को रिझाओ।।४।। कामना-त्याग रूप धूप और ब्रह्मज्योति रूप अग्नि को संतोष रूप धूपदान में रखकर (इष्ट के सामने) घुमाओ।।५।। आंतरिक तारे, चंद्रमा और सूर्यरूप दीपक-समूह को अन्तराकाश रूप थाल में सजाकर आरती करो।।६।। उस थाल के मध्य में आत्मानुभव (आत्मज्ञान) रूप कपूर की ज्योति सजाओ।।७।। अत्यन्त सघन अनहद नाद के बाद सारशब्द की ध्वनि में अपनी सुरत को संलग्न करो।।८।। सद्गुरु की सेवा करके द्वंद्व, द्वैत, अज्ञानता और भिन्नता को नष्ट करने वाली इस प्रकार की आरती करो।।९।। महर्षि मेँहीँ परमहंस जी महाराज कहते हैं कि यह आरती सूक्ष्म है। इसे करते हुए अपना शरीर, मन और धन सब परमात्मा को अर्पण कर दो।।१०।।

□□□□

(१४१)

आरति अगम[१] अपार[२] पुरुष की ।
मल निर्मल पर[३] पर दुख सुख की ॥१॥
शीत उष्णादि द्वन्द्व पर प्रभु की ।
अविनाशी अविगत[४] अज[५] विभु[६] की ॥२॥
मन बुधि चित पर पर अहंकार की ।
सर्वव्यापी और सबतें न्यार[७] की ॥३॥
रूप गन्ध रस परस[८] तें न्यार की ।
सगुण अगुण पर पार असार[९] की ॥४॥

त्रैगुण दश इन्द्रिन तें पार की ।
अमृत ततु प्रभु परम उदार की ॥५॥
पुरुष प्रकृति पर परम दयाल की ।
ब्रह्म पर पार महाहू काल की ॥६॥
अति अचरज[१०] अनुपम[११] ततु सार[१२] की ।
अति अगाध[१३] वरणन तें न्यार की ॥७॥
अकह[१४] अनाम[१५] अकाम[१६] सुपति[१७] की ।
जन त्राता[१८] दाता सद्गति की ॥८॥
अखिल विश्व मण्डप करि उर[१९] की ।
पूर्ण भरे ता महँ प्रभु धुर[२०] की ॥९॥
दिव्य जोति आतम अनुभव की ।
दिव्य थाल अभ्यास भजन की ॥१०॥
असि आरति 'मेँहीँ' सन्तन की ।
करि तरि हरिय दुसह दुख तन की ॥११॥

शब्दार्थ :

१. बुद्धि से परे, २. असीम, ३. परे, ४. सर्वव्यापक, ५. अजन्मा, जन्म-रहित, ६. विशालतम, ७. परे, श्रेष्ठ, ८. स्पर्श, ९. अनात्मतत्त्व, १०. आश्चर्यमय, ११. उपमा-रहित, १२. आत्मतत्व, १३. गंभीर, १४. नहीं कहने योग्य, १५.नाम-रहित,१६.कामना-रहित,१७.श्रेष्ठ स्वामी,१८.भक्तों के उद्धारक, १९. हृदय, २०. आदि तत्व ।

पद्यार्थ :

बुद्धि से परे और असीम परमात्मा की आरती करो । वे विकार-अविकार तथा दुःख-सुख से परे हैं॥१॥ वे शीत-उष्ण आदि द्वंद्वों से भी परे तथा अविनाशी,सर्वव्यापक, अजन्मा एवं विशालतम (सर्वोपरि) हैं॥२॥ वे मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार (इन चार अंतःकरणों) से परे, सबमें भरपूर रहते हुए भी सबसे भिन्न (श्रेष्ठ) हैं॥३॥ वे रूप, गंध, रस तथा स्पर्श आदि विषयों से परे, सगुण, निर्गुण एवं अनात्म तत्वों से परे हैं॥४॥ (सत्व, रज और तम इन) तीनों गुणों और बाह्य दश इन्द्रियों (पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ एवं

पाँच कर्मेन्द्रियाँ) से परे हैं। वे अविनाशी तत्व, महान दाता, चेतन और जड़-प्रकृति से परे, अत्यन्त दयालु, सप्त ब्रह्म से परे और महाकाल से भी परे हैं॥५॥६॥ वे अत्यन्त आश्चर्यमय, उपमा-रहित, आत्मतत्त्व, अत्यंत गंभीर तथा वर्णन से परे हैं॥७॥ वे कहने में नहीं आने योग्य, नाम-रहित, कामना (इच्छा) रहित, श्रेष्ठ स्वामी, भक्तों के उद्धारक तथा मोक्ष प्रदान करने वाले हैं॥८॥ अपने हृदय को समस्त ब्रह्माण्ड रूप मंडप बनाकर उसमें पूर्णरूप से व्यापक आदि तत्व परमात्मा की आरती करो॥९॥ ध्यानाभ्यास रूप विलक्षण थाली में आत्मानुभव (आत्मज्ञान) रूप अलौकिक ज्योति जलाओ॥१०॥ महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि संतों के द्वारा अपनाई गई ऐसी आरती करके शरीर के कारण होने वाले दुःसह दुःख को दूर कर उद्धार पा लो॥११॥

□□□□

(१४२)

अज[१] अद्वैत[२] पूरण ब्रह्म पर[३] की ।
आरति कीजै आरत हर[४] की ॥१॥
अखिल विश्व भरपुर अरु न्यारो[५] ।
कछु नहिं रंग न रेख[६] अकारो[७] ॥२॥
घट घट बिन्दु बिन्दु प्रति पूरन[८] ।
अति असीम[९] नजदीक न दूर न ॥३॥
वाष्पिय[१०] तरल[११] कठिनहू[१२] नाहीं ।
चिन्मय[१३] पर अचरज सब ठाहीं[१४] ॥४॥
अति अलोल[१५] अलौकिक[१६] एक सम ।
नहिं विशेष नहिं होवत कछु कम ॥५॥
नहिं शब्द तेज[१७] नहीं अँधियारा ।
स्वसंवेद्य[१८] अक्षर[१९] क्षर[२०] न्यारा ॥६॥
व्यक्त[२१] अव्यक्त[२२] कछु कहि नहिं जाई ।
बुधि अरु तर्क न पहुँचि सकाई ॥७॥
अगम[२३] अगाधि[२४] महिमा अवगाहा[२५] ।
कहन में नाहीं कहिये काहा[२६] ॥८॥

करै न कछु कछु होय न ता बिन[२७] ।
सबकी सत्ता कहै अनुभव जिन ॥९॥
घट-घट सो प्रभु प्रेम सरूपा ।
सबको प्रीतम सबको दीपा[२८] ॥१०॥
सोइ अमृत ततु अछय[२९] अकारा[३०] ।
घट कपाट खोलि पाइये प्यारा ॥११॥
दृष्टि की कुंजी[३१] सुष्मन द्वारा[३२] ।
तम कपाट तीसर तिल तारा[३३] ॥१२॥
खोलिये चमकि उठे ध्रुव तारा ।
गगन थाल भरपूर उजेरा[३४] ॥१३॥
दामिनि[३५] मोती झालरि लागी ।
सजै थाल विरही[३६] वैरागी[३७] ॥१४॥
स्याही[३८] सुरख[३९] सफेदी रंगा ।
जरद[४०] जंगाली[४१] को करि संगा ॥१५॥
ये रंग शोभा थाल बढ़ावैं ।
सतगुरु सेइ-सेइ भक्तन पावैं ॥१६॥
अचरज दीप-शिखा[४२] की जोती ।
जगमग-जगमग थाल में होती ॥१७॥
असंख्य अलौकिक नखतहु[४३] तामें ।
चन्द औ सूर्य अलौकिक वामें ॥१८॥
अस ले थाल बजाइये अनहद ।
अचरज सार शब्द हो हदहद[४४] ॥१९॥
शम[४५] दम[४६] धूप करै अति सौरभ[४७] ।
पुष्प माल हो यम नीयम[४८] सभ ॥२०॥
अविरल[४९] भक्ति की प्रीति प्रसादा ।
भोग लगाइय अति मर्यादा ॥२१॥

प्रभु की आरति या विधि कीजै ।
स्वसंवेद्य आतम पद लीजै ॥२२॥
अकह लोक[५०] आतम पद सोई ।
पहुँचि बहुरि[५१] आगमन न होई ॥२३॥
सन्तन कीन्हीं आरति एही ।
करै न परै[५२] बहुरि भव 'मेँहीँ' ॥२४॥

शब्दार्थ :

१.अजन्मा, जन्म-रहित,२.द्वैत-रहित, भेदभाव से रहित, ३. परे, ४. दुःखों को दूर करने वाला,५. परे, बाहर, ६. चिह्न, ७. आकार, ८. भरा हुआ, ९. सीमा-रहित, अनंत, १०. भाप-सदृश, ११. जल-सदृश, १२. ठोस, १३.चैतन्यमय,परा प्रकृति, १४. सभी स्थानों में,१५.स्थिर,१६. असांसारिक, विलक्षण,१७.प्रकाश,१८.आत्मा से जानने योग्य,१९.चेतन प्रकृति मंडल, अविनाशी,२०. जड़ प्रकृति मंडल,नाशवान,२१.प्रकट,२२.अप्रकट,२३. बुद्धि से परे, २४. अथाह, २५.गंभीर,२६.क्या,२७.उसके बिना,२८. प्रकाशित करनेवाला,२९.अविनाशी,३०.स्वरूप वाला,३१.चाभी,३२. द्वार, दरवाजा, ३३.ताला,३४.प्रकाशमान,३५.बिजली,३६.वियोग में रहने वाला,३७.सांसारिक सुखों को त्यागने वाला,३८.काला,३९.लाल,४०.पीला,४१.नीला,४२. दीपक-लौ,४३.तारों,४४.अपार,अत्यधिक,४५.मनोनिग्रह,४६.इन्द्रिय-निग्रह,४७.सुगंध, ४८.(देखें पृष्ठ-१९०),४९.निरंतर,५०. शब्दातीत पद,५१. पुनः, दुबारा, ५२. नहीं पड़ेंगे, नहीं आएंगे ।

पद्यार्थ :

अजन्मा, द्वैत-भाव से रहित और पूर्ण ब्रह्म से भी श्रेष्ठ परमात्मा की आरती करो, जो दुखों को दूर करनेवाला है।॥१॥ सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्यापक रहते हुए वह उससे परे (बाहर) भी विद्यमान है। उसका कोई रंग, चिह्न या आकार नहीं है।॥२॥ परमात्मा प्रत्येक शरीर में और सृष्टि के प्रत्येक कण में भरा हुआ है। वह अत्यन्त असीम (अनंत) है। उसे नजदीक या दूर भी नहीं कह सकते।॥३॥ परमात्मा भाप, तरल या ठोस जैसा नहीं है। वह परा प्रकृति के परे,आश्चर्यमय और सभी स्थानों में विद्यमान है।॥४॥ परमात्मा अत्यंत स्थिर, असांसारिक और सर्वत्र समान रूप से निवास करनेवाला है।

वह कहीं विशेष और कहीं कम होकर नहीं रहता॥५॥ वह न तो शब्द है, न प्रकाश और न अंधकार ही। आत्मा से जानने योग्य वह परमात्मा जड़ तथा चेतन प्रकृतियों से भिन्न विलक्षण है॥६॥ वह प्रकट है या अप्रकट कुछ कहा नहीं जाता। बुद्धि और विचार भी वहाँ नहीं पहुँच सकती॥७॥ परमात्मा बुद्धि से परे और अथाह है। उसकी महिमा इतनी गंभीर है कि कहने में नहीं आती। अतः उसके संबंध में क्या कहा जाए ? (॥८॥) वह कुछ भी नहीं करता, लेकिन उसके बिना कुछ होता भी नहीं। जिन्होंने उसे अनुभव किया वे कहते हैं कि वह सबके अस्तित्व का आधार है॥९॥ घट-घट में निवास करने वाला वह परमात्मा प्रेमस्वरूप है। वह सबका प्रेमास्पद (प्रेम करने योग्य) और सबको प्रकाशित करने वाला है॥१०॥ वह अमृत तत्व और अविनाशी स्वरूप वाला है। शरीर के आंतरिक आवरणों को हटाकर उस परमप्रिय प्रभु को प्राप्त करो॥११॥ दशमे द्वार पर अंधकार रूप फाटक है, जिस पर ताला लगा है। (सिमटी हुई) दृष्टिधारों की चाभी से उस सुषुम्ना द्वार (दशमा द्वार) को खोलो ॥१२॥ उसके खुलने से चमकता हुआ ध्रुवतारा प्रकट होगा। अन्तराकाश रूप थाल प्रकाशमान हो उठेगा॥१३॥ प्रभु के वियोग में रहनेवाला तथा सांसारिक सुखों को त्यागने वाला साधक अपने अन्तराकाश को बिजली की चमक और मोती के प्रकाश रूप झालरों से सजाता है॥१४॥ उसे काला, लाल, सफेद, पीला, नीला आदि रंगों का दर्शन मिलता है॥१५॥ ये सभी रंग अन्तराकाश रूप थाल की शोभा (सुंदरता) बढ़ाते हैं। सद्गुरु की सेवा करते रहने वाला भक्त इन सभी उपलब्धियों को पाता है॥१६॥ उस थाल में आश्चर्यमय दीपक-लौ का प्रकाश जगमगाता है॥१७॥ अनगिनत तारों के साथ चन्द्रमा और सूर्य का विलक्षण प्रकाश होता है ॥ १८॥ अन्तराकाश रूप ऐसे थाल को प्राप्त कर अनहद नाद और अपार सारशब्द रूप वाद्य (बाजा) बजाओ॥१९॥ इन्द्रिय-निग्रह और मनोनिग्रह रूप धूप तेज सुगंध फैलाती है। यम और नियम के सभी अंग फूलों की माला के रूप में शोभा पाती है॥२०॥ सदा एक रस रहने वाली भक्ति और प्रेम का प्रसाद (नैवेद्य) अत्यंत आदर के साथ चढ़ाओ॥२१॥ इस विधि से परमात्मा की आरती करके अपने आप से अनुभव करने योग्य आत्मपद को प्राप्त करो॥२२॥ शब्दातीत पद ही आत्मपद है, जहाँ पहुँचने पर पुनः

जन्म-मरण के चक्र में नहीं आना पड़ता है॥२३॥ महर्षि मेँहीँ परमहंस जी महाराज कहते हैं कि सभी संतों ने इसी विधि से परमात्मा की आरती की है, जो व्यक्ति (आज भी) इसे करेंगे, वे पुनः इस दुःखमय संसार में नहीं आएँगे ॥२४॥

❁❁❁❁

(१४३)

प्रेम प्रीति चित[१] चौक[२] लगाये ।
आसन प्रेम सुभग[३] धरवाये[४] ॥
प्रेम डगर गुरु आनि[५] बिठाये ।
प्रेम प्रेम जल पात्र मँगाये ॥
प्रेम भाव कर चरण पखारे[६] ।
चरणामृत[७] ले सुरत सुधाये[८] ॥
पूरन भाग[९] जगे अब आये ।
प्रेम थाल गुरु सन्मुख लाये ॥
जा में प्रेम थाल भर पूरे ।
रुचि रुचि[१०] साहब भोग लगाये[११] ॥
प्रेम पान दे आरति उतारे ।
गुरु को प्रेम पलंग पौढ़ाये[१२] ॥
बाबा सतगुरु देवी साहब ।
'मेँहीँ' जपत प्रेम मन लाये ॥

शब्दार्थ :

१. अंतःकरण, हृदय, २. चौका, लीपकर पवित्र बनाया गया स्थान, ३. सुंदर, ४. बिछाओ, रखो, ५. लाकर, बुलाकर, ६. चरण धोओ, ७. संत-महापुरुषों के चरणों का धोबन, ८. शुद्ध करो, ९. भाग्य पूर्णतः, १०. प्रेम पूर्वक, ११. भोजन करते हैं, १२. लिटाओ ।

पद्यार्थ :

अपने अंतःकरण में प्रेम का चौका लगाकर प्रेम रूप सुंदर आसन बिछाओ॥ फिर प्रेम के मार्ग से गुरु को बुलाकर उस पर बिठाओ। प्रेम रूप पात्र में प्रेम का जल मंगवाकर हृदय में प्रेमभाव रखते हुए उनके चरणों

को धोओ॥ उनके चरणामृत से अपनी सुरत को पवित्र करो॥ आज तुम्हारा भाग्य पूर्णरूपेण जग आया है। प्रेम की थाली को प्रेमरूप भोजन सामग्री से भरकर तुम उनके (गुरु के) सामने ले आओ॥ अब गुरुदेव प्रेमपूर्वक भोजन करते हैं॥ (भोजनोपरांत) प्रेम रूप पान खिलाकर उनकी आरती करो। पश्चात् प्रेमरूप पलंग पर उन्हें लिटाओ॥ महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज कहते हैं कि मैं मन में प्रेम बसाकर सद्‌गुरु बाबा देवी साहब का सुमिरन करता हूँ ॥

❁❁❁❁

(१४४)

गुरु जुगती[१] लय[२] घट पट[३] टारौं[४] ।
अन्तर अन्त धँसि तन मन वारौं[५] ॥१॥
हृदय गगन को थाल बनावौं ।
ब्रह्म जोति आरती सजावौं ॥२॥
आत्म समर्पि नैवेद्य[६] चढ़ावौं ।
सार शब्द धुनि मंगल गावौं[७] ॥३॥
अनहद घंटा शंख बजावौं ।
यहि आरति करि प्रभु अपनावौं[८] ॥४॥
प्रभु को पाइ अपनपौ[९] हारौं[१०] ।
द्वैत भाव 'मेँहीँ' तज डारौं[११] ॥५॥

शब्दार्थ :

१. युक्ति, भेद, २. लेकर,३.आंतरिक आवरण—अंधकार, प्रकाश और शब्द, ४. हटाता हूँ, ५. न्योछावर करता हूँ, ६. भोग, इष्ट को समर्पित खाद्य-पदार्थ, ७. मंगल गीत गाता हूँ, ८. अपनाता हूँ, अपना बना लेता हूँ, ९. अपने आपको, आत्मस्वरूप को, १०. त्यागता हूँ, समर्पित करता हूँ, ११. त्याग देता हूँ।

पद्यार्थ :

मैं गुरु से (अन्तस्साधना की) युक्ति प्राप्त कर (अंधकार, प्रकाश और शब्द रूप) आंतरिक आवरणों को हटाता हूँ, अंतर के अंतिम पद (शब्दातीत पद) तक प्रवेश कर परमात्मा पर तन-मन समर्पित करता हूँ॥१॥ मैं योगहृदय स्थित शून्य को थाल बनाकर उसमें ब्रह्मज्योति की आरती सजाता हूँ॥२॥ परमात्मा को अपना आत्मस्वरूप सौंपकर नैवेद्य चढ़ाता हूँ

और सारशब्द ध्वनि में रमकर मंगल गान करता हूँ॥३॥ अनहद ध्वनि रूप घंटा और शंख आदि बजाता हूँ और इसी आरती के द्वारा प्रभु को अपना बना लेता हूँ॥४॥ महर्षि मेँहीँ परमहंस जी महाराज कहते हैं कि परमप्रभु परमात्मा को प्राप्त कर मैं अपने आपको (अपने आत्मस्वरूप को) उनपर न्योछावर करता हूँ और (जीव-ब्रह्म के बीच का) भेदभाव त्यागता हूँ ॥५॥

महर्षि मेँहीँ-पदावली सटीक समाप्त

❁❁❁❁

नित्य प्रार्थना के अंत में गाई जाने वाली तुलसी साहब* कृत आरती

(१४५)

आरति संग सतगुरु के कीजै । अन्तर जोत[१] होत लख लीजै[२] ॥१॥
पाँच तत्त्व तन अग्नि जराई[३] । दीपक चास[४] प्रकाश करीजै ॥२॥
गगन-थाल रवि-शशि[५] फल-फूला । मूल[६] कपूर कलश धर दीजै[७] ॥३॥
अच्छत[८] नभ[९] तारे मुक्ताहल[१०] । पोहप-माल[११] हिय[१२] हार गुहीजै[१३] ॥४॥
सेत[१४] पान मिष्टान्न मिठाई । चन्दन धूप दीप सब चीजैं[१५] ॥५॥
झलक[१६] झाँझ मन मीन[१७] मँजीरा । मधुर[१८] मधुर धुनि मृदंग सुनीजै ॥६॥
सर्व सुगन्ध उड़ि चली अकाशा । मधुकर[१९] कमल केलि[२०] धुनि धीजै[२१] ॥७॥
निर्मल जोत जरत[२२] घट माँहीं । देखत दृष्टि दोष सब छीजै[२३] ॥८॥
अधर[२४] धार अमृत बहि आवै। सतमत-द्वार अमर रस भीजै ॥९॥
पी-पी होय सुरत मतवाली[२५]। चढ़ि-चढ़ि उमगि[२६] अमीरस[२७] रीझै[२८] ॥१०॥
कोट भान[२९] छवि[३०] तेज उजाली । अलख[३१] पार लखि लाग लगीजै[३२] ॥११॥
छिन-छिन सुरत अधर पर राखै । गुरु-परसाद[३३] अगम रस पीजै ॥१२॥
दमकत[३४] कड़क[३५] कड़क गुरु-धामा । उलटि[३६] अलल[३७] 'तुलसी' तन तीजै[३८] ॥१३॥

शब्दार्थ :

१. प्रकाश, ज्योति, २. देख लो, देखो, ३. आग जलाओ, अग्नि प्रकट करो, ४. जलाकर,५.सूर्य और चन्द्रमा,६.आरंभ,७.रखो, स्थापित करो, ८. पूजा में

* ये काशीवासी गोस्वामी तुलसीदासजी नहीं हैं, जिन्होंने रामचरितमानस (रामायण) की रचना की थी, बल्कि हाथरस निवासी संत तुलसी साहब हैं। जिनकी कृति घटरामायण है ।

चढ़ाया जाने वाला अखण्ड चावल,९.अन्तराकाश,१०.मोती, ११. फूलों की माला, १२. हृदय, १३. बनाओ, गूँथो, १४. श्वेत, प्रकाश, १५. चीज, सामान, १६. प्रकाश, १७. मन रूप मछली, १८. मीठी, सुरीली, १९. सुरत रूप भौंरा, २०. क्रीड़ा, २१.संतुष्ट होता है, २२. जलता है, प्रकट होता है, २३. नष्ट होते हैं, २४. अन्तराकाश, २५. मस्त, २६. उल्लसित, उमंग से भरा,२७.अमृत रस, ज्योति और शब्द,२८.आकर्षित होती है, २९. करोड़ों सूर्य, ३० सौन्दर्य, ३१. जो देखने में नहीं आवे, अरूप, सारशब्द,३२. संबंध जोड़ लो, ३३. कृपा, ३४. तेज प्रकाश, ३५.घनघोर,३६.उलटकर,३७. अलल नामक पक्षी, ३८. त्याग दो ।

पद्यार्थ :

सद्गुरु के सान्निध्य में रहकर परमात्मा की आरती करो और अंदर में होनेवाले प्रकाश को देखो॥१॥ पाँच तत्व के इस शरीर में ब्रह्म-अग्नि प्रकट करो और उससे दीपक जलाकर प्रकाश फैलाओ॥२॥ अन्तराकाश रूप थाल में सूर्य और चन्द्रमा रूप फल-फूल रखकर पूजा के आरंभ में कपूर अर्थात् श्वेत विन्दु का कलश स्थापित करो॥३॥ अन्तराकाश में दर्शित तारों का अच्छत और मोती रूप पुष्प की माला बनाकर हृदय में धारण करो॥४॥ पान, मिठाई, चन्दन, धूप, दीप आदि चीजें विभिन्न श्वेत प्रकाश रूप हैं॥५॥ प्रकाश मंडल में प्रकट होने वाले झाँझ, मजीरा और मृदंग आदि की मधुर ध्वनि को मीन रूप मन से सुनो॥६॥ शरीर में बिखरी चेतनधार रूप सुगंध सिमटकर अन्तराकाश में ऊपर उठती है। इस मंडल में क्रीड़ा करता हुआ सुरत रूप भौंरा ध्वनि को सुनकर संतुष्ट होता है॥७॥ शरीर के अंदर जो पवित्र ज्योति प्रकट होती है, उसे अन्तरदृष्टि से देखने से सभी पाप नष्ट होते हैं॥८॥ अन्तराकाश में (ज्योति और शब्द रूप) अमृत की धारा बहकर आती है। सत्य धर्म के द्वार पर आने वाला साधक उस अमृत-रस में भींगता है॥९॥ साधक की सुरत उस अमृत रस को पीती हुई मस्त हो जाती है और उल्लसित होकर आगे चलती है। उस रस से वह (उत्तरोत्तर) आकर्षित होती जाती है॥१०॥ करोड़ों सूर्य के सौन्दर्य के समान तेज प्रकाश होता है। सारशब्द के पार का ज्ञान प्राप्त कर परमात्मा से संबंध जोड़ लो॥११॥ जो प्रतिक्षण अपनी सुरत को अन्तराकाश में लगाकर रखता है, वह गुरु-कृपा से इन्द्रियों से अप्राप्य ब्रह्म-रस को प्राप्त करता है॥१२॥ संत तुलसी साहब कहते हैं कि आदिगुरु परमात्मा के

धाम तक जाने में तेज प्रकाश और घनघोर शब्द होता है। तुम अलल पक्षी* की भाँति उलटकर (बहिर्मुख से अन्तर्मुख होकर) सभी शरीरों को त्याग दो॥१३॥

***टिप्पणी :**

इस पक्षी के लिये वेद में अलल की जगह अलज शब्द का प्रयोग किया गया है। सुना जाता है कि अलल चिड़िया आकाश में बहुत ऊँचाई पर बिना घोसला बनाये रहती है। वहाँ ही वह अंडा देती है। निराधार होने के कारण वह अण्डा ऊपर से नीचे की ओर आता है और जमीन पर आने से पहले ही रास्ते में फूटकर उससे बच्चा निकल आता है। नीचे आते-आते उसके पंख उग जाते हैं और अंग-प्रत्यंग पुष्ट होकर आँखे खुल जाती हैं। पृथ्वी को देखने पर यह समझकर कि हमारा घर नीचे नहीं ऊपर है, वह बच्चा उलटकर ऊपर उड़ने लगता है और अपने माता-पिता से जाकर मिल जाता है।

प्रस्तुत पद्य में संत तुलसी साहब जीव को अलल पक्षी की भाँति उलटने की सलाह देते हैं। यह जीव निःशब्द में रहने वाले अपने परमपिता परमात्मा से बिछुड़कर शब्द और प्रकाश मंडल होते हुए अंधकार मंडल में आ गया है। गुरु से सद्युक्ति प्राप्त कर जब यह अन्तर्मुख होगा तो अन्तस्साध ना करते हुए अंधकार, प्रकाश और शब्द को पार कर अंश रूप जीवात्मा अपने अंशी परमात्मा में समाकर सदा के लिये एक हो जाएगा ।